Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079445

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2

Stock Verification-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
079445
COMPILED

ॐ

COMPILED
079445

अदिति

079445

अनागसो अदितये स्याम

—वेद

अनागसो अदितये स्याम

—वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची
(देवजननी)

सम्पादक
आचार्य अभयदेवजी विद्यालंकार

प्रकाशक
श्रीअरविन्द निकेतन
कनाट सर्कस, नई देहली ।

मूल्य सवा रुपया

वर्ष-भर की चारों पुस्तिकाओं का मूल्य चार रुपया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१ फरवरी १६४३ के
श्रीअरविन्द दर्शन
के उपलक्ष में
भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

मातृवचनामृत	—	
नये वर्ष की प्रार्थना	—	५
श्री अरविन्द-वाणी		
१ लक्ष्य	श्रीअरविन्द	६
२ सत्ता का आनन्द	,,	१२
पाण्डिचेरी के परमहंस	आचार्य अभयदेव	१५
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे	श्री नलिनीकान्त	४०
माँ का आवाहन-गीत	श्री नारायणप्रसाद	५७
माँ	श्री हरिदास चौधरी	५८
सङ्कट-काल	आचार्य अभयदेव	७२
मनोविज्ञान और योग	डा० इन्द्रसेन	८२
योग	श्री अनिलवरणराय	८६
श्री अरविन्द-निकेतन	आचार्य अभयदेव	१०२
'अदिति' नाम	,,	१०८
लेखकों का परिचय	,,	१११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1943

The hour has come when a choice has to be made, radical and definitive.

Lord, give us the strength to reject falsehood and emerge in Thy truth, pure and worthy of Thy Victory.

M.—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृवचनामृत

नये वर्ष की प्रार्थना

[श्रीअरविंदाश्रम में माता जी प्रत्येक नए वर्ष के प्रारम्भ में अपने साधकों के लिए एक प्रार्थना देती हैं जो उस वर्ष भर के लिए होती है। निःसंदेह यह प्रार्थना उस वर्ष में सम्पूर्ण जगत में आध्यात्मिक दृष्टि से होनेवाले कार्य को सूचित करने वाली होती है, अतः उस प्रार्थना की भावना में रहने से तथा उसके अनुसार आचरण करने से साधक की जहां अपनी उन्नति, पूर्णता की तरफ उसका अपना आध्यात्मिक विकास, होता है, वहां उस द्वारा जगत में जो दिव्य कार्य होना है उसमें भी सहायता पहुँचती है। आशा है पाठक इस दृष्टि से इस पवित्र प्रार्थना को पढ़ेंगे जो माता जी के अपने अक्षरों में भी अँग्रेज़ी में जुदा छापी जा रही है। —संपादक]

1943

The hour has come when a choice has to be made radical and definitive.

Lord, give us the strength to reject falsehood and emerge in Thy truth, pure and worthy of Thy victory.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६४३

वह घड़ी आ गई है जब कि हमें एक चुनाव कर लेना है, मूलग्राही और निर्णायक चुनाव।

प्रभो! हमें वह बल प्रदान करो जिससे कि हम असत्य को त्याग सकें और तुम्हारे सत्य में उदित हो सकें, विशुद्ध होकर और तुम्हारी विजय के पात्र होकर।

व्याख्या

[वैसे तो इस प्रार्थना की व्याख्या करने में कुछ शब्द अपनी तरफ से प्रयुक्त करना इसके सौन्दर्य और बल को बिगाड़ना लगता है, इसलिए कुछ भी व्याख्या के तौर पर लिखने का विचार तक नहीं था। पर देखा है कि ऐसे पाठक भी काफी हैं जिन्हें कि व्याख्या हो जाने से इस प्रार्थना को समझना और हृदयंगम कर सकना आसान हो जायगा। इसलिए उन लोगों की दृष्टि से निम्न शब्द लिखे जा रहे हैं। —सम्पादक]

इस प्रार्थना को समझने के लिये अच्छा तो यह होता कि पिछले कुछ वर्षों की प्रार्थनाओं का पाठकों को अक्षरशः पता होता और हमारा विचार है कि कभी पिछले सब वर्षों की जब से ऐसी प्रार्थना का क्रम आरम्भ हुआ है प्रार्थनाओं को क्रमिक रूप में पाठकों को दे सकें। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री ५. अमरनाथ जी ...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी संक्षेप में इतना संकेत कर देना पर्याप्त है कि १६४० की प्रार्थना 'आत्मविशुद्धि' की प्रार्थना थी; १६४१ में दैव योद्धा बनने की प्रार्थना की गई थी, उस युद्ध में जिसे कि संसार अपने आध्यात्मिक जीवन के लिये आसुरिक शक्तियों के विरुद्ध लड़ रहा है, १६४२ में सहन करने की शक्ति की प्रार्थना की गई थी और प्रत्येक शत्रु पर विजय पाने वाले भगवान् की महिमा मनाई गई थी। अब इस १६४३ की प्रार्थना में मुख्य बात इस ईश्वरीय विजय के अवसर पर चुनाव कर लेने की है। जैसे कि कठोपनिषद् के नचिकेता को श्रेय और प्रेय में से श्रेय को ही हर हालत में वरण कर लेना था, इसी प्रकार यह नया वर्ष हमारे लिये आसुरिक असत्य और भगवान् के सत्य में से दूसरे को अपने लिये चुन लेने को आ रहा है, यदि हम ईश्वरीय इच्छा को देख सकें। और जब हमें यह ठीक चुनाव करना है तो हम इसे पूरी तरह ही करें। अधूरेपन से अब काम नहीं चलेगा। थोड़ा-थोड़ा दोनों तरफ हम नहीं रह सकेंगे। अतः मौलिक रूप में और अन्तिम तौर पर हमें एक तरफ, भगवान् की तरफ, भगवान् का हो जाना चाहिये। चुनाव का मौक़ा बार-बार नहीं आयेगा। यदि भागवत सत्य को पकड़ने के लिए, अपनाने के लिए हम तैयार नहीं होंगे तो बहुत बुरी तरह चूक जायँगे। अब इस बात का समय नहीं है कि हम धीमे-धीमे क्रम क्रम से यह चुनाव करें। यह तो हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकबारगी और जड़ तक पहुँचने वाला, बिना शर्त का, निर्णायक, अन्तिम, पूरा और सदा के लिए चुनाव होना चाहिए। यह संदेश लाता हुआ १६४३ का वर्ष आ पहुँचा है।

इस तरह हमें अपने जीवन को बिल्कुल पलट देना है, बिल्कुल नया हो जाना है। पुरानी चीज़ को छोड़ देना बड़ा कठिन होता है। परमेश्वर हमें बल दे कि हम पुराने असत्य के जीवन को बिलकुल छोड़ सकें। जिस मिथ्यापन में हम डूबे हुए थे, उसमें से बाहर निकल सकें; उभर सकें, ऊपर आ सकें। भगवान् के सत्य का दिव्य प्रकाश ऊपर से आ रहा है। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि यह दुर्लभ वस्तु हमारे लिए आ रही है। हम इसे पहिचानें। ऊपर उठें। चूक न जायें। परमेश्वर हमें बल दे कि हम उठ सकें और इसे पकड़ सकें। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम विशुद्ध, पवित्र होकर निकलेंगे और परमेश्वर की विजय के पात्र होवेंगे। हम शुद्ध हो निखर कर ऊपर उभरेंगे और परमेश्वर की विजय हमें प्रसाद में मिलेगी।

सो हम इस वर्ष पवित्र होकर और परमेश्वर की विजय के पात्र बनकर उसके सत्य में उदित हो जायें।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री पं. अमानाथ जी ...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द के सूत्र-वचन

१ लक्ष्य

जब हम ज्ञान करने से पार हो चुकेंगे तब हमें यथार्थ ज्ञान होगा। तर्क सहायक था और तर्क ही बाधक है।

जब हम सँकल्प करने से पार हो चुकेंगे तब हमें शक्ति प्राप्त होगी। प्रयत्न सहायक था और प्रयत्न ही बाधक है।

जब हम सुखोपभोग करने से पार हो चुकेंगे तब हमें आनन्द प्राप्त होगा। इच्छा सहायक थी और इच्छा ही बाधक है।

जब हम व्यक्ति-भेद करने से पार हो चुकेंगे तब हम वास्तविक 'पुरुष' होंगे। अहम्भाव सहायक था और अहम्भाव ही बाधक है।

जब हम मनुष्य-पने से पार हो चुकेंगे तब हम वास्तविक 'मनुष्य' बनेंगे। पशुभाव सहायक था और पशुभाव ही बाधक है।

तर्कणा को व्यवस्थित अन्तःस्फुरणा में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में प्रकाश हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न को आत्म-शक्ति के एकरस और महान् प्रवाह में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में चेतन-शक्ति हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

भोग को एकरस और निर्विषय हर्षावेश में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में आनन्द हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

विभक्त व्यक्ति को विश्व-व्यक्ति में परिणत कर दो; तुम सर्वांश में दिव्य हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

पशु को गोपाल में परिणत कर दो, तुम सर्वांश में 'कृष्ण' हो जाओ। यह तुम्हारा लक्ष्य है।

*　　*　　*

इस समय जो कुछ मैं नहीं कर सकता हूँ वह इसका द्योतक है कि भविष्य में उसे मैं कर लूँगा। असम्भवता का भान ही सब सम्भवों का प्रारम्भ है। क्योंकि यह ऐहलौकिक विश्व एक अयुक्ता-भास और एक असम्भवता था, इसलिये शाश्वत देव ने अपनी सत्ता में से इसे उत्पन्न किया।

असम्भवता इसके सिवाय और कुछ नहीं कि यह अपेक्षया बड़े, अभी तक असिद्ध सम्भवों का संकलन-मात्र है। असम्भवता के पीछे एक उन्नत अवस्था और एक अभी तक पूरी न हुई यात्रा छिपी रहती है।

यदि तुम चाहते हो कि मानवता और आगे उन्नत हो तो पहले से ही मान रखे हुए सब विचारों को आघात पहुँचाओ। इस प्रकार आहत किया हुआ विचार जागता है और रचना-शक्ति से युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री प. अमरनाथ जी ...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है। अन्यथा यह यन्त्र की तरह बार-बार एक ही क्रिया को दोहराने में सन्तुष्ट रहता है और भूल से इसी को अपनी क्रिया समझता रहता है।

अपनी ही धुरी पर घूमना मानवीय आत्मा के लिये एकमात्र गति नहीं है। इसे एक अक्षय प्रकाश के सूर्य के चारों ओर भी चक्कर काटना है।

अपने निजी स्वरूप की चेतना को पहले तुम अपने अन्दर प्राप्त कर लो, फिर विचार करो और कर्म करो। प्रत्येक जीवित विचार एक तैयार हो रहा संसार है; प्रत्येक वास्तविक कर्म एक व्यक्त रूप में आया हुआ विचार है। यह भौतिक संसार विद्यमान है, इसलिये क्योंकि दैवी स्व-चेतना में एक विचार ने खेलना प्रारम्भ किया था।

अस्तित्व या सत्ता के लिये विचार आवश्यक नहीं है और नाहीं विचार इसका कारण है। परन्तु संभूति के लिये—कुछ होजाने के लिये—यह एक उपकरण है। मैं वही हो जाता हूँ जो कुछ अपने अन्दर देखता हूँ। वह सब जो कि विचार मुझे सुझाता है मैं कर सकता हूँ। वह सब कुछ जो कि विचार मेरे अन्दर प्रकट करता है, मैं हो सकता हूँ। ऐसा मनुष्य का अपने में अटल विश्वास होना चाहिये, क्योंकि भगवान् उसके अन्दर बसता है।

हमारा कार्य उसी को सदा दोहराते रहना नहीं है जिसे मनुष्य पहले ही कर चुका है, बल्कि हमने नये अनुभवों को और स्वप्न तक में अचिन्तित प्रभुताओं को उपलब्ध कर लेना है। काल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा और संसार हमें हमारे क्षेत्र के रूप में दिये गये हैं; दृष्टि, आशा और रचनात्मक कल्पना हमारी प्रेरणा-दात्री होकर उपस्थित हैं; संकल्प, विचार और परिश्रम हमारे सर्व-साधक उपकरण हैं।

वह नई बात कौन सी है जिसे हमने अभी पूरा करना है ? प्रेम, क्योंकि अभी तक हमने घृणा और आत्मतुष्टि को ही पूरा किया है। ज्ञान, क्योंकि अभी तक हमने भ्रान्ति, इन्द्रिय-प्रतीति और विचार-क्रिया को ही सिद्ध किया है। आनन्द, क्योंकि अभी तक हम सुख, दुःख और उदासीनता ही प्राप्त कर पाये हैं। शक्ति, क्योंकि अभी तक तो दुर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय को ही हमने पाया है। जीवन, क्योंकि अभी तक हमने जन्म, वृद्धि और मरण को ही पूरा किया है। एकता, क्योंकि अभी तक हमने सँग्राम और संघभाव की ही प्राप्ति की है।

एक शब्द में, दिव्यताप्राप्ति—अपना पुनर्निर्माण कर अपने आपको परमेश्वर की दिव्य प्रतिमा बना लेना।

२ सत्ता का आनन्द

यदि ब्रह्म केवल मात्र एक व्यक्तित्व-रहित निर्विशेषभाव है जो कि हमारी सविशेष (मूर्त) सत्ता के प्रत्यक्ष तथ्यों का निरन्तर खण्डन-रूप है तो विराम ही इस सब कुछ का ठीक अन्त होना चाहिये था। लेकिन नहीं, प्रेम, आनन्द और स्वात्म-भान भी हैं जिनकी कि अवगणना नहीं की जा सकती।

यह विश्व न तो केवल एक गणित का सूत्र है जो कि सँख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री पं. अमरनाथ जी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तत्व कहे जानेवाले कुछ मानसिक निर्विशेष भावों के पारस्परिक सम्बन्ध को हल करने के लिये लगाया जा रहा है जिससे कि अन्त में हम शून्य या अभावात्मक इकाई के उत्तर तक पहुँच जायें; नाहीं यह शक्तियों के किसी समीकरण का रूप धारण किए हुए केवल एक भौतिक क्रिया-व्यापार है। यह एक आत्म-प्रेमी का आनन्द है, एक शिशु का खेल है, एक कवि की अनन्त आत्म-बहुरूपता है जो असीम रचना कर सकने वाली अपनी ही शक्ति के आनन्दोल्लास से उन्मत्त है।

हम भले ही उस परमदेव के बारे में ऐसा कह दें मानो कि वह एक गणितज्ञ है जो विश्व-रूपी प्रश्न को संख्याओं में हल कर रहा है अथवा वह एक विचारक है जो परीक्षणों के द्वारा नियमों के सम्बन्धों की तथा शक्तियों के संतुलन की एक समस्या को हल कर रहा है; लेकिन साथ ही हमें उसके बारे में यूँ भी कहना चाहिए कि वह एक प्रेमी है, समष्टिगत तथा व्यष्टिगत रागों का एक रागी है, एक शिशु है या एक कवि है। विचार का पार्श्व ही पर्याप्त नहीं है, आनन्द का पार्श्व भी पूर्णतया ग्रहण करना चाहिए। विचार, शक्तियाँ, सत्ताएँ, नियम ये सब खोखले साँचे हैं यदि ये ईश्वरीय आनन्द के प्राण से भरपूर नहीं हैं।

ये सब दृश्य वस्तुएँ प्रतिमाएँ हैं, लेकिन यह सब कुछ ही एक प्रतिमा है। निर्विशेष भावना हमारे सामने ईश्वरीय सत्यों के शुद्ध विचार को रखती है, ये प्रतिमायें उनकी जीवित-जागृत वास्तविकता को हमें दिखाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि विचार ने शक्ति का आलिंगन करके लोकों को उत्पन्न किया तो सत्ता के आनन्द ने विचार को उत्पन्न किया। क्योंकि अनन्त परमेश्वर ने अपने अन्दर अपरिमेय आनन्द को धारण किया इसीलिये लोक-लोकान्तर और विश्व उत्पन्न हुए।

सत्ता की चेतना और सत्ता का आनन्द सबसे पहले माता-पिता हैं, उत्पादक हैं। साथ ही वे अन्तिम परात्पर सत्तायें हैं। अचेतनता चेतन आत्मा की केवल एक मध्यवर्ती मूर्छा या इसकी तमोवृत सुप्ति है। दुःख और आत्म-निर्वाण भी सत्ता के ऐसे आनन्द ही हैं जो केवल अन्य स्थान पर या अन्य प्रकार से अपने आपको पाने के लिये अपने से दूर भाग रहे हैं।

सत्ता का आनन्द काल से सीमित नहीं है, इसका आदि या अन्त नहीं है। परमेश्वर केवल इसलिए ही वस्तुओं के एक रूप से बाहर आता है कि वह दूसरे रूप में प्रवेश करे।

आख़िर परमेश्वर और क्या है? एक सनातन शिशु है जो एक सनातन उद्यान में एक सनातन खेल खेल रहा है।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री प. अमरनाथ जी १२५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांडिचेरी के परमहंस

श्रीअरविन्द उन महापुरुषों में से हैं जो संसार में कभी-कभी उत्पन्न होते हैं। उनकी महानता अभी संसार को विदित नहीं है, पर मेरी ऐसी श्रद्धा है कि एक दिन संसार उसे अवश्य जानेगा।

ऐसे महापुरुष के विषय में भी भारतवर्ष में और विशेषतः उत्तर भारत में लोगों को बहुत कम परिचय है। इसका कारण यही है कि इस विज्ञापन और प्रचार के युग में भी उनको विज्ञापनबाज़ी-प्रोपेगन्डा-में ज़रा भी विश्वास नहीं है। सत्य में, सत्य-स्वरूप परमेश्वर में प्रतिष्ठित होने के कारण उन्हें संसार की और किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं है। वे स्पष्ट देखते हैं कि जो सत्य है, वह स्वयमेव प्रकट होता है, सूर्य की तरह उदित होता है; और जो उससे लाभ उठाना चाहते हैं, वे स्वयं उसके लिए आकृष्ट होते हैं। दस-बारह वर्ष पहले की बात है, जब कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर यूरोप जाने लगे तो वे श्रीअरविन्द से मिलने आये। उस समय उन्होंने श्रीअरविन्द से कोई सन्देश माँगा, जिसे वे वहाँ जाकर सुना सकें। श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उत्तर था, 'मैं सत्य को दूसरों के दरवाज़े पहुँचाने में विश्वास नहीं रखता'—(I do not believe in bringing truth to another's door) जिसको मुझसे कुछ लेना होगा वह मेरे पास आयेगा। यही कारण है कि हम लोग इनके विषय में कुछ भी नहीं जानते, अधूरा जानते हैं या भ्रमपूर्ण बातें जानते हैं।

ईश्वर-कृपा से पिछले पाँच-छः वर्षों से मुझे श्रीअरविन्द-आश्रम में जाकर वर्ष में ४, ५ महीने तक रहने का अवसर होता है और मैं आश्रम से संबद्ध हो चुका हूँ। इसी निकट परिचय के आधार पर मैं श्रीअरविन्द-आश्रम के विषय में पाठकों को कुछ जानकारी देने का यत्न करूँगा।

१ श्रीअरविन्द की सिद्धि

सरकार श्रीअरविन्द को शायद अब तक भी एक भयंकर विद्रोही समझती है। भारत की शिक्षित जनता उनको एक महान् देशभक्त के रूप में पूजती है। इसी कारण उनको कई बार काँग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए निमंत्रित किया जा चुका है। पर वे अब इस स्थिति से ऊपर हो चुके हैं। अब से लगभग तेंतीस वर्ष पूर्व अर्थात् उन्नीस सौ दस में वे अपने तीन पागलपन बताते हुए इधर आये थे। अपना सर्वस्व भारतमाता के चरणों में समर्पित करना, भारतमाता को बन्धन-मुक्त करना और तीसरे, भगवान् का साक्षात्कार, ये थे उनके तीन पागलपन। पर शीघ्र ही पहली दो बातें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी विराट साधना में समा गईं। पांडिचेरी पहुँच कर वे पूरी तरह योग-साधना में लीन हो गये। पाठकों को आश्चर्य होगा कि पिछले पच्चीस वर्षों से वे अपने मकान से बाहर तक नहीं निकले। वे योग के जिस ध्येय के लिए साधना कर रहे थे, उसमें उनको सन् उन्नीस सौ छब्बीस (१९२६) की चौबीस (२४) नवम्बर को सफलता प्राप्त हुई। तभी से श्रीअरविन्द ने अन्य साधकों को भी योग-साधना में सहायता करने का कार्य अपने ऊपर लिया। यहीं से श्रीअरविन्द-आश्रम का वास्तविक आरम्भ होता है।

२ माताजी

आश्रम की व्यवस्था के विषय में जानने के लिए माता जी के व्यक्तित्व को जानना बहुत आवश्यक है। माताजी जन्म से एक फ्रेंच महिला हैं। इनका नाम है मिरादेवी। आश्रम में सभी उन्हें माताजी, मा, मदर (Mother) इसी नाम से जानते या संबोधित करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से वे श्रीअरविन्द के समकक्ष ही मानी जाती हैं। आश्रम का आरंभ होने से पहले जब श्रीअरविन्द अपनी एकान्त साधना में थे, तब कुछेक साधक उनके साथ साधना में रहते थे। उसी बीचमें, अर्थात् उन्नीस सौ चौदह (१९१४) में माताजी भारत में आईं। वे जापान में भी कुछ वर्ष रही हैं। भारत आने से पहले वे यूरोप और उत्तर अफ्रीका में रहकर अपनी साधना करती रही हैं। पांडिचेरी में उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आना अनायास ही हुआ। श्रीअरविन्द से मिलीं, और तब से आश्रम में रहने लगीं। १९१४ में यूरोपीय युद्ध के कारण उन्हें तुरन्त ही फ्राँस जाने की ज़रूरत पड़ी। युद्ध के बाद वे फिर यहाँ आईं। माताजी के ही आग्रह से श्रीअरविन्द ने 'आर्य' पत्र का १९१४ में प्रकाशन आरंभ किया था। परिचय होने पर श्रीअरविन्द को मालूम हुआ कि माताजी की आध्यात्मिक स्थिति बहुत उन्नत है। पर अब तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दोनों की स्थिति एक समझी जाती है। जो बात श्रीअरविन्द को कहनी हो वह निस्संकोच माताजी को कही जा सकती है। जब से आश्रम की स्थापना हुई है—अर्थात् नवम्बर १९२६ से—उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था माताजी के ही हाथों में है। और तभी से श्रीअरविन्द किसी से न बात करते हैं और न मिलते हैं। माताजी ही सारा कार्य-संचालन करती हैं। मानो माताजी प्रकृति-रूप हैं, और श्रीअरविन्द पुरुष-रूप।

माताजी भी कम-से-कम बोलती हैं। आवश्यकता होने पर वे साधकों को मिलने का अवसर भी देती हैं। उनके दर्शन आजकल प्रातः ६॥ बजे के लगभग तथा दोपहर को प्रतिदिन हो सकते हैं। किन्तु बिना विशेष आज्ञा लिये उनसे भी कोई वार्तालाप नहीं हो सकता।

माताजी को प्रणाम करने का अवसर भी अनुमति लेकर प्राप्त किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माताजी के संपर्क में आने पर ही उनकी महिमा और दिव्यता की कुछ अनुभूति हो सकती है। मुझे उन से मिलने का प्रथम बार ही जो अवसर हुआ था उसका मुझ पर कुछ विशेष प्रभाव हुआ था, ऐसा कह सकता हूँ।

३ श्रीअरविन्द के दर्शन

श्रीअरविन्द चौबीस नवम्बर उन्नीस सौ छब्बीस से सर्वथा एकान्त-सेवी हो गये थे। तब से उनसे न कोई मिल सकता था, न बात कर सकता था। पर इस सर्वथा एकान्त सेवन के १२ वर्ष बाद १९३८ से (जबकि उनके पैर में चोट लगी थी तब से) ७, ८ साधकों को उनकी सेवा के लिए उनके पास बारी-बारी से उपस्थित रहने की अनुमति हुई है। पर इनके अतिरिक्त अब भी अन्य कोई साधक तक उनके पास नहीं जा सकता। तो अन्य लोगों के आध्यात्मिक कल्याण के लिये यह व्यवस्था की गई है कि वर्ष में चार दिन उनके दर्शन प्राप्त किये जा सकते हैं। वे चार दिन निम्नलिखित हैं—

२१ फेब्रुएरी (माताजी का जन्म-दिन)
२४ एप्रिल (माताजी का पांडिचेरी आ जाने का दिन)
१५ अगस्त (श्रीअरविन्द का जन्म-दिन)
२४ नवम्बर (श्रीअरविन्द का सिद्धि-दिवस)

इन चार दिन जो उनके दर्शन प्राप्त करना चाहें, उन्हें पहले से दर्शन की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये। बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज्ञा प्राप्त किये किसी को वहाँ नहीं जाना चाहिये। ऐसे ही जाना व्यर्थ भी हो सकता है। पहिले तीन ही दर्शन होते थे। चौथा २४ एप्रिल का दर्शन १६३६ से ही प्रारम्भ हुवा है। इस दिन साधारणतया बाहर के लोगों को दर्शन की अनुमति नहीं दी जाती। यह दर्शन मुख्यतया आश्रम-वासियों के लिये ही है। मैंने सन् उन्नीस सौ पैंतीस की इक्कीस फेब्रुएरी के दिन प्रथम बार उनका दर्शन-लाभ किया। इस अवसर पर बाहर के लगभग तीन सौ व्यक्ति, भिन्न-भिन्न जगह से, दर्शनार्थ आये थे। पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिये कि दर्शन के समय में भी उनसे बातचीत नहीं की जा सकती। दर्शन के लिये लगभग आधा, एक या डेढ़ मिनट (संख्या के अनुपात में) प्रत्येक दर्शनार्थी को मिलता है। प्रथा यह है कि दर्शनार्थी एक नियत क्रम में फूल व मालाएँ लेकर अथवा खाली हाथ जाते हैं, श्रीअरविन्द के और उनकी दाहिनी ओर बैठी माताजी के दर्शन करते हैं। उनकी तरफ़ देखते हुए, ध्यान करते हुए, या प्रणाम करते हुए अपनी-अपनी शैली के अनुसार दर्शनार्थी ये अपने एक-दो क्षण बिता देते हैं। दर्शन में मैंने उनकी मूर्त्ति को चित्र में देखी मूर्ति से अधिक भव्य पाया। उनका कोई भी चित्र पचीस बरस से कम पुराना नहीं है। तब से उनका चित्र लेने की कभी अनुमति नहीं मिली।

बहुत-से दर्शनार्थी ऐसा अनुभव करते हैं कि इस दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उनकी आत्मिक उन्नति होती है। पहली बार पांडिचेरी जाता हुआ जब मैं वर्धा से मद्रास के लिए गाड़ी पर सवार हुआ तो उसी डिब्बे में एक मद्रासी युवक से मेरी भेंट हो गई। वह दर्शन के लिए जा रहा था, पहले भी कई बार दर्शन कर चुका था। मैंने उससे पूछा कि—तुम क्यों दर्शन करने जाते हो, क्या कौतूहल-वश ? 'इससे मुझे आन्तर बल (Inner strength) प्राप्त होता है'—उसने कहा। 'तुम तो पहले भी दर्शन कर चुके हो, क्या कभी ऐसा अनुभव भी हुआ है ?'—मैंने फिर प्रश्न किया। उसने कहा—हाँ ! तभी तो फिर दर्शन करने की इच्छा होती है। यह बात औरों के भी अनुभव की है। बहुतों में एक बार का दर्शन आध्यात्मिक भूख लगा देता है और उन्हें फिर-फिर दर्शन करने की उत्कण्ठा होती है। ऐसे भी हैं जिनको एक बार के दर्शन के बाद फिर कभी दर्शन की इच्छा नहीं होती। यह प्रत्येक की अपनी ग्रहण-शक्ति और अभीप्सा पर निर्भर करता है।

079.445

४ आश्रम

लोग समझते हैं श्रीअरविन्दाश्रम किसी एक बड़े-से दायरे में शहर से बाहर किसी संस्था की तरह अलग बना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। आश्रम बनाया नहीं गया है। स्वतः बन गया है। वृक्ष की तरह स्वभावतः विकसित हुआ है। अतः जिस मकान में श्रीअरविन्द रहते थे उसमें तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे कुछ दूरी पर लगभग ६० अलग मकानों में आश्रम-वासी रहते हैं। बीच-बीच में दूसरे नगरवासियों के मकान भी आ जाते हैं। आश्रमवासियों को जोड़ने वाले श्रीअरविन्द तथा माताजी हैं। कोई घिरा हुआ स्थान या किसी अन्य बाहिरी स्थिति की उन्हें जोड़ने के लिए आवश्यकता नहीं है। हाँ, सब साधक, भोजन, ध्यान आदि के सामुदायिक कार्य प्रायः एक स्थान पर एकत्र होकर मिल कर करते हैं।

आजकल लगभग तीन सौ (३००) साधक वहाँ रहते हैं। इनमें दो सौ के लगभग साधक और शेष सौ के लगभग साधिकायें हैं। कुछ लोग फ्रान्स, इंग्लैएड, अमेरिका आदि के भी आये हुए हैं। कुछ मुसलमान भी हैं। पर यह तो केवल पाठकों के कौतूहल की दृष्टि से लिखा। वहाँ तो वस्तुतः जाति, रंग, मज़हब का कुछ भी भेद नहीं है। वहाँ के वातावरण की एकतानता में इस सब की कल्पना भी नहीं है। वहाँ ये सब एक हैं। प्रान्तों की दृष्टि से गुजरातियों और बंगालियों की संख्या सबसे अधिक है, फिर मद्रासी हैं। महाराष्ट्र की एक-दो महिलाएँ व भाई अभी आये हैं। पंजाब और संयुक्तप्रान्त से पिछले वर्षों ही में ६, १० साधक वहाँ पहुँचे हैं। चार-पाँच बिहार के हैं। राजपूताने के भी एक दो सज्जन हैं। सब साधक अपने समस्त अतीत को, जातीयता, प्रान्तीयता आदि सब राग-भावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री प. अमरनाथ जी १९५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को छोड़कर ही आगे बढ़ते हैं। वहाँ की व्यावहारिक भाषा अंग्रेजी है। श्रीअरविन्द और सब भाषाओं के पत्र भी प्रायः पढ़ लेते हैं किन्तु उनका उत्तर सदा अंग्रेजी में ही होता है। आपस में साधक बंगाली, गुजराती, फ्रेञ्च, तामिल, तेलुगु और हिन्दी में भी बात करते हैं। कुछ मद्रासियों के अतिरिक्त हिन्दी प्रायः सब समझते हैं। महिलाएँ तो प्रायः निरपवाद रूप से हिन्दी में बातचीत कर सकती हैं, और समझ सकती हैं। भारतीय भाषा का प्रतिनिधित्व यहाँ हिन्दी ही करती है, यद्यपि मूलतः संयुक्त-प्रान्त के तो तीन-चार ही साधक हैं और वे भी अपेक्षया नये। हिन्दी के ठीक जाननेवाले तो अवश्य गिने-चुने ही हैं।

५ ब्रह्मचर्य

आश्रम में पति-पत्नी सम्बन्ध से कोई नहीं रह सकता। ऐसे साधक भी हैं, जिनकी पत्नी भी उनके साथ या कुछ बाद में आश्रमवासिनी साधिका के रूप में स्वीकृत हुई, किन्तु वे सब जुदा रहते हैं। वहाँ जितने साधक-साधिका रहते हैं, वे केवल साधना के लिए ही। सब साधक-साधिकाओं का सम्बन्ध सीधा माताजी और श्रीअरविन्द से है। अतः वहाँ स्त्री-पुरुषों का परस्पर सम्बन्ध एक माँ-जाये भाई-बहिनों का पवित्र सम्बन्ध है। यही सम्बन्ध उनका है जो पूर्व जीवन में परस्पर विवाहित दम्पति के रूप में रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द ब्रह्मचर्य पर अत्यधिक बल देते हैं। जो व्यक्ति काम-वासना को सर्वथा शान्त नहीं करना चाहे, उसका श्रीअरविन्दाश्रम में कुछ काम नहीं है। ऐसे आदमी को श्रीअरविन्द कहते हैं कि यदि तुम इसके लिए भी तैयार नहीं हो तो तुम बाहर दुनिया के सामान्य जीवन में ही रहो, यह मार्ग तुम्हारे लिए नहीं है। मैं जहाँ तक अनुभव कर सका हूँ, वहाँ तक यही कह सकता हूँ कि वहाँ ब्रह्मचर्य का प्रबल वातावरण है। सब इसका प्रेम से पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

६ आश्रम-नियम

बहुत से लोग आश्रम के नियम या प्रवेश के नियम पूछते हैं। पर वहाँ ऐसे कोई छपे हुए नियम नहीं हैं, क्योंकि यह कोई सार्वजनिक संस्था नहीं है। असल में यहाँ बाह्य-नियमों का कुछ महत्त्व है ही नहीं। सायंकाल ७ और ८ बजे के बीच में जो सम्मिलित ध्यान होता है जिसमें माताजी आती हैं उसमें सबका सम्मिलित होना भी कोई आवश्यक नियम नहीं है। बाह्य नियम के तौर पर केवल कुछ लिखे हुए नियम हैं जो आश्रम में आकर रहनेवाले को पढ़ने के लिये दे दिये जाते हैं।

साधक रूप में आश्रम में प्रविष्ट होने का भी कुछ रेखाबद्ध नियम नहीं है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि मैंने किसी को नहीं बुलाया है। जो व्यक्ति उनसे आश्रमवासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने की प्रार्थना करते हैं, उन्हें वे अपनी दृष्टि के अनुसार ही स्वीकृत या अस्वीकृत करते हैं। वे स्वीकृत (आश्रम में प्रविष्ट) उसे ही करते हैं जिसे वे अपने योगकार्य का अधिकारी समझें या उसमें किसी प्रकार सहायक समझते हों।

मैं बहुत-सी अच्छी संस्थाओं और आश्रमों को अन्दर से जानता हूँ। पर मैंने जितनी कम से कम रगड़ के साथ, शान्ति के साथ इस आश्रम का काम चलता देखा है, वैसा और कहीं नहीं। इसका कारण यही है कि यहाँ सब लोग श्रीअरविन्द में पूर्ण-भक्ति से प्रेरित होकर ही आये हैं और इसी श्रद्धा से यहाँ रहते हैं। इस परिवार का उद्देश्य—जैसा कि मैं बताने का यत्न करूँगा—अत्यन्त महान् है। यह भी यहाँ की व्यवस्था की उच्चता का कारण है। और फिर उस आश्रम में व्यक्तियों को पूरा परख कर लिया जाता है। यह कहा जा सकता है कि श्रीअरविन्द अपनी दिव्य-दृष्टि से देखकर ही किसी को आश्रमवासी बनाते हैं अतः इस आश्रम में सब कुछ श्रीअरविन्द व माताजी की आज्ञा ही है, और सब लोग उन्हें अपना पूरा समर्पण करके रहने का यत्न करते हैं। एवं यहाँ बाह्य नियम-बन्धन कोई नहीं है, पर आन्तरिक स्वाभाविक बन्धन बहुत दृढ़ है।

यद्यपि यह आश्रम कोई सार्वजनिक संस्था नहीं है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो भी आश्रम के व्यय का पूरा-पूरा हिसाब रखा जाता है। बेशक उस हिसाब को देखने का जनता का अधिकार हो ऐसी बात नहीं है। जैसे अपने घर की सजीव व्यवस्था के लिए आय-व्यय का पूरा नियन्त्रण रखना आवश्यक है, उसी तरह श्रीअरविन्द के इस घर में होता है। यह सब कुछ उनकी अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति है, सब पर उनका या माताजी का अपना स्वत्व है, और आश्रमवासी इस विशाल घर में उनके अपने बच्चे हैं।

दर्शकों को आश्रम दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। कभी-कभी किन्हीं विशेष अवस्थाओं में माताजी की आज्ञा लेकर ही दिखाया जाता है। इसलिए वैसी उत्सुकता मन में लेकर वहाँ किसी को नहीं जाना चाहिये।

७ भोजन-व्यवस्था

बहुतों को शायद ऐसा भ्रम होगा कि वहाँ आहार के विषय में कोई संयम-नियम नहीं है। वहाँ जाने से पहले मैंने भी यह सुन रखा था कि वहाँ मांस, शराब का भी परहेज़ नहीं है। पर वहाँ जाकर मैंने इस बात को एकदम ग़लत पाया। गौ का दूध, दही, बिना मसाले का शाक व दाल, चावल, केले, नींबू और बिना छने आटे की डबल रोटी—यही वहाँ का नियत आहार है। मांस, मछली, शराब का वहाँ कुछ काम नहीं, मिर्च-मसाले और सिगरेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री प. अमरनाथ जी ...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सब का निषेध है। यह निषेध उन थोड़े-से नियमों में लिखा हुआ है जो कि आश्रमवासी होने पर पढ़ने को दिये जाते हैं।

वहाँ तीन समय भोजन होता है। प्रातः-सायं का भोजन हलका होता है। आश्रमवासियों का भोजन निम्न प्रकार से है।

प्रातराश—पावभर गो-दुग्ध, एक चम्मच कोको-द्रव, डबल रोटी के तीन टुकड़े और केला।

मध्याह्न—चावल, रोटी, दाल या शाक, नींबू का एक टुकड़ा, पाव-भर दही, दो केले।

सायम्—पाव-भर दूध, रोटी, शाक।

श्रीअरविन्द और माताजी भी फलों का रस, दूध, शाक, शाकरस, रोटी आदि यही थोड़ी मात्रा में सेवन करते हैं।

भोजन बनाने का सब काम साधक-साधिकाओं के हाथ में है। अतः वहाँ का भोजन बहुत सफ़ाई से बनता है। भोजन बार-बार नहीं परोसा जाता। भोजनशाला के एक कमरे में एक बड़ी-सी मेज़ पर भोजन-सामग्री स्वच्छता और व्यवस्था से रखी रहती है। तीन-चार साधक ठीक समय पर वहाँ देने के लिए खड़े रहते हैं। अन्य साधक अपने-अपने समय पर आते हैं। भोजन लेते हैं, और दूसरे बड़े कमरों में बिछे आसनों पर बैठकर, सामने रखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिपाइयों पर अपनी थाली रखकर शान्ति से भोजन करने लग जाते हैं। साधिकाओं के बैठने की व्यवस्था अलग कमरों में है। जो साधक कार्यवश नियत समय से कुछ देर में आते हैं, उनके लिए एक अलग कमरा है। वहाँ एक जालीदार अलमारी में उनके भोजन की थाली ढककर रख दी जाती है। जब उन्हें अवकाश मिलता है, वे आकर अपना भोजन कर जाते हैं। बर्तन माँजने-धोने का काम भी साधक ही करते हैं।

डबल रोटी बनाने के लिए आश्रम की अपनी बिजली की चक्की और बेकरी है। यहाँ भी सब काम साधक ही करते हैं।

८ अन्य व्यवस्था

उनके योग में 'कर्म' को उत्तम स्थान प्राप्त है। वहाँ सभी साधक अपनी साधना के अंग के तौर पर कुछ न कुछ कार्य करते हैं। माताजी जिस साधक को जो काम सौंपती हैं, उसे वही करना होता है। और प्रायः साधक उसे अपना कल्याणकारी कार्य समझकर, भगवदर्पण बुद्धि से करते हैं। 'कर्म' साधना से अलग नहीं हो जाता। अपितु दिये गये अपने-अपने 'कर्म' में ही साधक अपनी आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया को परखता है और अपनी स्थिति को समझने का प्रयत्न करता है। आटा पीसना, डबल रोटी बनाना, रसोई पकाना, सफ़ाई, द्वार-रक्षा, बढ़ई का काम, वस्तु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री प० अमरनाथ जी १८५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग, लोहारी, उद्यान-विभाग, टाइपिंग, ग्रन्थ-लेखन, कविता, संगीत, चित्राङ्कन, आलेख्य, वस्तु-वितरण, पुस्तकालय-प्रबन्ध, चिकित्सा, दफ़्तरी काम आदि सभी प्रकार के काम जो आश्रम में किये जाते हैं उन सबको साधना की दृष्टि से, समता, पवित्रता, सौन्दर्य और विवेकपूर्ण शान्ति से करने का यत्न किया जाता है।

प्रत्येक साधक अपना वही कार्य करता है, जो उसे सौंपा गया है, अथवा जिसे करने की उसने अनुमति प्राप्त कर ली है। मैं कह चुका हूँ ऊपर से देखने में वहाँ साधक को बहुत स्वाधीनता है; पर अपने अन्तर्नियम से प्रत्येक साधक बँधा हुआ है। वहाँ कोई ऐसा सार्वजनिक नियम भी नहीं है कि साधक इतने बजे जागें, इतने बजे स्नान करें, इतने बजे सोयें—आदि। फिर भी प्रत्येक साधक अपनी वैयक्तिक दिनचर्या का पालन करने में सचेत रहता है।

आश्रम में कुछ ऐसी चीज़ें हैं जो एक प्रकार के लोगों को ज़रा अखरती हैं, उनके अपने मन में समझे हुए यौगिक वायुमण्डल के ही उन्हें विपरीत लगती हैं। जैसे माताजी का नित्य नयी रेशमी साड़ी पहिन कर आना, फूलों का बहुत निरर्थक सा उपयोग होना, साधकों का सौन्दर्य-पूर्ण या कुछ आरामतलबी का सा जीवन। किन्हीं दूसरों को वहाँ प्रथम दृष्टि में कुछ रहस्यमयता या ढोंग सा भी दीखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पर ये सब ऊपरी दृष्टि की बातें हैं। मुझे स्वयं पहिले दिन माताजी को—वे एक योरोपियन महिला हैं, रेशमी साड़ी पहिने बैठी हैं इस रूप में देखकर—प्रणाम करने की भी इच्छा नहीं होती थी। पर पीछे से, उनकी दिव्यता का कुछ अनुभव हो जाने पर सब बात बिलकुल पलट गई। ऐसा बहुतों के साथ होता है। अस्तु! यहाँ तो इतना ही कहना था कि वहाँ के आश्रम जीवन में, जैसे माताजी का अन्तः-प्रेरित अनुशासन, व्यवस्था और शान्ति वहाँ की एकदम दीखनेवाली अद्भुत विशेषतायें हैं वैसे ही वहाँ के जीवन में सौन्दर्य या कलापूर्णता भी है।

९ व्यय

पाठकों को उत्सुकता होगी कि इस प्रकार दो तीन सौ साधकों का व्यय कैसे चलता होगा। प्रसंगवश यह कहना अनुचित न होगा कि आश्रम में जो भी श्रम-विभाग चलते हैं, वे सब, आश्रम की आन्तरिक आवश्यकता के लिए ही चलते हैं। किसी भी रूप में आश्रम की बनी कोई चीज़ बेची नहीं जाती। और फिर अनुमानतः आश्रम का ख़र्च भी ७, ८ हज़ार रुपए मासिक से कम नहीं होगा।—वैसे तो जो आश्रमवासी के रूप में स्वीकृत होता है, वह अपना सब कुछ (जहाँ अपना अन्तरात्मा और मन, वहाँ अपना सब भौतिक धन भी) मा के चरणों में अर्पित कर देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार कुछ सम्पत्ति आश्रम को मिली है। पर वह बहुत थोड़ी है। आश्रम में अधिकांश तो ऐसे ही साधक हैं, जिनके पास एक कौड़ी भी नहीं थी। प्रत्येक आश्रमवासी पर ३०-३५ रुपया मासिक तो व्यय होता ही है।—यह रुपया कुछ भक्त लोगों से अनायास प्राप्त होता है। श्रीअरविन्द ने कभी आश्रम के लिए चन्दे की अपील नहीं की। बल्कि औरों को भी आश्रम के लिए धन एकत्र करने की कभी अनुमति नहीं दी। आश्रम को सार्वजनिक संस्था नहीं समझते। अतः जनता से न माँगते हैं और न जनता के प्रति उत्तरदायिता समझते हैं। जो कुछ स्वभावतः आता है उसी से उनका कार्य चलता है। श्रीअरविन्द की इस विषय में भी अपनी ही विशेष दृष्टि है। किसी मिलते हुए धन को वे अस्वीकृत भी कर देते हैं—यह तो देखा गया है। पर वे किस दृष्टि से अस्वीकार करते हैं यह मैं नहीं जानता। वे मानते हैं कि यह परमेश्वर का ही कार्य है, परमेश्वर ही रुपया देता है और देगा। जो कुछ उन्हें मिलता है उसे भगवान् से मिला जानकर ही स्वीकार करते हैं। अतएव धन के व्यय आदि के विषय में वे अपने को भगवान् के ही प्रति उत्तरदायी समझते हैं, अन्य किसी के प्रति नहीं। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि वहाँ कभी-कभी आर्थिक तंगी होती है, तो भी अर्थाभाव के कारण उनका कार्य कभी भी रुका नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० योग-मार्ग

श्रीअरविन्द जिस योग के गुरु हैं उसे उनके शब्दों में 'पूर्णयोग' कहना चाहिये। यह योग, हठयोग व राजयोग आदि की तरह, केवल शरीर या मन आदि से सम्बन्ध रखने वाला नहीं, किन्तु सम्पूर्ण आधार और सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्ध रखता है।

पूर्णयोग शक्ति-ईश्वरीय शक्ति—को मुख्य मानकर चलता है। श्रीअरविन्द ने 'The mother' में लिखा है कि तीन बातें हैं जो कि मनुष्य को अपने प्रयत्न से सतत करनी हैं। फिर, शेष सब माता की शक्ति कर देगी। पहली बात है अभीप्सा। परमेश्वर की तरफ़ जाने की अभिकांक्षा, दूसरी बात जो हमें करनी है, वह है, 'अस्वीकार' या 'त्याग' अर्थात् अपने अन्दर की हीन प्रकृति की गतियों का त्याग। तीसरी बात है आत्म-समर्पण, पूर्ण शरणागति, ये यत्न हम करते रहें, तो ऊपर से उतरनेवाली ईश्वरीय शक्ति हममें अद्भुत परिवर्त्तन करके हमें भगवान् का विशुद्ध यन्त्र बना देगी।

ऐसा कहा जा सकता है कि उस मार्ग में ऊपर से (सिर के ऊपर) शक्ति के अवतरण का तथा अन्दर (हृदय में) पवित्रता और भक्ति आदि की स्थापना का अभ्यास किया जाता है। इन दोनों केन्द्रों का विकास आवश्यक है।

श्रीअरविन्द के मार्ग की दो विशेषताएँ हैं। पहली है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री पं. अमरनाथ जी (?)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञानमय अवस्था को प्राप्त करना। उनका कहना है कि अभी तक संसार मनोमय दशा से ऊपर नहीं उठ सका है। और जब तक इससे ऊपर न उठ जाय तब तक इस संसार में कोई वास्तविक उन्नति व परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए उनके योग का पहला ध्येय उस परमोच्च अवस्था तक पहुँचना है। और फिर उस अवस्था तक पहुँच कर भी वहीं स्थित हो जाना नहीं है, किन्तु उस विज्ञानमय शक्ति को नीचे लाकर अपने मन, प्राण और शरीर का सर्वथा दिव्य रूपान्तर कर देना है। अतः दूसरी बात है—'दिव्य रूपान्तर' (Transformation)। इस प्रकार यह योग-मार्ग अपनी इस आरोह-अवरोह की उज्ज्वल प्रक्रिया से इस धरती की अत्यन्त स्थूल मरणावसन्न जड़ता को उस परम चैतन्य की ज्योति और दिव्य-जीवन के सम्पर्क द्वारा नवीन उद्बोधन और सनातन जीवित सौन्दर्य की ओर ले जाता है। श्रीअरविन्द की मान्यता है कि पहले के यद्यपि कोई विरले योगी विज्ञानमय तक पहुँचे थे, पर उन्होंने भी उसकी शक्ति द्वारा अपने नीचे के भागों का रूपान्तर करने की आवश्यकता नहीं समझी या नहीं कर पाये। कुछ ने मन तक का रूपान्तर किया, पर प्राण और शरीर के रूपान्तर का कार्य शायद किसी ने नहीं किया। श्रीअरविन्द की साधना के पिछले दस वर्ष 'शरीर का रूपान्तर उस दिव्य-शक्ति द्वारा किया जा सकता है या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं ?' इसी प्रयत्न में बीते हैं। और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नवम्बर उन्नीस सौ छब्बीस में उन्हें इस साधना में सफलता प्राप्त हो गई। अतएव चौबीस नवम्बर का दिवस उनका सिद्धि-दिवस माना जाता है।

११ श्रीअरविन्द का साहित्य

योगी हो जाने के बाद से श्रीअरविन्द का सब साहित्य उनकी 'आर्य'-नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका के १६१४ में प्रकाशित होने से प्रारम्भ होता है जो कि ७ वर्ष तक निकली, और एक तरह से उसी के साथ समाप्त भी हो जाता है। क्योंकि उसके बाद उन्होंने कुछ प्रकाशनार्थ लिखना है या कोई ग्रन्थ लिखना है, ऐसा करके कुछ भी नहीं लिखा है। उनकी जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे या तो 'आर्य' पत्रिका में निकले उनके लेखों के संशोधित या परिवर्द्धित संग्रह हैं या साधकों को उनके प्रश्नों के उत्तर में लिखे पत्रों के अंशों के सुव्यवस्थित संकलन हैं।

जो हो, श्रीअरविन्द का यह साहित्य बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है। उनकी यह अद्भुत विद्वत्तापूर्ण या ज्ञानप्रकाश-पूर्ण और अन्दर की तहों तक में प्रकाश पहुँचाने वाली तथा आत्मा को उद्बुद्ध एवं जागृत करनेवाली वाणी ही है जो बहुतों को श्रीअरविन्द की तरफ़ सहसा आकृष्ट करती है और उनकी महिमा को दिखाती है। बहुतों का इधर आना उनके साहित्य के स्पर्श से ही हुआ है। मुझे तो श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के एक दो वाक्य ही कहीं से पढ़ लेने से आत्मिक भोजन-प्राप्ति, आत्मिक तृप्ति मिल जाने को काफ़ी होते हैं। इसलिये मैं तो प्रत्येक पाठक से कहूँगा कि यदि वह श्रीअरविन्द को और जानना चाहता है, उनसे लाभ उठाना चाहता है, तो वह उनका साहित्य जरूर पढ़े।

वैसे जीवन-सम्बन्धी कोई विषय नहीं है, जिस पर श्रीअरविन्द ने आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं लिखा है, नहीं प्रकाश डाला है। योग, वेद, दर्शन, काव्य, समाजशास्त्र—सभी पर उन्होंने संसार के लिये अपना सन्देश दिया है, केवल उसे सुनने की जरूरत है।

पर उस सब साहित्य का विवेचन करना तो यहाँ सम्भव नहीं। पर चूँकि उनके सीधे योग-सम्बन्धी साहित्य को पढ़ना चाहनेवाले बहुत मिलते हैं और जरूर पूछते हैं कि हम कौन-कौन-सी पुस्तक पढ़ें, इसलिये उनके लिये इतना लिख देना पर्याप्त और उपयोगी होगा कि वे पहिले कुछ निम्न क्रम से निम्न पुस्तकें पढ़ें। (इनमें से जिनका हिन्दी-अनुवाद हो गया है उनके हिन्दी संस्करण का नाम भी सामने लिख दिया है) :—

(१) The Yoga and Its Objects	(१) हमारा योग और उसके उद्देश्य
(२) The Mother	(२) माता
(३) Essays on the Gita	(३) गीता-प्रबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) Lights on Yoga (४) योग-प्रदीप
(५) Bases of Yoga (५) योग के आधार
(६) The Riddle of This World (६) इस जगत् की पहेली

उनकी सब से बड़ी और मुख्य पुस्तक है The Life Divine। जो उनके दर्शन को पूर्णतया विस्तार से समझना चाहता है उसे यह पुस्तक अवश्य पढ़नी होगी। पर संक्षेप में उनकी विचारधारा को दिखाने के लिये उनकी एक सुन्दर छोटी-सी पुस्तक है Thoughts and Glimpses। योग-सम्बन्धी उनकी विस्तृत लेख-माला का नाम है Synthesis of Yoga, जो अभी पुस्तकाकार नहीं छपी। कुछ समय में उसके प्रकाशित होने की आशा है।

इसी प्रकार माता जी की प्रार्थनाओं की पुस्तक बहुत ही बढ़िया है। उसका एक भाग अंग्रेजी में Prayers and Meditations of the Mother नाम से अभी छपा है। पर सब से पहले तो (ऊपर के लिखे हुवे क्रम में पहले या दूसरे स्थान पर ही) उनकी 'Words of the Mother' पुस्तक पढ़नी चाहिये, जिसका कि 'मातृ-वाणी' नाम से हिन्दी में अनुवाद हो चुका है।

इसके अतिरिक्त वेद-आदि पर भी उनका साहित्य है जिसका कि वर्णन करने का स्थान नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ भावी कार्य-क्रम

'क्या वे फिर राजनैतिक क्षेत्र में आयेंगे ?' यह प्रश्न है जो प्रायः पूछा जाता है। यह प्रश्न आम लोगों के लिए स्वाभाविक भी है। पर जो मनुष्य जान गये हैं कि वे कितने अति महान् कार्य में लगे हैं, उनके लिए ऐसे प्रश्नों का अवकाश नहीं रह जाता। यद्यपि अभी तक (अभी मद्रास में काँग्रेस-सरकार आने पर यह हटा था) उनके दरवाजे के सामने फ्रेञ्च और ब्रिटिश सी० आई० डी० का पहरा लगातार लगा रहा है, और उस मकान में घुसनेवाला व्यक्ति अपने विषय में पता लगाये जाने से अपने को बचा नहीं सकता, तो भी यह सच है कि वहाँ विशुद्ध आध्यात्मिकता के सिवाय और कुछ नहीं है। सन् उन्नीस सौ छब्बीस तक तो श्रीअरविन्द यह कहते रहे कि 'अभी नहीं', 'अभी कुछ नहीं कह सकता।' पर उसके बाद से तो वे उस महान् कार्य में लग चुके हैं, जिसका कुछ संकेत हमने ऊपर किया है। यह कार्य है एक नयी 'जाति' उत्पन्न करना, मनुष्य को देव बनाना। वे ऐसा मनुष्य तैयार कर रहे हैं जो विज्ञान-तत्त्व को प्राप्त करेगा और उसके कारण उसका मन अज्ञान और संशय की क्रीड़ा-भूमि न रहकर सत्य ज्योति का निर्मल मार्ग बन जायगा, उसका प्राण बदलकर, काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि से सर्वथा शून्य होकर कार्य करेगा और उसके शरीर का भी ऐसा रूपान्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायगा कि वह यूँ ही मृत्यु के वश न होगा। यह बहुत भारी साधना है, इसमें शायद एक युग लग जाय; परन्तु श्रीअरविन्द जिस कार्य के लिए आये हैं, वह यही कार्य है। इसी महान् कार्य का प्रकट आरम्भ इस आश्रम की अनुमति देकर उन्होंने किया है। यद्यपि वे बोलते और मिलते नहीं हैं, तो भी लिखकर और अपनी आन्तरिक शक्ति से आश्रम का पथ-प्रदर्शन करते हैं। उनके लगभग ६ घण्टे प्रति-दिन साधकों के पत्रों के उत्तर देने में या उनकी वासरी अथवा दिन-चर्य्या-पुस्तकों को देखने और निर्देश लिखने में व्यतीत होते हैं। दिन-रात में शायद तीन-चार घण्टे ही वे निद्रा लेते हैं। वह सोना भी एक प्रकार से अपनी उच्च चेतना में ऊपर हटकर शारीरिक विश्राम लेना ही कहा जाना चाहिये। शेष १६, २० घण्टे वे कुछ-न-कुछ 'कर्म' करते ही हैं। ठीक बात यह है कि उनका बहुत-सा समय ध्यान व विज्ञानमय शक्ति द्वारा विविध कार्य करने में जिनमें साधकों को सहायता पहुँचाना भी है—व्यतीत होता है। दूसरे शब्दों में उनका समय उनकी अपनी उस जगत्व्यापी साधना को उत्तरोत्तर अभिव्यक्त करने में लगता है जिस (अर्थात् विज्ञानमय शक्ति द्वारा भौतिक जगत् पर प्रभाव डालने) का अनुभव कर लेने पर वे इस तरह एकान्तसेवी हो गये हैं। वे इस समय जितना कार्य कर रहे हैं, उतना कार्य कोई साधारण पुरुष नहीं कर सकता। देश की स्वाधीनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उनके इस महान् कार्य में कहीं स्वयमेव आ जायगी। उसकी कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

मेरा तो यही विश्वास है कि वहाँ पर एक बड़ा भारी आध्यात्मिक कार्य हो रहा है, जिसकी महत्ता को चाहे अभी हम नहीं समझ रहे, पर जिसे समझने का समय बड़े वेग से समीप आ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे

(ले०—श्री नलिनीकान्तजी)

वर्तमान युद्ध के विषय में अध्यात्म के साधक भी उदासीन नहीं रह सकते। यह बात ठीक है कि किसी किसी अध्यात्म-साधना ने यह शिक्षा दी है कि भगवान् की चीज़ भगवान् को और शैतान की चीज़ शैतान को देनी चाहिये। इस तरह ऐहिक को आध्यात्मिक से एकदम अलग कर दिया गया है, कहा गया है कि जो लोग ऐहिक को लिये हुए हैं वे उसे ही लिये रहें, आध्यात्मिकता में उन्हें आने की कोई आवश्यकता नहीं, कोई अधिकार नहीं; और जो लोग आध्यात्मिक हैं वे आध्यात्मिकता को ही लिये रहें, ऐहिक में उन्हें आने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐहिक और आध्यात्मिक के बीच इस प्रकार का विच्छेद होने के कारण ऐहिक सदा के लिये ऐहिक ही बना रह गया; वह अनात्म, अज्ञान, दुःख-दैन्य का चिरस्थायी साम्राज्य ही बना रह गया; आध्यात्मिकता कभी जीवन के अन्दर सजीव, जागृत एवं प्रतिष्ठित न हो सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से साधु-संतों ने 'जगत्-हिताय' बहुत कुछ किया है। परन्तु उनका कर्म पूर्णरूप से फलदायी नहीं हो सका है, वह मिश्रित, पंगु और सामयिक-मात्र ही हो सका है। इसका कारण यह है कि उनका कर्म निम्नतर और क्षीणतर धाराओं पर अवलम्बित रहा है। प्रथम तो उनके द्वारा सांसारिक जीवन के ऊपर एक सामान्य प्रभाव पड़ने के सिवाय और कुछ भी नहीं हो पाया है—ऐहिक की आबहवा के अन्दर अन्य लोक की एक स्मृति, स्पर्श व किरण को ही उनकी साधना और सिद्धि उतार पाई है। या फिर किसी जागतिक कर्म में जब कभी वे लिप्त हुए हैं तो उनका कर्म ऐहिक के धर्म का अतिक्रमण कर बहुत अधिक परे और ऊपर नहीं जा सका है—दान, सेवा और परोपकार इत्यादि के रूप में वह नैतिक चार-दीवारी के अन्दर ही आबद्ध रहा है। व्यावहारिक जीवन में उन्होंने इस नैतिक अर्थात् मानसिक स्तर से संबद्ध आदर्श और प्रेरणा का ही एक मात्र आश्रय लेकर अपना कर्म किया है—और बहुत बार तो इस नैतिकता को ही आध्यात्मिकता समझने की भूल भी की गई है। वास्तविक आध्यात्मिक—मानसोत्तर—लोकोत्तर शक्ति के द्वारा जाग-तिक कर्मों के परिचालन करने का आदर्श विरल ही देखा गया है और जहाँ पर यह आदर्श देखा गया है वहाँ पर भी सम्यक् उपाय और पद्धति का आविष्कार हो पाया है या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं इसमें सन्देह ही है तथापि जगत् में स्थायी परिवर्तन लाने का, मनुष्य के भाग्य को पलट देने का एकमात्र रहस्य है आध्यात्मिक अर्थात् चिन्मय शक्ति का सम्यक् आविष्कार और प्रयोग।

मानववादी (Humanist) लोगों ने एक बार कहा था कि मनुष्य के संपर्क में जो कुछ है उसमें से कुछ भी हमारे लिये पराया नहीं है, वह सब हमारे अपने राज्य के अन्दर पड़ता है। ठीक यही बात आध्यात्मिक पुरुष भी कह सकते हैं। श्रेष्ठतम या बृहत्तम आध्यात्मिकता का लक्ष्य ही होगा समग्र मनुष्य को, मनुष्य के सभी अंगों को, सभी कर्मक्षेत्रों को आध्यात्मिक सत्य और प्रेरणा के द्वारा गठित और परिचालित करना। इस आदर्श को बहुत कम ही स्वीकार किया गया है, अधिकांश क्षेत्रों में तो इसे असम्भव ही माना गया है और यही कारण है कि जगत् की ऐसी दुर्दशा हुई है!

यहाँ तक तो हमने कैफियत के रूप में कहा। अगर हम अध्यात्म के साधक हैं तो भी—और तो भी क्यों, बल्कि इसी कारण—वर्तमान युद्ध जैसे एक अत्यन्त जागतिक वा व्यावहारिक विषय में भी हमारा कुछ वक्तव्य है। यद्यपि प्राच्य की यह सुलभ ख्याति प्रसिद्ध है कि युद्ध-विग्रह की विपुल तरंगें उसके ऊपर से निकल जाती हैं और वह महान् उदासीनता के साथ केवल एक क्षण आँख उठाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ओर देख लेता है और फिर अत्यन्त गम्भीर ध्यान-निद्रा में डूब जाता है * फिर भी हम उस ख्याति के हिस्सेदार नहीं होना चाहते। अध्यात्म और ऐहिक के बीच, ध्यान और 'घोर कर्म' के बीच इस प्रकार सांप-नेवले के सम्बन्ध का जो सिद्धान्त और संस्कार है उसे तो बहुत दिन पहले ही श्रीकृष्ण ने काट दिया है। फलस्वरूप हम देखते हैं कि युद्ध-विग्रह केवल लड़ाकू लोग ही नहीं करते आ रहे हैं वरन् अवतारों ने भी इस कार्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया है ऐसा कहने में भी बहुत अत्युक्ति न होगी। और माँ महामाया स्वयं क्या हैं ? दुष्टों का दमन करना अवतार का एक प्रधान कार्य है—सच्चिदानन्दमयी साथ ही असुर-दलिनी भी हैं।

सचमुच हम विश्वास करते हैं कि वर्तमान युद्ध वास्तव में असुर के साथ युद्ध है। यह युद्ध अन्यान्य युद्धों की तरह नहीं है—एक देश के साथ दूसरे देश का, साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा करने वाले एक दल के साथ दूसरे दल का जो युद्ध होता है, किसी एक राष्ट्र-विशेष का अपना

* The East bow'd low before the blast,
In patient deep disdain.
She let the legions thunder past,
And plunged in thought again.

—Mathew Arnold.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वभौम प्रभुत्व स्थापित करने का जो प्रयास होता है वैसा युद्ध या प्रयास यह नहीं है। इस युद्ध का एक गम्भीरतर और भीषणतर अभिप्राय है। यूरोप के बहुत से मनीषियों ने—केवल उन लोगों ने ही नहीं जो राजनीतिक नेता या 'पालिटीशियन' हैं, बल्कि उन लोगों ने भी जो विचार के, भाव के अथवा आदर्श के राज्य में निवास करते हैं और जिन्हें वहाँ का सत्य कुछ-कुछ मालूम है, इस युद्ध के स्वरूप को हृदयंगम किया है और स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। सुनिये, आधुनिक फ्रांस के श्रेष्ठ मनीषी और उपन्यासकार ज्यूल रोमैं (Jules Romains) क्या कहते हैं:—

"मध्य युग के अन्तिम भाग से आरम्भ कर आज तक (हम कह सकते हैं कि युग-युग में) विजय-कामी लोगों ने सम्भवतः मनुष्य की सभ्यता और शिक्षा-दीक्षा को काफ़ी हानि पहुँचायी है; परन्तु शिक्षा-दीक्षा व सभ्यता नाम की वस्तु को ही सन्देह का विषय बना डालने का दुस्साहस उनमें से किसी ने भी नहीं किया था। अनाचार-अत्याचार का समर्थन करने की चेष्टा उन्होंने भी की है, किसी आवश्यक प्रयोजन के नाम पर; परन्तु उन्होंने क्षण भर के लिये भी ऐसा आदेश और शिक्षा देने की कल्पना नहीं की कि पराजित देश अपनी रीति-नीति और शास्त्र—सब कुछ उनके साँचे में ढाल दें।···प्राचीन इतिहास में युद्ध-विग्रह अनेक घटनाओं में से केवल एक घटना थी और यूरोप के इति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास में आधुनिक युग के आरम्भ से लेकर आज तक युद्ध-विग्रह का यह अर्थ नहीं रहा कि उससे मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक और नैतिक सम्पदा एक दम विलुप्त हो जाय; वंश-परम्परा से मनुष्य-जाति की साधना की गति जो स्वतन्त्रता, साम्य और मैत्री की ओर जा रही है अर्थात् मनुष्यत्व की ओर अग्रसर हो रही है वह हठात् नष्ट हो जाय।"

सम्भवतः यूरोप के मनीषी असुर की बात ठीक-ठीक नहीं जानते; उनके ऐतिह्य में 'टाइटन' (Titan) की बात होने पर भी आधुनिक मन को वे सब बातें कवि-कल्पना अथवा अधिक से अधिक प्रतीक-भर मालूम होती हैं। फिर भी असुर या 'टाइटन' के बाह्य आविर्भाव व व्यवहार के विषय में उन्होंने जितना अनुभव किया है और व्यक्त किया है वह मनुष्य की आँख खोलने के लिये काफी है। उन्होंने कहा है, यह युद्ध दो विभिन्न आदर्शों के बीच तो है ही, साथ ही वे दोनों आदर्श परस्पर इतने विभिन्न हैं कि उन्हें समान स्तर या विधान की नहीं वरन् दो पृथक् स्तरों या विधानों की चीजें कह सकते हैं। मनुष्य अपने क्रम-विवर्तन (Evolution) की धारा में जिस स्तर पर आज पहुँचा है वहाँ से उसे गिरा कर उसके पुराने स्तर के अनुरूप किसी अवस्था में बाँध रखने का प्रयास वर्तमान युद्ध का एक पक्ष कर रहा है। और इसके इस प्रयास का लक्ष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ऐसा ही है इस बात को भी उसने स्वयं ही स्पष्ट रूप में चिल्ला-चिल्ला कर प्रकट किया है, कुछ भी लुका-छिपा कर नहीं रखा है। आज हिटलर का 'मैन काम्फ' (Mein Kamf) नवीन व्यवस्था (New Order) का वेद, बाइबल और कुरान की अपेक्षा भी अधिक अभ्रान्त, अकपट तथा आवरणहीन धर्मशास्त्र हो रहा है।

जिस समय मनुष्य प्रायः वन-मानुष था उस समय उसकी जो प्रवृत्तियाँ थीं और जिस प्रकार की प्रवृत्तियाँ थीं—उसकी जो उग्र, अशुद्ध, अहंभाव पूर्ण प्राण-शक्ति थी जिसके अन्दर धीर बुद्धि का प्रकाश अच्छी तरह नहीं पहुँच पाया था, उसी प्राण-शक्ति के अन्दर और उन्हीं सब प्रवृत्तियों के अन्दर फिर से मनुष्य को लौटा ले जाने के लिये इस निम्न शक्ति का आज उत्थान हुआ है। यह नवीन-व्यवस्था (New Order) मनुष्य को बलवान्, केवल पराक्रमी होने को कहती है अर्थात् निर्मम, क्रूर और यूथ-बद्ध होने को कहती है। यूथ-बद्धता ही इस व्यवस्था की विशेषता है—जैसी यूथ-बद्धता (दलबन्दी) कुत्तों या भेड़ियों की होती है। एक विशेष जाति या दल या राष्ट्र—यूरोप में जर्मनी और एशिया में उसी का अनुकरण करने वाला जापान होगा प्रभु या मालिक की जाति; शेष मानव-जाति, सभी देश-देशान्तर होंगे उसके दास या गुलाम और ये सब उसके लिये पानी भरा करेंगे और लकड़ी चुना करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन युग में जो अवस्था थी हेलट (Helot) लोगों की, मध्य युग में जो अवस्था थी क्रीत दासों की और साम्राज्य-वाद की निकृष्टतम व्यवस्था के अन्दर जो अवस्था थी पराधीन जातियों की, उससे भी कहीं बढ़कर दीन-हीन अवस्था होगी सारी मनुष्य-जाति की। क्योंकि उन सब युगों में और व्यवस्थाओं में बाहरी अवस्था चाहे जैसी ही क्यों न रही हो, ज्यूल रोमैं के कथनानुसार, मनुष्य की ऊर्ध्वमुखी अभीप्सा के विषय में कभी कोई प्रश्न नहीं उठा था, वह सदा पूर्ण मात्रा में पूज्य और वरेण्य बनी रही। वर्तमान समय की नवीन व्यवस्था में केवल दासों की अवस्था ही हेय होगी ऐसी बात नहीं, प्रभुओं की अवस्था भी व्यक्ति के रूपमें उनसे किसी कदर कम हेय न होगी। इस व्यवस्था में व्यक्ति की महिमा व स्वतंत्रता कतई स्वीकार नहीं की जायगी। इसमें समाज या दल होगा मधुमक्खियों का छत्ता या दीमकों का वल्मीक। इसमें व्यक्ति बेबस कर्मी मात्र होगा—एक विराट् कठोर यंत्र के चक्के या कील इत्यादि के रूप में रहेगा। स्वाधीन मनुष्य की स्वतःस्फुरित प्रेरणा ऊपर के और अन्दर के जिन सब लोकों को गढ़ती है—अर्थात काव्य, साहित्य, शिल्प, सुन्दर-सुकुमार, श्रीमय और ह्रीमय जो कुछ है—इन सबका निर्वासन इस व्यवस्था से कर दिया जायगा, क्योंकि ये सब शौकीनी की चीजें हैं और चित्त को दुर्बल बनाने वाली हैं। मनुष्य होगा भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान का उपासक, उस विज्ञान का जिसका उद्देश्य है केवल प्रकृति के, जड़ प्रकृति के ऊपर प्रजा-पीड़क आधिपत्य स्थापित करना, शस्त्रास्त्रों का समारोह सजाना, व्यावहारिक जीवन व्यतीत करने के लिये सुविधा और उम्र व्यवस्था का प्रबन्ध करना—और सो भी एक भाग्यवान् दल-विशेष के लिये, उस दल के संघबद्ध जीवन के लिये, मनुष्य-जाति के लिये नहीं, व्यक्ति-मात्र के लिये भी नहीं।

इस आसुरिक शक्ति के विरुद्ध जो लोग खड़े हुए हैं—पूर्ण स्वेच्छा से न भी सही, कम-से-कम अवस्था के फेर में पड़कर जिन्हें खड़ा होना पड़ा है—उन्हीं के ऊपर आज मनुष्य-जाति का सारा भविष्य, समस्त पृथ्वी का भाग्य निर्भर करता है। परन्तु असुर के विरुद्ध खड़े होने के कारण ही वे सुर या देवता हो गये हैं ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। तब इतना ही काफ़ी है कि वे मनुष्य हैं, असुर नहीं। असुर का अर्थ है—प्रगति, उन्नति और विवर्तन (Evolution) का अन्त। असुर का परिवर्तन नहीं होता, वह होता है एक कठोर सांचा, विशेष गुण-कर्मों का एक अचल आधार। परन्तु मनुष्य के अन्दर परिवर्तन का होना सम्भव है। वह नीचे गिर सकता है, पर उसी तरह वह ऊपर भी उठ सकता है। पुराणों में भोगभूमि और कर्मभूमि के नाम से एक प्रकार का विभाग किया गया है। मनुष्य का आधार है कर्मभूमि, मनुष्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार के द्वारा नया-नया कर्म होता है और उस कर्म के फल से मनुष्य उन्नत या अवनत हो सकता है। भोगभूमि उस अवस्था को कहते हैं जिसमें केवल संचित कर्मों का भोग ही होता है—वहाँ पर नया कर्म नहीं होता, चेतना में कोई परिवर्तन नहीं होता। असुर हैं भोगमय पुरुष; उनका आधार है भोगभूमि—वे नया कर्म अर्थात् ऐसा कर्म नहीं कर सकते जिससे उनकी चेतना का परिवर्तन व रूपान्तर हो सके। उनकी चेतना स्थाणु होती है। असुरों का परिवर्तन नहीं होता, पर ध्वंस होता है। हाँ, मनुष्य के अन्दर भी आसुरी शक्ति या असुर-सदृश वृत्तियाँ और स्वभाव निश्चय ही हो सकते हैं, पर इन सबके साथ साथ मनुष्य के अन्दर कुछ और भी होता है, एक ऐसी चीज भी होती है जिसकी प्रेरणा से वह आसुरिक भाव से अपने को मुक्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त असुर के आसुरिक गुणों और मनुष्य के आसुरिक गुणों में बाह्य सादृश्य होने पर भी दोनों में एक आन्तरिक भेद होता है—दोनों के ताल, छन्द व स्पन्द (Temper, rhythm and vibration) विभिन्न होते हैं। अन्ततः मनुष्य चाहे जितना भी निष्ठुर, निर्दय, स्वार्थ-परायण और अहंभावापन्न क्यों न हो, वह यह जानता है तथा स्वीकार करता है—सब समयों में न भी सही तो कभी-कभी, बाहर में न भी हो तो भीतर में—कि ये सब भाव बिल्कुल भी आदर्शो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित नहीं हैं, ये हेय और त्याज्य हैं। परन्तु असुर इसलिये निर्मम होता है कि निर्ममता ही उसकी दृष्टि में उचित है, आदर्श है, यह उसका स्वभाव, स्वधर्म है, उसकी सत्ता का नियम है, उसके लिये श्रेष्ठ कल्याण की वस्तु है। बलात्कार उसके स्वभाव की शोभा है।

स्पेन ने अमेरिका में जो अत्याचार किया, रोम ने ईसाइयों के ऊपर जो अनर्थ किये, ईसाइयों ने जो ईसाइयों के साथ पाशविक व्यवहार (Inquisition) किया, अथवा भारत, आयर्लैण्ड और अफ्रीका में साम्राज्य-स्रष्टाओं ने जो करतूतें दिखलाईं वे सब गर्हित, अक्षम्य और अनेक क्षेत्रों में अमानुषिक थीं। परन्तु 'नाजी' जर्मनी ने पोलैण्ड में जो कुछ किया है तथा सारे जगत् में जो कार्य वह करना चाहता है, उसके साथ जब हम तुलना करते हैं तब हम देखते हैं कि दोनों में केवल मात्रागत ही नहीं प्रत्युत एक गुण-गत भेद भी वर्तमान है। एक क्षेत्र में तो यह सब मनुष्य की दुर्बलता का परिचय देता है और दूसरे क्षेत्र में असुर की प्रबलता का। यह भेद जिन्हें नहीं दिखाई देता उन्हें वर्णान्ध समझना चाहिये—ऐसे बहुत से लोग होते हैं जो गाढ़ा रंग देखते ही कहते हैं कि यह काला है और हलका रंग होने पर कहते हैं कि यह सुफेद है।

क्षणिकतया असुर की सर्वत्र विजय होती है; क्योंकि उसकी शक्ति जितनी सुसंगठित व सुव्यवस्थित होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतनी मनुष्य की नहीं होती, आसानी से हो भी नहीं सकती। असुर की शक्ति में छिद्र नहीं होता, वह छिद्र-रहित व ठोस होती है। मनुष्य की सत्ता और शक्ति संघर्षों और विरोधों से गठित हुई होती है, वह एक एक क़दम करके, धीमे-धीमे और मेहनत के साथ, क्रमिक पवित्रीकरण की प्रक्रिया के द्वारा प्रगति करता है, वह उद्योग और संघर्ष के साथ आगे बढ़ता है। मनुष्य की शक्ति असुर की शक्ति के विरुद्ध उतनी ही मात्रा में विजयी होती है जितनी मात्रा में वह देवशक्ति की धारा में अपने आप को सिंचित करती हुई चलती है। परन्तु जगत् में देवता, देवशक्तियाँ पीछे अवस्थित हैं, क्योंकि अभी तक सामने का व्यावहारिक क्षेत्र असुरों के ही प्रभाव में है। बाह्यक्षेत्र, स्थूल आधार—देह, प्राण, मन—अज्ञान के द्वारा, अहंबोध के द्वारा तथा मिथ्याचार के द्वारा गठित हुआ है, इसी लिये असुर अनायास ही वहाँ अपना प्रभाव व आधिपत्य स्थापित कर लेता है और कर भी चुका है। मनुष्य सहज ही असुर का यंत्र बन जाता है—बहुधा अनजाने ही ऐसा होता है। और इसी कारण आज पृथ्वी असुर के हस्तगत हो रही है। देवता के लिये पृथ्वी को अधिगत करना, पार्थिव चेतना के ऊपर किसी प्रकार का अपना प्रभाव स्थापित करना उद्यम, साधन और समय की अपेक्षा रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन-काल में मनुष्यों के ओर कर्मों पर—विशेषतया जब उन्होंने यूथबद्धता या दलबन्दी के साथ काम किया—आसुरिक प्रभाव अधिकांश क्षेत्रों में पड़ा था इसमें संदेह नहीं। परन्तु आज तो यह कहना पड़ता है कि असुर या असुरगण स्वयं ही उतर आये हैं और एक प्रबलतया संगठित मानव-समाज को अधिकृत कर, अपने ही सांचे में उसे ढालकर पृथ्वी के ऊपर पूर्ण विजय की—विश्वमेध-यज्ञ की पूर्णाहुति करने का प्रयास कर रहे हैं।

हमारी दृष्टि यह कहती है कि आज जो महासमर चल रहा है उसी के परिणाम पर मनुष्य का सारा भविष्य, पार्थिव जीवन का समस्त मूल्य निर्भर करता है। मनुष्य इतने दिनों तक जिस क्रमिक उन्नति व क्रम-विकास की धारा में अग्रसर होता आ रहा है—चाहे कितनी ही धीमी गति से क्यों न हो, चाहे कितने ही संदेह-भरे प्राण-मन से क्यों न हों—उसी धारा में क्या वह अवश्य ही पूर्ण सिद्धि की ओर, पूर्णतर, शुद्धतर व मुक्ततर ज्योतिर्मय जीवन की ओर आगे बढ़ता रह सकेगा या उसका वह मार्ग बन्द ही हो जायगा, और परिणामतः वह अपनी पुरानी पाशविक अवस्था की ओर या उससे भी निकृष्ट गति की ओर, असुर के शिकञ्जे में कस कर अंध और असहाय दास-जीवन व्यतीत करने के लिये या आत्मा को खोकर, असुर ही बन कर, 'कबन्ध' दैत्य की तरह मस्तक-रहित धड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन कर, जीवन बिताने के लिये अधोगति को प्राप्त करेगा ? यही समस्या आज हमारे सामने उपस्थित है।

हमारी दृष्टि के अनुसार आज का महायुद्ध देवता के यंत्र भूत मनुष्य और असुर के बीच हो रहा है। इसमें संदेह नहीं कि असुर की तुलना में मनुष्य दुर्बल हैं—पार्थिव क्षेत्र में; परन्तु मनुष्य के अन्दर भगवान् विराजमान हैं, इस भागवती शक्ति और बल-वीर्य के सामने असुर का कोई बल-विक्रम अन्त तक नहीं टिक सकता। जो मनुष्य असुर के विरुद्ध खड़ा , वह खड़ा होने के कारण ही देवता के पक्ष का हो गया है, भागवत आशीर्वाद उसके साथ है। युद्ध के इस स्वरूप के विषय में हम जितने ही सचेतन होंगे और सचेतन होकर सतत उन्नतिशील शक्ति के पक्ष में, दिव्य शक्ति के पक्ष में खड़े होंगे उतनी ही मनुष्य के अन्दर देवता की विजय अवश्यम्भावी होती जायगी, उतनी ही आसुरिक शक्ति क्षीण हो हो कर पीछे हटती जायगी। अगर अज्ञान के वश होकर, अंध-वासना, संकुचित दृष्टि और विवेक-शून्य पक्षपात के वश होकर हम पक्ष और विपक्ष में कोई भेद न करेंगे तो हम मनुष्य को भीषण दुर्दशा को निमंत्रित करेंगे।

इस युग-संकट के समय भारत की भी भाग्य-परीक्षा हो रही है। भारत की स्वाधीनता भी उतनी ही मात्रा में अनिवार्य हो सकेगी जितनी मात्रा में वह वर्तमान युद्ध के-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्निहित अर्थ तथा स्वरूप को हृदयंगम कर सकेगा और ज्ञानपूर्वक देवशक्ति के पक्ष में खड़ा हो सकेगा, जितनी मात्रा में वह भागवती शक्ति का यंत्र बन सकेगा। यह यंत्र वर्तमान समय में आपाततः चाहे जितना भी दोषपूर्ण, त्रुटिपूर्ण क्यों न मालूम हो, इसके अन्दर भगवत्-प्रसाद का, दिव्य आशीर्वाद का स्पर्श पहुँच चुका है और इस कारण वह सभी विघ्न बाधाओं को पार कर अजेय विजयी होकर रहेगा। इसी कारण तो भागवत कृपा के बारे में यह प्रसिद्धि है कि 'पंगुं लंघयते गिरिम्'—उसके द्वारा लंगड़ा भी पर्वत को लांघ जाता है। परन्तु भारत की स्वाधीनता आज इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस पक्ष को चुनता है।

आज भारत की अन्तरात्मा के सामने एक महान् सुअवसर, एक 'माहेन्द्र मुहूर्त' उपस्थित हुआ है। अगर उसने अपना ठीक पथ चुन लिया, कुपक्ष के विरुद्ध खड़े होकर सुपक्ष का आलिंगन कर लिया तो उसकी युग-युगान्तर-व्यापी साधना पूर्णतया सार्थक हो जायगी। जिस अमूल्य संपदा को, अध्यात्म की जिस संजीवनी शक्ति को मानव जाति की मुक्ति के लिये, पृथ्वी के रूपान्तर (Trans-formation) के लिये वह अपनी साधु-संत-मंडली की साधना-परम्परा के द्वारा जीवित रखता चला आ रहा है, पुष्ट करता आ रहा है, जिस वस्तु के लिये ही भारत का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्व है और जिसे खो देने पर भारत का कोई अर्थ ही नहीं रह जायगा, पृथ्वी और मानव-जाति भी अपनी सारी सार्थकता खो बैठेगी, अपनी उस अमूल्य सम्पदा को आज इस अग्नि-परीक्षा के समय हम भारतवासी पहचानेंगे या नहीं, उसकी रक्षा के लिये अन्तिम तौर पर निश्चित मार्ग का चुनाव करेंगे या नहीं ? भगवान् के लिये सरल और निष्कण्टक पथ बनायेंगे या नहीं ? आज के इस जगद्व्यापी युद्ध में एक पक्ष की विजय होने पर भगवान् का पथ—उन्नति, विकास और पूर्णता का पथ—खुला रहेगा, विशाल और निर्विघ्न हो जायगा, सुरक्षित हो जायगा और दूसरा पक्ष विजयी होने पर वह पथ सम्भवतः चिरकाल के लिये—कम से कम अनेक युगों के लिये—बंद हो जायगा। केवल बाह्य दृष्टि से नहीं, सुविधा की चाल या कूटनीति के छल का आश्रय लेकर नहीं, वरन् अन्तर की निर्निमेष चेतना के द्वारा हमें न्याय्य और अन्याय्य पक्ष को पहिचानना चाहिये, अपनी समग्र सत्ता के द्वारा सुपक्ष का वरण करना चाहिये और कुपक्ष का विरोधी होना चाहिये। जिसे मित्रपक्ष कहा जाता है वही हमारा वास्तविक मित्रपक्ष है, उस पक्ष के लोगों में हजारों-लाखों दोष वा त्रुटियाँ होने पर भी वे ही उस सत्य के पक्ष में खड़े हुए हैं जिस सत्य का आविर्भाव और विजय हम कराना चाहते हैं। अतएव वे ही हमारे स्व-पक्षी हैं, काय-मन-वचन से उन्हीं का संगी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथी होकर हमें खड़े होना चाहिये, अगर हम 'महती विनष्टिः' से—महान् विनाश से—रक्षा पाना चाहते हैं।

दुर्योधन के पक्ष में थे उसके सौ भाई, और थे भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे अनेक महारथी, फिर भी, चाहे जितने दुःख-कष्ट के बाद हुई हो और चाहे जितने दीर्घकाल के बाद हुई हो, अन्त में जय हुई पाँच पांडवों की ही, क्योंकि उनके पक्ष में थे श्रीकृष्ण। जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण और धनुर्धर पार्थ अर्थात् जहाँ भगवान् और उनका यंत्र-भूत आदर्श मनुष्य होता है वहाँ अव्यर्थ विजय, पूर्ण सिद्धि और श्री रहती हैं। हम किस पथ से जा रहे हैं, किस पथ से चलेंगे—यही प्रश्न हमारी विधि-लिपि में अग्निमय अक्षरों में देदीप्यमान हो रहा है। हमारा कार्य आज इस का क्या उत्तर देगा?

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ का आवाहन-गीत

[श्री नारायणप्रसाद]

आओ मैया आओ।
हृदय गगन में आओ ॥

अन्तरस्थ शत्रु से मुक्त कर माँ! सुप्त शक्ति उन्मुक्त कर।
शिव-विश्व-चेतना युक्त कर अपनी ज्योति जगाओ ॥

आओ मैया आओ।
हृदय कमल पर आओ ॥

प्राणोंकी, मनकी स्तरी उठा सबमें, तू अपनी झलक दिखा।
मेरा मैं, मुझसे दूर हटा घट घट में छा जाओ ॥

आओ मैया आओ।
अपना रूप दिखाओ ॥

हमको, अघनाशक खड्ग बना अज्ञान विनाशी दीप बना।
अपने हाथों का यंत्र बना अपना कार्य कराओ ॥

आओ मैया आओ।
रग रग में रम जाओ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ

(लेखक—श्री हरिदास चौधरी)

कभी-कभी हम विश्वपिता के रूप में भगवान् की कल्पना करते हैं और कभी-कभी विश्वजननी के रूप में उनकी वन्दना करते हैं, पूजा करते हैं। और कभी-कभी पिता और माता, 'सः' और 'सा' दोनों को उस परम सत्य का बोध कराने में असमर्थ समझ कर 'ओ३म् तत् सत्' के रूप म उसका निर्देश करने की चेष्टा करते हैं। ईसाई-धर्म में भगवान् प्रधानतः पिता के रूप में पूजे जाते हैं; वे अनंत विश्व के स्रष्टा और करुणामय त्राता हैं, वे सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान और सर्वमंगलमय हैं। हमारे तन्त्र-शास्त्र में माता के रूप में या जगदम्बा के रूप में भगवान् की पूजा करने का विधान है, और वेदों तथा उपनिषदों में वे प्रधानतः अव्यक्त, अनिर्वचनीय ओ३म् कहे गये हैं।

सत्य को यदि हम समग्र रूप में ग्रहण करें तो हमें मालूम होगा कि ऊपर कही गई तीनों दृष्टियों में कोई भी मिथ्या या काल्पनिक नहीं है। सत्य के अनन्त रूप हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् एक साथ ही विभिन्न अवस्थाओं में विराजते हैं। अपनी सर्वोच्च अवस्था में वे सब प्रकार के व्यक्त रूपों के परे अनिर्देश्य, परात्पर हैं—दुर्भेद्यरहस्यावृत हैं। उनकी यह परम अव्यक्त अनिर्देश्य अवस्था ही 'ओ३म् तत् सत्' के रूप में वर्णित है। परन्तु एक ही अखण्ड भगवान् या पुरुषोत्तम एक दूसरी अवस्था में अनन्त-गुण-सम्पन्न सगुण ब्रह्म होकर विराजते हैं; सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कर्त्ता के रूप में अवस्थान करते हैं। ये सगुण ब्रह्म ही विश्वपिता, सर्वलोकविधाता हैं। फिर प्रत्येक अवस्था में ही भगवान के दो प्रधान दिक् या विभाव (Aspects) होते हैं: एक उनकी निःस्पन्द, निष्क्रिय सत्ता का दिक् (Static aspect); दूसरा उनकी चिरचंचल सक्रियता का दिक् (Dynamic aspect)। एक ओर तो वे अक्षुब्ध, प्रशान्त, आत्म-समाहित, स्वयं-सम्पूर्ण शिव हैं और दूसरी ओर उच्छ्वासमयी, लीलापरायणा, नित्य नवीन छन्द में प्रकाशोन्मुखा शक्ति हैं। भगवान् के इस लीलामय शक्ति-रूप की ही कल्पना हम माँ के रूप में करते हैं।

'माँ' शब्द का उच्चारण करने पर हमारे मन में जो भाव उठते हैं उनमें प्रधान चार हैं। प्रधानतः, माँ हैं शक्तिस्वरूपिणी और सृष्टिमयी। इसी कारण भागवती शक्ति अखिल विश्व के चरम स्रोत और मूल कारण के रूप में जगदम्बा हैं, चराचर विश्व की वह जननी हैं। द्वितीयतः,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ केवल सृष्टिमयी ही नहीं हैं बल्कि वही चैतन्यमयी शक्ति भी हैं, वह चिद्रूपिणी हैं। सांख्य की प्रकृति सृष्टिमयी है—जगत् की अनन्त परिणाम-धाराओं का उपादान कारण और मूल स्रोत है--किन्तु फिर भी हम उस प्रकृति को 'माँ' कह कर नहीं पुकार सकते, क्योंकि सांख्यकार ने प्रकृति को जड़ात्मिका और अचेतन-स्वभावा कहा है। मायावादियों की माया-शक्ति के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। माया विश्व-सृष्टि का एकमात्र कारण होने पर भी अविद्यात्मिका है और इस कारण वह माँ का आसन नहीं ग्रहण कर सकती। बहुत से पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी यह स्वीकार किया है कि एक महाशक्ति ही जगत् की सृष्टि का मूल कारण है। हक्सले (Huxley), टींडल (Tyndall) आदि उस शक्ति को एक अंध जड़ शक्ति मानते हैं; हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert spencer) के मतानुसार वह एक अज्ञात और अज्ञेय, अनिर्देश्य शक्ति (Unknown and unknowable Power) है; (Schopenhauer) के मत में वह एक निश्चेतन संकल्प-शक्ति (Unconsious Will) है; और हेनरी बर्गसन (Henri Bergson) उसको प्राणमय सर्जन-शक्ति (Vital impetus) कहते हैं। सभी पाश्चात्य शक्ति-पुजारियों की दृष्टि में विश्व की मूल शक्ति निश्चेतन है; अतएव वह शक्ति सृष्टिमयी होने पर भी मातृ-स्वरूपिणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। तृतीयतः, माँ स्नेह और करुणा की ज्वलन्त मूर्त्ति हैं। माँ के सामने सन्तान अपने हृदय का बन्द द्वार बिना किसी संकोच के खोल सकती है और माँ भी असीम स्नेह के वश होकर सन्तान के हजारों दोषों और त्रुटियों को क्षमा कर सकती हैं और उसे परम कल्याण के मार्ग पर ले जा सकती हैं। भागवती शक्ति भी इसी कारण माँ हैं, वह केवल सृष्टिमयी और चिन्मयी नहीं हैं अपितु साथ ही अपार करुणामयी भी हैं। उन्हीं की कृपा से मनुष्य का अविद्याजन्य बन्धन छिन्न होता है और ब्रह्मसाक्षात्कार प्राप्त होता है। वही मध्यस्था होकर स्नेहजात असीम धैर्य के साथ जीव का हाथ पकड़ कर उसे मानो परम सत्य के पास ले जाती हैं। चतुर्थतः, माँ सत्यानुगामिनी हैं। माँ सभी कार्यों को पिता के आश्रय में ही करती हैं और पिता की अनुमति लेकर करती हैं। भागवती शक्ति के विषय में भी ठीक यही बात कही जा सकती है। आद्या शक्ति केवल शिव की विराट् सत्ता का आश्रय लेकर ही लीलामयी हो सकती हैं तथा सृष्टि-स्थिति-प्रलय आदि सभी कार्य वह परम पुरुष की अनुमति लेकर ही, उनकी इच्छा पूरी करने के लिये ही किया करती हैं। शक्ति की सक्रियता सम्पूर्ण रूप से शिव की अनुमति पर ही निर्भर करती है। आधुनिक युग के बहुत से दार्शनिक इस विषय में शक्ति को पूर्णरूपेण स्वाधीन मानते हैं। कोई-कोई तो यहाँ तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं—जैसे फिश (Fichte), बर्गसन (Bergson), जेंटिल (Gentile) आदि—कि सत्ता शक्ति की ही सृष्टि है, जो कुछ हम स्थितिशील देखते हैं वह सब एक चिर-चंचल सर्जन-शक्ति से ही उत्पन्न हुआ है। परन्तु सृष्टिमयी शक्ति को जब हम माँ कहते हैं तब उस शक्ति के आश्रय-स्वरूप एक परम पुरुष को भी स्वीकार करते हैं और हम विश्वास करते हैं कि परम पुरुष की ही अनुमति लेकर, उन्हीं के अन्दर निहित सत्य-समूह को रूपान्वित करने के लिये भागवती शक्ति कर्म में प्रवृत्त होती हैं।

श्रीअरविन्द ने अपनी 'माता' नामक पुस्तक में आरम्भ में ही कहा है कि पूर्णयोग की सिद्धि प्राप्त करने के लिये दो वस्तुओं की आवश्यकता है—नीचे से भागवत जीवन प्राप्त करने के लिये साधक की आन्तरिक अभीप्सा ऊपर उठनी चाहिये और ऊपर से भागवती शक्ति की करुणा या प्रसाद का अवतरण होना चाहिये। साधक की अभीप्सा पूर्ण शुद्ध तथा एकमात्र भगवन्मुखी होनी चाहिये। इस अभीप्सा (Aspiration) के स्वरूप को हम एक ओर आकांक्षा या कामना (Ambition or desire) से और दूसरी ओर व्याकुलता से अलग करके समझने की चेष्टा करेंगे। आकांक्षा या कामना हमारी प्राणमय सत्ता की अभिव्यक्ति है, हमारा चित्तविक्षोभ है। परन्तु अभीप्सा सूचित करती है हमारे हृतपुरुष का जागरण। आकांक्षा अहंमुखी होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है चाहे वह कितने ऊँचे प्रकार की क्यों न हो। हम धन चाहते हैं, मान चाहते हैं, अपना अधिकार, पदप्रतिष्ठा चाहते हैं—यह सब हमारे क्षुद्र अविद्याच्छन्न 'अहं' की तृप्ति के लिये ही होता है। परन्तु अभीप्सा अहंकार का समूल नाश करती है और एकमात्र भगवान् के प्रति ही हमें आकृष्ट करती है, भगवान् को ही केवल जीवन के ध्रुवतारा के रूप में निर्दिष्ट करती है। परन्तु भगवान् को पाने के लिये साधक के मन में बहुत बार एक प्रकार की अस्थिरता या व्याकुलता का भाव उत्पन्न होता है। इस अस्थिरता का मूल कारण होता है भागवती शक्ति के ऊपर पूर्ण निर्भरशीलता का अभाव। अभीप्सा सब प्रकार के अधैर्य और अस्थिरता से मुक्त होनी चाहिये। भगवान् के ऊपर पूर्णरूपेण निर्भरशील होकर, अन्तर में अभीप्सा की निष्कम्प ज्योति प्रज्वलित करके साधक को धीर-स्थिरभाव से दिव्य जीवन की प्राप्ति के मार्ग में अग्रसर होना चाहिये।

भागवत जीवन प्राप्त करने के लिये साधक की अटूट अभीप्सा अत्यावश्यक, अपरिहार्य है, परन्तु वही पर्याप्त नहीं है। मां की करुणा या प्रसाद के बिना सिद्धि कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। संसार के प्रायः सभी धर्मों ने भगवत्प्रसाद की आवश्यकता को स्वीकार किया है। सिद्ध महापुरुष अपने सारे अन्तःकरण से यह अनुभव करते हैं कि अनन्त का सामीप्य प्राप्त करने के लिये सीमाबद्ध जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अकेली चेष्टा या तपस्या कभी पर्याप्त नहीं हो सकती चाहे वह तपस्या कितनी ही कठोर तथा निरवच्छिन्न क्यों न हो। परन्तु पूर्णयोग की साधना में भगवत्प्रसाद की आवश्यकता सबसे अधिक है। इस योग में भगवान् का साक्षात्कार प्राप्त करना ही एकमात्र लक्ष्य नहीं है; पूर्णयोगी चाहता है भगवदनुभूति की सम्पदा को बाहर में प्रकट करना, सृष्टि के अन्दर भगवान् की लीलामयी इच्छा को पूर्ण करना। भगवान् का सामीप्य या सायुज्य ही प्राप्त करना जिनका एक मात्र उद्देश्य है वे निम्न प्रकृति के आमूल परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं समझते। किन्तु पूर्णयोगी के लिये निम्न-प्रकृति का आमूल परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उसने अपने जीवन में भागवत ऐश्वर्य को पूर्णरूप से विकसित करने का व्रत ग्रहण किया है। इसी कारण पूर्णयोगी का प्रधान लक्ष्य है अपने आधार का सर्वांगीण रूपान्तर साधित करना, अपनी समग्र जीवनधारा को एक अपूर्व नवीन छन्द से भर देना। इस रूपान्तर को साधित करने के लिये, इस दिव्य छन्द से जीवन को झंकृत करने के लिये आवश्यकता है मां की पूर्ण कृपा की और पग-पग पर उन्हीं की अप्रतिहत शक्ति की सहायता की। इस कार्यसिद्धि में साधक की व्यक्तिगत चेष्टा बहुत कम ही सहायता कर पाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्कृपा प्राप्त करने का उपाय

भागवती शक्ति की पूर्ण कृपा प्राप्त करने के लिये साधक को कुछ शर्तों का पालन करना पड़ता है। वे शर्तें हैं आत्मसमर्पण (self-surrender), आत्मोन्मीलन (self-opening) और सदसद्विवेक (discrimination which consists of selection and rejection)। आत्मसमर्पण या आत्मनिवेदन ही भगवत्प्रसाद प्राप्त करने का मूल मंत्र है। मनुष्य जितनी मात्रा में भगवान् के प्रति आत्मोत्सर्ग करता है उतनी ही मात्रा में भगवान् भी मनुष्य की पकड़ में आ जाते हैं। जितनी मात्रा में साधक की व्यक्तिगत इच्छा-अनिच्छा, वासना-कामना प्रबल हो उठती है उतनी ही मात्रा में भागवती शक्ति भी दूर चली जाती हैं, साधक-के आधार को अपने हाथों गढ़ने का सुयोग नहीं पातीं। साधक का आत्मसमर्पण सक्रिय और स्वतः प्रेरित (active and voluntary) होना चाहिये तथा निःशेष और सर्वांगीण (unreserved and total) होना चाहिये। बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि एक बार जब साधना का भार मांके हाथों में सौंप दिया, मां के शरणापन्न हो गये तब तो वही सब कुछ कर लेंगी, आत्मसमर्पण का ठीक-ठीक भाव भी तो वही जागृत कर सकती हैं। इस प्रकार की माँग और मनोभाव को तामसिकता और आत्मप्रवंचना के सिवाय और कुछ नहीं कह सकते। आत्मप्रवंचना कहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कारण यह है कि जो लोग इस प्रकार की माँग पेश करते हैं वे मां के हाथ में साधना का भार सौंप देने के बहाने अपने अहंकार की परितृप्ति में प्रवृत्त होते हैं और कामनामय जीवन यापन करते हैं। माँ की करुणा प्राप्त करने के लिये स्वयं इच्छा-पूर्वक सक्रिय रूप में अपने-आपको माँ के हाथों में सौंप देना होगा। केवल इसी शर्त पर माँ हमारी साधना का भार ग्रहण कर सकती हैं। अन्यथा निश्चेष्ट तामसिक आत्मनिवेदन के फलस्वरूप यदि कोई पूर्णता प्राप्त भी हो तो वह होगी यंत्र जैसी पूर्णता (mechanical perfection), विशुद्ध आध्यात्मिक पूर्णता नहीं। उसके बाद माँ के प्रति साधक का आत्म-समर्पण होना चाहिये निःशेष और सर्वांगीण। बहुत बार ऐसा देखा जाता है कि साधक के अन्तःपुरुष ने तो माँ के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, यहाँ तक कि उसके मनने भी आत्मोत्सर्ग कर दिया है, किन्तु उसकी प्राणमय सत्ता अपनी भोग-पिपासा को उत्सर्ग करना नहीं चाहती, अथवा उसका स्थूल शरीर अपने चिरपरिचित अभ्यास के अनुसार ही तथा अपने अंध संस्कार के वश होकर ही चल रहा है। ऐसी अवस्था में आधार का सम्यक् रूपान्तर कदापि नहीं हो सकता। जीवन के सभी अंगों को, सत्ता के सभी स्वरों को, प्राण के सभी स्पन्दनों को, शरीर की समस्त गतिविधियों को निस्संकोच मां के निकट पुष्पांजलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह उत्सर्ग कर देना होगा, केवल तभी पूर्ण रूपान्तर का स्वप्न सफल हो सकता है।

मातृ-करुणा प्राप्त करने की पहली शर्त्त है आत्मसमर्पण, फिर उसके बाद चाहिये आत्मोन्मीलन और सदसद्विवेक। मां की शक्ति को अपने अन्दर कार्य करने के लिए आवाहन करके उसके ऊपर अविद्याजनित कोई शर्त्त लाद देने से काम नहीं चल सकता; ऐसी मांग पेश करने से काम नहीं चल सकता कि मां को हमारी पसंद के अनुसार निर्दिष्ट पथ या निर्दिष्ट विधि से ही कार्य करना होगा। ऐसा करने से साधना का उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायगा। मां अपनी इच्छा से कार्य करेंगी, अबाध स्वच्छन्द गति से कार्य करेंगी। तभी हमारा आत्मसमर्पण शुद्ध हो सकेगा और साधना भी सहज और अबाध गति से अग्रसर हो सकेगी। आत्मोन्मीलन का अर्थ है सत्ता के विभिन्न अंगों को माँ की शक्ति और ज्योति की ओर खोल देना जिसमें माँ की कृपा से आधार का सर्वांगीण रूपान्तर साधित हो सके। एक ओर या सत्ता के एक अंश में माँ की ओर अपने को खोलकर दूसरी ओर विरोधी शक्तियों के लिए द्वार उन्मुक्त कर देना सिद्धि को अत्यन्त दूर भेज देना, व्याघात डाल देना है। जो मंदिर माँ के लिए उत्सर्ग किया गया है उस के अन्दर सत्य और मिथ्या, अंधकार और प्रकाश एक साथ कभी नहीं रह सकते। इसी कारण साधना में सदा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वदा सजग रहने की आवश्यकता है, विचार-विवेक रखने की आवश्यकता है, सुदृढ़ संकल्प रखने की आवश्यकता है जिसमें केवल सत्य को ही ग्रहण किया जाय और मिथ्या का सब प्रकार से त्याग किया जाय। माँ की कृपा से जो ज्योतिर्मय सत्य ऊपर से नीचे उतरे केवल उसी को वरण करना चाहिए तथा जो कुछ अनृत है,— मन के संस्कार, मतामत, बौद्धिक रचनाएँ आदि, प्राण की भोगवासनाएं, माँगें, संकीर्णताएं, गर्व, ईर्ष्या आदि तथा शरीर की मूढ़ता, तामसिकता, संशय, अविश्वास, परिवर्तन की अनिच्छा इत्यादि — इन सब को निर्मम होकर समूल नष्ट कर देना चाहिए।

आत्म-समर्पण और व्यक्तिगत चेष्टा

हमने पहले ही कहा है कि पूर्ण आत्म-समर्पण तथा आत्मोन्मीलन के द्वारा भागवती शक्ति को आधार के अन्दर अव्याहत रूप से कार्य करने देने पर ही दिव्य रूपान्तर साधित हो सकता है। इसी कारण पूर्णयोगी की चेष्टा होगी अपनी व्यक्तिगत तपस्या के बदले धीरे-धीरे भागवती शक्ति को उनकी इच्छा के अनुसार अपने अन्दर कार्य करने की सुविधा देना। तो क्या आत्म-समर्पण-योग में साधक की अपनी चेष्टा की कोई भी आवश्यकता नहीं? यह प्रश्न यहाँ पर बहुतों के मन में उठ सकता है। परन्तु इस प्रश्न का उत्तर क्या हो सकता है, इसका अनुमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना उतना कठिन नहीं। आत्म-समर्पण योग के साधक का चरम लक्ष्य है ऐसी एक अवस्था प्राप्त करना जिसमें व्यक्तिगत चेष्टा की कोई आवश्यकता न रहे, उसके लिये बिल्कुल अवकाश न रहे, जिसमें साधक दिव्य शक्ति की अनन्तमुखी कर्मधारा का केवल केन्द्र बन जाय। किन्तु इस चरम अवस्था को प्राप्त होना केवल तभी सम्भव होगा जब साधक का समस्त आधार सम्यक् रूप से शुद्ध और पवित्र हो जायगा, जब उसकी समग्र सत्ता दिव्य प्रतिमा के रूप में परिणत हो जायगी। इससे पहले व्यक्तिगत चेष्टा और निरन्तर जागरूकता का अभाव होने पर असावधानी के किसी भी मुहूर्त्त में विरोधी शक्ति आकर साधक को प्रभावान्वित कर सकती है। इस कारण जब तक निम्न प्रकृति सक्रिय हो तब तक साधक की व्यक्तिगत चेष्टा की आवश्यकता है। इस व्यक्तिगत चेष्टा का प्राण है अभीप्सा, परिवर्जन और समर्पण। एक ओर पूर्णयोगी जिस तरह भगवान् को ही अपने भीतर वास्तविक साधक के रूप में अनुभव करेगा और उन्हीं की शक्ति को अबाध गति से सक्रिय करने की चेष्टा करेगा, इसी तरह दूसरी ओर वह आधार के पूर्ण शुद्ध हो जाने के ठीक अन्तिम मुहूर्त्त तक निःशेष आत्म-समर्पण करने की चेष्टा करेगा, मिथ्या का मूलोच्छेद कर डालने का प्रयत्न करेगा और अपने अन्तःकरण में दिव्य जीवन प्राप्त करने की अभीप्सा को सदा जीवित-जागृत बनाये रखेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन का रक्षा कवच

विपत्संकुल जीवन-पथ में एकमात्र अव्यर्थ रक्षा-कवच है माँ भगवती की कृपा। यदि माँ की कृपा प्राप्त हो जाय तो फिर साधक जीवन के सभी आँधी-तूफ़ानों के अन्दर से होकर, सभी दुर्दिनों और संकटों से होकर निर्भय अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकता है। इस कृपा को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है अपने अन्तःकरण को श्रद्धा, अनन्यता और आत्मोत्सर्ग के भाव से पूर्ण कर रखना। हमारी श्रद्धा होनी चाहिये शुद्ध, सरल और निर्दोष। बहुत बार श्रद्धा अहंकार और कामना द्वारा कलुषित हो जाती है; हमारा मन और प्राण गर्व और आत्मम्भरिता से फूल उठता है और हम अपनी निम्न प्रकृति की क्षुद्र भोगतृष्णा को तृप्त करने के लिये माँग पेश करते हैं। वास्तविक श्रद्धा अन्तः-पुरुष की सम्पदा है। उस विशुद्ध श्रद्धा को प्राप्त करने पर हमारे जीवन का एकमात्र व्रत होगा दिव्य कर्म और दिव्याभिव्यक्ति; हमारे लिये आकाँक्षा की एकमात्र वस्तु होगी दिव्य चेतना की शक्ति, शान्ति, ज्योति और आनन्द तथा देह-प्राण-मन का दिव्य रूपान्तर; हमारी एकमात्र माँग होगी पृथ्वी के ऊपर अतिमानस सत्य की शाश्वत प्रतिष्ठा। इसी प्रकार हमारी अनन्यता और आत्मोत्सर्ग भी निर्मल और अखण्ड होना चाहिए। अपनी सत्ता के किसी अंश को, अपनी साधना की किसी शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हमें अहं के लिये अथवा अन्य किसी अदैवी शक्ति के लिये सुरक्षित नहीं रख छोड़नी चाहिए। हमारी श्रद्धा, अनन्यता और समर्पण जितने परिमाण में शुद्ध और पूर्ण होंगे उतने ही परिमाण में माँ की कृपा और अभय-वरदान को हम प्राप्त कर सकते हैं। माँ की अभयवाणी प्राप्त कर लेने पर कोई भी बाधा-विपत्ति, कोई भी विरोधी शक्ति, वह चाहे जितनी भी दुर्धर्ष क्यों न हो, साधक को स्पर्श तक नहीं कर सकती, बल्कि माँ की कृपा से सङ्कट सुयोग बन जाता है, व्यर्थता-दुर्बलता सार्थक अमोघ सामर्थ्य के रूप में परिणत हो जाती है। क्योंकि माँ की कृपा के अन्दर प्रकाशित होता है विधाता का सर्वजयी अव्यर्थ विधान—परमेश्वर की अनुमति। (क्रमशः)

(श्री अरविन्द-पाठमन्दिर से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकटकाल

[यह लेख गतवर्ष अक्तूबर मास में लिखा गया था। परन्तु कहीं प्रकाशित नहीं हो सका था। यह मनोरंजक बात है कि कभी तो मेरे लेख अख़बारों में इसलिये नहीं छपते थे क्योंकि वे सरकार के विरुद्ध होते थे, पर यह लेख इस लिए नहीं छापा जा सका क्योंकि साधारण लोकमत के विरुद्ध था। अस्तु, पाठक इस लेख को इस दृष्टि से पढ़ें कि यह अब से चार मास पूर्व उस समय का लिखा हुआ है, जबकि धुरी-राष्ट्रों की विजय होती दीखती थी और बहुत ही सङ्कटकाल था। वैसे तो परमेश्वर की कृपा से अगले ही मास से, नवम्बर से सम्मिलित राष्ट्रों की विजय होनी प्रारम्भ हो चुकी है और अब पूर्णरूप से हो रही है तथा सङ्कट बहुत कुछ टल चुका है, फिर भी इस लेख को अब भी इस लिये प्रकाशित किया जा रहा है क्योंकि इस लेख में व्यापक भावना की तथा वैसी ही मनोवृत्ति बनाने की एवं आचरण करने की अब भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी तब थी, और यह तब तक रहेगी जब तक कि युद्ध समाप्त नहीं हो जाता, सम्मिलित राष्ट्रों की विजय में समाप्त नहीं हो जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है हम, जिन्हें भारतवासी होने का सौभाग्य प्राप्त है, अब भी इस विषयक अपने कर्तव्य को पहिचानेंगे।

इस विषय को अच्छी तरह समझने के लिए मैं पाठकों का ध्यान श्री नलिनीकान्त जी के विद्वत्तापूर्ण तथा ज्ञानपूर्ण लेख 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' की तरफ़ विशेषतया आकृष्ट करता हूँ जो इसी अङ्क में ४० पृष्ठ पर छपा है।—अभय]

१ जगत् की रक्षा या भारत की स्वाधीनता

महात्मा गाँधी का, साधारण लोगों के विपरीत, यह कहना रहा है कि यदि भारत हिंसा द्वारा स्वराज्य के लिये कटिबद्ध होगा तो उनकी आहत, रुधिरप्लावित आत्मा हिमालय में शरण खोजेगी, ऐसा स्वराज्य कभी सच्चा स्वराज्य नहीं होगा। क्योंकि उनकी दृष्टि में अहिंसा हमारे राजनैतिक स्वराज्य की अपेक्षा बहुत बड़ी चीज़ है। इसे पूरी तरह सब समझें, मानें या न मानें पर इतना तो सब मानेंगे कि इसी तरह अन्य ऐसी वस्तुएँ ज़रूर हो सकती हैं और अनेक हो सकती हैं जो कि सचमुच स्वराज्य से बड़ी हों और जिनको खोकर स्वराज्य हो ही नहीं सकेगा या वह निरर्थक वस्तु होगा, असली स्वराज्य नहीं होगा। ऐसी एक वस्तु आज बड़े ज्वलन्त रूप में उपस्थित है। आज सारी दुनिया की ही रक्षा का प्रश्न इतनी भयंकरता से उपस्थित है कि उसके सामने भारत की स्वाधीनता का प्रश्न विस्मृत हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। आक्रान्ता राष्ट्र जो धुरीराष्ट्र कहलाते हैं आज जो एक के बाद एक अन्य राष्ट्रों को पादाक्रान्त करते आ रहे हैं उनसे दुनिया को बचाने का प्रश्न इतना भारी है कि उसके चलते रहते भारत की स्वाधीनता चाहने का कुछ मतलब ही नहीं रहता। पिछले वाक्स्वातन्त्र्य के वैयक्तिक सत्याग्रह को प्रारम्भ करते हुए बम्बई में गाँधी जी ने कहा था कि इस समय अंग्रेज़ों से हम क्या स्वराज्य माँगें, स्वराज्य के लिये उनके विरुद्ध इस समय हम सत्याग्रह नहीं कर सकते जब कि अंग्रेज़-जाति इतनी भारी मुसीबत में पड़ी है, अपने अस्तित्व के लिये ही कशमकश कर रही है। गाँधी जी की वह बात मेरी समझ में इस समय तो और भी अधिक सही है, और केवल अंग्रेज़ों का अस्तित्व ही नहीं, किन्तु सभी स्वाधीन रहना चाहने वाली जातियों का अस्तित्व इस समय महासंकट में है। फिर भी गाँधी जी ने, कांग्रेस ने आज जो अंग्रेज़ों से स्वाधीनता पा लेने की लड़ाई छेड़ी है, उसके पीछे जो तर्क है उसे हम सच्चे अर्थों में लें तो भी हम उसी परिणाम पर पहुँचेंगे जिसका मैं वर्णन कर रहा हूँ। क्योंकि, एक वाक्य में, काँग्रेस इस समय इसीलिये जान की बाज़ी लगाकर अंग्रेज़ी सरकार से लड़ रही है क्योंकि वह जापान, जर्मनी आदि आक्रान्ता राष्ट्रों को परास्त करने में, अहिंसात्मक ही नहीं, किन्तु हिंसात्मक तौर पर भी अपना हिस्सा स्वाधीनता से लेने को तड़फ रही है, क्योंकि राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद तथा जवाहरलाल जी तो फौज और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलवार लेकर भी जापान से लड़ने को उद्यत हैं। इसलिये इस बात में मतभेद हो सकता है और है कि इस समय स्वतन्त्रता का आन्दोलन मित्रराष्ट्रों को मदद पहुँचाने के लिये जरूरी है या नहीं किन्तु इस बात में मतभेद नहीं है कि इस समय धुरीराष्ट्रों को पराजित करने में लगना, मित्रराष्ट्रों को मदद पहुँचाना अत्यन्त जरूरी है। मुझे दुःख है कि बहुत से लोग, कांग्रेस के भी लोग, हमारे मान्य नेताओं की इन बातों को गम्भीरता से नहीं ले रहे हैं, बहुत से इसमें विश्वास नहीं करते हैं, कई समझते हैं कि यह केवल राजनीति की चाल है असल में हमें जापान जर्मनी को हराने से कुछ मतलब नहीं, हमें तो अपनी स्वाधीनता चाहिये। पर मैं कहना चाहता हूँ कि परमेश्वर के वास्ते हमें अपने पूज्य नेताओं के कथन को जैसा वे कहते हैं वैसा ही समझना चाहिये। कांग्रेस स्वराज्य के सवाल को अभी टाल सकती थी और लड़ाई की समाप्ति तक के लिये टाल ही चुकी थी। फिर भी जो कांग्रेस को या गाँधी जी को स्वाधीनता के लिये अब एकदम सत्याग्रह करना पड़ा है वह केवल इसीलिये चूँकि वे इस लड़ाई में अंग्रेजों की जीत कराना चाहते हैं, और उनकी दृष्टि में हमारे स्वाधीन हुए बिना वह बहुत मुश्किल है। इसलिये वे भी जो कुछ कर रहे हैं वह अंग्रेजों के पक्ष की विजय के लिये ही कर रहे हैं। तो अब भी मुख्य बात मित्र पक्ष की जीत कराना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, न कि अपनी स्वाधीनता, अपनी स्वाधीनता की अभी घोषणा हो जाना तो उसके साधन के तौर पर ही चाहिये। एवं मित्र पक्ष की विजय कराने के लक्ष्य पर सब सहमत हैं, मतभेद है तो साधन में है। इसलिये गाँधी जी जैसे सत्य-परायण महा पुरुष के इस कथन में हमें जरा भी अविश्वास नहीं करना चाहिये कि वे सचमुच अंग्रेजों के पक्ष की जीत के लिये ही सच्चे दिल से यत्नशील हैं। और यही ठीक है। सब तरह से ठीक है। यही करना भी चाहिये। वास्तव में दुनिया पर इस समय एक बड़ा भारी संकट आया हुआ है। उसकी भीषणता तथा उसके बचने की तात्कालिक महान् आवश्यकता को देख कर ही मेरा जैसा आदमी भी चिल्लाने लगा है, इस राजनैतिक से दीखने वाले विषय में इतने यत्न, निश्चय और दृढ़ता के साथ अपने भाव आवश्यक रूप से प्रकट करने को बाधित हुआ है। इसके लिये मुझे वर्तमान युद्ध के असली स्वरूप का वर्णन करने की आवश्यकता होगी। सो इस विषय में मैं नीचे कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। इससे पाठकों को यह भी पता लग जायगा कि मैं केवल निरी राजनैतिक चर्चा नहीं कर रहा, मैं तो अपने स्वाभाविक क्षेत्र के अनुसार आध्यात्मिक दृष्टि से ही सब कुछ कह रहा हूँ, परन्तु राजनीति भी बलात् इस समय इसमें अपने स्थान पर आजाती है क्योंकि सच्ची आध्यात्मिकता में सब कुछ ही--राजनीति भी—ठीक स्थान पर अपनी मर्यादा से आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—वर्तमान युद्ध का स्वरूप

आज जो जगत्-व्यापी युद्ध चल रहा है उसे किन्हीं एक जातियों का दूसरी जातियों के विरुद्ध युद्ध समझना गलती होगी। जातियाँ और मनुष्य तो निमित्त-मात्र हैं। इनके पीछे जो शक्तियाँ काम कर रही हैं उन्हें देखना चाहिए। जर्मनी के वर्तमान नाज़ीवाद के पीछे एक ऐसी अन्धकारमयी और असत्यरूप आसुरी-शक्ति काम कर रही है जो कि जगत् भर पर अपना कब्ज़ा करने के लिए बड़े वेग से बढ़ी जा रही है, इटली और जापान उसी से संचालित जर्मनी का साथ दे रहे हैं। यदि कहीं इनकी जीत हुई तो दुनियाँ का बहुत काल के लिए दिव्य जीवन के लिए फिर उभर सकना असम्भवप्राय हो जायगा। हम भारतवासी अभी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि जर्मनी या जापान का राज्य हो जाने का कितना भयंकर अर्थ है। घोर आतङ्क और अत्याचार का राज्य हो जायगा; उन्नति के लिए सब स्वाधीनता, दिव्य प्रकाश तथा सत्य की साधना की सब आशा समाप्त हो जायगी, आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जायगा। इसलिए इस घड़ी आवश्यकता है कि हम दुनियाँ के शत्रु और दुनियाँ के मित्रों व बचाने वालों को साफ़ पहिचान जाँय और अपनी सब सम्भवनीय शक्ति से जो दुनियाँ की रक्षा करने वाला पक्ष है उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदद करें। यह ठीक है कि हम भारतवासी अँग्रेज़ों के सताये हुए हैं, इसलिए हमारे मनों में उनके प्रति विशेष नफ़रत होना स्वाभाविक है। पर इस समय उस नफ़रत को भुला देना चाहिए। मैं जानता हूँ कि यह कितना कठिन है, विशेषतः जबकि अँग्रेज़ी सरकार ने पूज्य गान्धीजी तथा देश के सर्वप्रिय नेताओं को जेल में डाल रखा है और घोर दमन कर रही है। तो भी मैं कहूँगा, और इसीलिये कहने की और भी आवश्यकता है, कि इसके होते हुए भी हमें अपने असली शत्रु को, मानवता के शत्रु को भूल नहीं जाना चाहिये। उस शत्रु के मुकाबिले में यह सब भी बहुत गौण वस्तु है। पर यदि हम उल्टा सोचेंगे, अँग्रेज़ों को ही कहीं इस समय अपना शत्रु समझेंगे तो हम भारत पर—और अतएव समस्त दुनियाँ के भविष्य पर—बड़ी भारी विपत्ति को निमन्त्रित कर रहे होंगे। यह नहीं कि अँग्रेज़ देवता हो गये हैं, या रूस ही कोई सच्चा मार्ग दिखाने वाला है, परन्तु चूँकि अपनी सब कमज़ोरियों और खराबियों के होते हुए भी इस समय अँग्रेज़, रूस और अमेरिका, चीन सहित उस आसुरी शक्ति का विरोध करने और उसे परास्त करने के लिये जो कि अपनी अन्धकार और असत्य-मूलक नृशंस अवस्थाओं के साथ सब जगत् पर कब्ज़ा करने की भयङ्कर चेष्टा कर रही है निमित्त बने हुए हैं, (चाहे अनजान में ही, पर दैव कार्य में निमित्त बने हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं) इसलिये हमें अपनी सब शक्ति के साथ इस पक्ष की विजय कराने के लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिए।

३—हमें क्या करना चाहिए

तो कम से कम हमें

१—अपने मन से धुरीराष्ट्रों के साथ पक्षपात को, इनकी विजयाकांक्षा के छिपे हुए सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाव को भी बिल्कुल निकाल देना चाहिए। अँग्रेज़ों के प्रति द्वेष भाव के कारण या केवल उथल-पुथल व नई परिवर्तित अवस्था की इच्छा के कारण जो बहुत से भारतवासियों के अन्दर धुरी-राष्ट्रों की विजय से खुशी होती है वह बहुत ही हानिकारक है, वह जापान या जर्मनी को भारत पर आक्रमण करने के लिए ज़बर्दस्ती अपनी ओर खींचती है। हम जानते हैं कि हमारे देश में अँग्रेज़ों के प्रति कटुता इतनी गहरी है कि बड़े-बड़े सरकारी नौकर भी दिल में अँग्रेज़ों की हार चाहते हैं, पर यह अवस्था इस समय जगत्-कल्याण के और अतएव भारत-कल्याण के लिए बहुत ही विपरीत जा रही है। इसलिये बड़ी भारी मदद करना यह है कि हम अपने मनों में से धुरी राष्ट्रों के प्रति सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पक्षपात को भी बिल्कुल निकाल देवें बल्कि—

२. सच्चे दिल से हिटलर की हार तथा मित्रपक्ष की विजय मनावें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. मित्रपक्ष को विजयी करने के लिये अन्य जो कुछ भौतिक सहायता पहुँचाना भी हमारे हाथ में हो वह सब भी करें।

पर यदि हम इतना भी न करेंगे तो बड़ा डर है कहीं आसुरी पक्ष विजयी न हो जाय। यही समय है जब कि थोड़ा सा भी अपना बोझ ठीक तरह से ठीक तरफ़ डाल देने से उठा जाता हुआ तराज़ू का पलड़ा फिर ठीक हो सकता है, उचित ओर बोझ पड़ जाने से युद्ध सन्तुलित हो ठीक प्रकार समाप्त होना शुरू हो सकता है। आशा है हम अपना सब बोझ दिव्यपक्ष की ओर दे देंगे और इस प्रकार दैवी विजय में साझीदार होने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे। तब संसार पर छाया हुआ महासंकट टल जायगा; दुनिया विश्रान्ति, शान्ति और चैन का सांस ले सकेगी, आज़ादी पावेगी। भारत आज़ाद होगा, दुनिया को सच्चे अर्थों में आज़ाद करता हुआ भारत आज़ाद होगा, आज़ादी के साथ अपनी दिव्यता, सत्यप्रकाश और आध्यात्मिकता का सन्देश सब कहीं फैला सकने के लिये आज़ाद होगा। क्योंकि तब दिव्य प्रकाश फैलने को रोकने वाली बड़ी बड़ी रुकावटें और बाधायें दुनिया पर से हट चुकी होंगी। इसलिये जितना ही भारी यह संकट है इसके टल जाने से उतना ही भारी कल्याण भी होने वाला है। तो इस समय आवश्यकता है प्रमाद-रहित होकर, सब शक्ति लगाकर इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकट पर विजय पा लेने की। नहीं तो ज़रा से प्रमाद से, ज़रा सी ग़लती के कारण यह हो सकता है कि भारत की आदिकाल से चली आती सब दिव्यता, सात्त्विकता तथा सब आध्यात्मिकता के मिट्टी में मिल जाने का अवसर आजाय। इसीलिये भारतीय भाइयों से (और भारत का भला चाहने वालों से) मेरी यह पुकार है।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविज्ञान और योग

(ले०—डा० इन्द्रसेन जी)

इस विषय पर लिखने में मुझे दो भावों ने प्रेरित किया है। प्रथम तो यह कि चूंकि आधुनिक मनोविज्ञान (जिसका उद्देश्य मन के, आत्मा और व्यक्तित्व के, चेतना और अचेतना के अध्ययन तथा अनुसंधान की कोशिश करना है) मनुष्य की अपने आपको जानने की बद्धमूल जिज्ञासा का एक आधुनिक रूप है; इसलिये हम इसे ऐसा समझ सकते हैं कि यह एक प्रकार से यौगिक अभीप्सा का ही पुनः आविर्भाव है जो अभीप्सा चाहे आज भौतिक विज्ञान पर आश्रित वर्तमान सभ्यता की परिस्थितियों से ढकी हुई है। दूसरा यह कि पाश्चात्य विचार-पद्धति में पला हुआ योग का एक आधुनिक विद्यार्थी मनोविज्ञान को योग की एक सहायक सामग्री और भूमिका के रूप में पा सकता है; विशेषतया इसलिए चूंकि मनोविज्ञान में कुछ निश्चित प्रवृत्तियाँ हैं जो मनुष्य की वैयक्तिक कठिनाइओं को समझने में अति ... योग के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिज्ञासु को अपने व्यक्तित्व के मूलतः पुनर्निर्माण के कार्य में मदद दे सकता है। अतः योग के विद्यार्थी को एक सामान्य मनोवैज्ञानिक भूमिका का देना यहाँ इस लेख में हमारे प्रयत्न का विषय होगा।

सबसे पहले हम यह पूछना चाहेंगे कि योग असल में है क्या वस्तु ? हम उत्तर दे सकते हैं कि यह विचारणा की एक क्रियात्मक पद्धति है जिसमें कि आत्मा और उस की शक्तियों के साक्षात्कार की उन विविध विधियों और क्रमों का वर्णन किया जाता है जिनसे कि आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त होती है। योग है वह 'आत्मा का विज्ञान' जो किसी जाति, मत या जीवन-व्यवसाय का भेद रखे बिना सब व्यक्तियों के लिये समान रूप से सार्थक और हितकर है।

योग की आवश्यकता

किन्तु आधुनिक मनुष्य विरोध-प्रदर्शन-पूर्वक पूछेगा, आत्म-साक्षात्कार से मैं सम्बन्ध ही क्यों रखूं ? आत्मा की वास्तविक सत्ता ही कहाँ है ? हमें इन प्रश्नों को अवकाश देना चाहिए। अतएव हम, कम-से-कम अभी 'आत्मा' और 'आत्म-साक्षात्कार' इन शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे। किन्तु प्रश्नकर्ता निश्चय ही यह मानेगा कि वह अपने सुख, मानसिक समता और समतुलित निर्णय-शक्ति में तथा अपने समर्थ जीवन और मन की सामान्य शान्ति में अवश्य गहरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलचस्पी रखता है। सचमुच आजकल का विक्षिप्त जगत् इन वस्तुओं की आवश्यकता बड़ी तीव्रता से अनुभव कर रहा है। स्नायुविकार (Nervous and mental disorders) इस युग की व्याधि है और निःसन्देह यह स्नायुरोगी ही हैं जो चिन्ता और बेचैनी से अतीव व्यथित होते हैं और अत एव बड़ी विह्वलता से शान्ति के लिए पुकारते हैं। स्विटजरलैंड में मेरी गृहरक्षिका के इस प्रासंगिक वचन ने कि, 'क्या तुम्हें भी भारतवर्ष में अपने दैनिक कृत्यों के अनुष्ठान में इतनी दौड़ धूप करनी पड़ती है जितनी कि हम यहाँ करते हैं' मेरे मन पर अमिट छाप छोड़ी है। हमारा जीवन, जैसे कि यह आज संघटित है, भारी आवश्यकताओं से लदा हुआ है और हम प्रायः प्रतिक्षण अपने को दौड़धूप में ग्रस्त पाते हैं। परन्तु वास्तव में हम लगे भी किन बड़े कामों में हैं ? वर्ड्ज़वर्थ क्या अपनी इस शिकायत में सच्चा नहीं है कि, 'साधारण खानपान, उपार्जन और व्यय में हम अपनी शक्तियों का नाश कर देते हैं' (Getting and spending we lay waste our powers)। ऐसे संसार में शान्ति की बड़ी भारी आवश्यकता स्वाभाविक ही है। जो व्यक्ति केवल खाने-पीने और साधारण 'सुखी जीवन' से सन्तुष्ट नहीं होते उनको तो सदा ही इसकी अनिवार्य आवश्यकता अनुभव होती है। वे अधिक विस्तृत, सुखी और वस्तुतः पूर्ण जीवन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याचना करते हैं। इसी आवश्यकता से ही योग का उदय हुआ और इसे ही वह पूरा करना चाहता है। अतः योग का जिज्ञासु वह है जिसने अपने वर्तमान जीवन की अपूर्णताओं का तीव्र अनुभव किया है और इसके अर्थ को खोजने तथा इसकी बृहत्तर शक्यताओं को सिद्ध करने के लिये एकनिष्ठ है।

इसमें सन्देह नहीं कि आजकल बहुत से लोग, विशेषतः शिक्षित वर्गों के, अपने जीवन की अपूर्णता महसूस करते हैं और कुछ थोड़े से चिन्तन से वे अपनी इस कमी को पहचान जायेंगे। परन्तु कोई भी व्यक्ति इस अपूर्णता की पूर्ति के लिये क्या यत्न करे? आधुनिक शिक्षा से उसने नयी आदतें और विचार-प्रणालियाँ सीखी हैं। परिणामतः कुछ प्राचीन आदरणीय सांस्कृतिक वस्तुएँ उसके लिये केवल इस कारण निरर्थक हो जाती हैं क्योंकि वह उन्हें समझ नहीं पाता। अतएव वर्तमान भारतीय विद्वान का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह प्राचीन विद्या को आधुनिक बुद्धि के लिये सुलभ बनाये। स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और श्रीअरविन्द सदृश महापुरुषों की शृङ्खला ने वर्तमान काल में हमारी इस प्राचीन विद्या की व्याख्या की है, और इसका निरूपण किया है। सुप्रसिद्ध जीवन-चरित्र-लेखक रोमाँ रोलां (Romain Rolland) के शब्दों में "श्रीअरविन्द तो एशिया की प्रतिभा और यूरोप की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा के ऐसे पूर्णतम समन्वय हैं जो कि आज तक प्राप्त किया गया है।" इस प्रकार पश्चिम के लिए भारतीय विद्या का सुनिरूपण करने तथा प्राचीन ज्ञान को अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों तक पहुंचाने के लिए वही उपयुक्ततम व्यक्ति हैं। युवावस्था में ही उन्हें यह प्रतीत हो गया कि योग उनके जीवन की सर्वोच्च महत्त्वाकांक्षा है और वैयक्तिक अनुभव के आधार पर उन्होंने एक योग-साधन-पद्धति का प्रतिपादन किया है। हमारे देश का विशाल इतिहास जिन अनेक विभिन्न यौगिक प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करता है उनका यह अत्यन्त सुन्दर, श्रमसिद्ध और विशाल समन्वय है। इसके परिपक्व मनोविज्ञान ने मुझे बहुत आकृष्ट किया है और मैं सहजभाव से प्रत्येक योग-जिज्ञासु को श्रीअरविन्द का योगविषयक साहित्य, जिसकी सूची मनोविज्ञान-सम्बन्धी अन्य उपयोगी ग्रन्थों के साथ अन्त में आबद्ध है, पढ़ने के लिए निमन्त्रित कर सकता हूँ।

निग्रह

हमने ऊपर कहा था कि योग का उदय जीवन की पूर्णता-विषयक अन्तःप्रेरणा से हुआ है। परन्तु यौगिक प्रक्रिया का यथार्थ स्वरूप क्या है? व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो अन्ध-प्रेरणा (Instinct) और तर्कणा का संघर्ष ही यौगिक प्रयत्न के क्षेत्र का निर्माण करता है। मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी प्रकृति से ही अनेकविध प्रवृत्तियों से युक्त है, उदाहरणार्थ, भय, लड़ने झगड़ने की वृत्ति, संचयशीलता, लैङ्गिक प्रवृत्ति इत्यादि। ये व्यक्ति के विकास में भिन्न भिन्न क्रमों पर प्रकट होती हैं। बच्चा सर्वप्रथम स्तन्य-पान, मुट्ठी में किसी चीज़ को पकड़ लेना, निगलना और कुछ अन्य प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता है। कुछ समय बाद वह बैठना और चीज़ों के साथ खेलना शुरू करता है। काल की प्रगति के साथ साथ वह चलना प्रारम्भ करता है और उसकी क्रीड़ा का क्षेत्र विस्तृत हो चलता है। लगभग १२ वर्ष की उम्र में उसे लिङ्ग-ज्ञान होता है और वह लड़कों तथा लड़कियों में भेद करना शुरू करता है। तथापि इतर लिङ्ग के प्रति भावात्मक आकर्षण बहुत देर में प्रकट होता है। अब, प्रत्येक अन्धप्रेरणा प्रकट होते ही उद्दण्डतया क्रिया करने में प्रवृत्त होती है। यह तत्क्षण ही सम्पूर्ण जैव-सत्ता को अपने नियंत्रण में करना चाहती है। पर यह एक अन्धप्रेरणा होती है। पक्ष-विपक्ष के विचार इसकी क्रिया के घटित होने में दखल नहीं दे सकते। बच्चे की अन्धप्रवृत्ति (Impulse) एक सुपरिचित अनुभव है।

किन्तु शनैः शनैः दण्ड के भय और प्रशंसा तथा पारितोषिक के प्रलोभन से बच्चा इन अन्धप्रेरणाओं को संयत करना सीखता है और इस तरह वह आचार के सामाजिक आदर्श-मान का उत्तरोत्तर अधिक अनुसरण करता जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह आचार व्यवहार के उन आदर्शों को बुद्धि में स्थान देने लगता है जिन्हें मनोविज्ञान वेत्ता भावनाएँ (Sentiments) कहते हैं। प्रौढ़ होने तक वह अपनी अन्ध-प्रेरणाओं और आवेगों को काफ़ी हद तक, कम-से-कम सभ्य समाज में रहने के लिये पर्याप्त मात्रा में, वश तथा समता में ले आता है। अन्धप्रेरणा और आवेग अब भी उसके जीवन की प्रेरक शक्तियों का काम करते हैं, परन्तु वे अधिकांश में 'शिष्ट-सामाजिक-व्यवहार' की भावना के अधीन रहते हैं। पर यद्यपि बच्चे के व्यवहार की अपेक्षा उसके जीवन की समस्वरता विकसित होता है तो भी वस्तुतः वह एक गठी-जुड़ी चीज़ होती है। बहुधा अन्ध-प्रेरणाएं केवल दबा दी गई होती हैं जिससे उनकी वासना गुप्त रूप से अचेतन में काम करती रहती और स्वप्नों तथा जीवन के अन्य अनेक प्रासंगिक कार्यों में आविर्भूत होती रहती है। इन दबी हुई अन्धप्रेरणाओं की यथार्थ क्रिया पर ही पिछले कुछ वर्षों में एक सम्पूर्ण मनोविज्ञान खड़ा हो गया है। अन्धप्रेरणाओं का अधीर और दिखावटी नैतिक (Moralistic) नियन्त्रण कैसे निग्रह की ओर ले जाता है? ये निग्रह कैसे अलक्षित ही काम करते रहते हैं?—इनका स्वप्नों में अपने प्रच्छन्न रूपों और सामान्य व्यवहार में अप्रत्यक्ष हावभावों में प्रकट होना तथा गम्भीर मानसिक संघर्षों और निग्रहों की अवस्था में मानसिक गड़बड़ों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणामतः उत्पन्न होना—इस सबकी छानबीन फ्रायड (Freud) ने अपने मनोविश्लेषण द्वारा बड़ी सावधानी से की है। विविध कुटिल रूपों में आत्मवंचन भी इस क्षेत्र में दृष्टिगोचर हुआ है जिसका अत्यन्त श्रमपूर्ण अध्ययन किया गया है। मेरे ख़्याल में योग-विद्या के अनुष्ठान के लिये यह ज्ञान बड़ा सहायक है।

योग का उद्देश्य

योग की वास्तविक समस्या है जीवन की पूर्ण समस्वरता या समतुलन। विद्रोही आवेगों का वशीकरण-मात्र पर्याप्त नहीं है। स्वतः आन्तरिक वासना का ही नितान्त रूपान्तर योग का ध्येय है। कुछ भिन्न भिन्न भावनाओं और बहुत से अर्ध-दमित आवेगों के संघर्षमय पथप्रदर्शन के अधीन काम करने वाले साधारण सामाजिक मनुष्य के विषम, विभक्त जीवन के बजाय, योग उस अखण्ड और सर्वांगीण जीवन को अपना लक्ष्य बनाता है जो एक प्रधान भावना—सत्य के प्रति प्रेम की अथवा ईश्वर-साक्षात्कार या आत्म-साक्षात्कार या पूर्ण जीवन के प्रति प्रेम की एक प्रधान भावना—से परिचालित हो, और उसमें अपने अन्दर की किसी असन्तुष्ट वासना की बुड़बुड़ाहट तक न हो।

इस प्रकार अपनी दृढ़ता प्रकट करने वाली और स्वार्थ-तत्पर अन्धप्रेरणाओं को एक प्रधान सर्वनियामिका भावना की सर्वांगीण शक्ति में रूपान्तरित करना योग की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक समस्या और क्रिया है। परन्तु यह रूपान्तर साधित कैसे हो? क्या योग का यह महान् ध्येय प्राप्य है भी सही? मनुष्य पशुवत् जीवन शुरू करता है और क्या उसके लिये अन्त तक वैसा ही रहना आवश्यक नहीं है? पशु अपने जीवन से सन्तुष्ट है। अन्धप्रेरणा उसके जीवन का सर्वोपरि नियम है और उससे उसके सब काम पूरी तरह से चल जाते हैं। परन्तु मनुष्य का ही यह भाग्य या विशेषाधिकार है कि वह 'आगे और पीछे देखे' और पश्चात्तापों, आन्तरिक संघर्षों और निग्रहों का कष्ट झेले। यदि वह उनसे ऊँचा उठ सके तो वह निश्चित ही अति-मानव (मनुष्यपन को अतिक्रान्त कर गया हुवा) हो जाता है। अब प्रश्न का यह रूप हो जाता है कि क्या अतिमानव जीवन मनुष्य के लिये सम्भव है? क्या मनुष्य अतिमानव बन सकता है? कम से कम योग का उत्तर तो है विश्वासपूर्ण 'हाँ', और यह साहसी वीर आत्माओं को एक इस प्रकार की चुनौती देने के लिये काफ़ी है कि वे असाधारण लाभ के लिये अपने जीवन के साथ ऐसा परीक्षण करें।

अभीप्सा और परित्याग

परन्तु इस महान् उद्देश्य तक पहुँचाने वाला अनोखा उपाय कौनसा है? 'अभीप्सा', यह है योग का चामत्कारिक उत्तर। 'अभीप्सा करो, तीव्रतया और सर्वात्मना अभीप्सा करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्तव्य उद्देश्य के लिये अपनी सारी सत्ता से अभीप्सा करो, अनन्यचित्तता और पूर्ण सत्यहृदयता के साथ अभीप्सा करो।' पर इसके साथ वर्तमान आसक्तियों के परित्याग की मनोवृत्ति भी अवश्य रहनी चाहिये। जिज्ञासु को चाहिये कि वह ऐसे वर्तमान बन्धनों से अपने आपको छुड़ा ले जो कि उद्देश्य से टकराते हैं, उसके प्रतिस्पर्द्धी हैं। उसे अपनी 'मानसिक रचनाओं' को नष्ट करने के लिये अपने आपको तैयार करना पड़ता है ताकि नये आत्मिक जीवन का भव्य-भवन खड़ा किया जा सके।

एवं परित्याग तथा अभीप्सा की परस्पर-पूरक मनो-वृत्तियाँ, एक अभावात्मक और दूसरी भावात्मक, रूपान्तर का सारा जादू करती हैं।

परन्तु यहाँ सही तौर पर यह पूछा जा सकता है कि 'अभीप्सा मात्र से सिद्धि कैसे प्राप्त होती है?' 'इच्छा सिद्धि तक कैसे पहुँचा देती है?' पहली बात तो यह कि 'इच्छा' और 'अभीप्सा' एक ही चीज़ नहीं हैं। प्रत्युत अभीप्सा का अर्थ है गंभीर 'अभिकांक्षा करना व संकल्प करना।' और 'गम्भीरभाव से अभिकांक्षा करना' इच्छा करने से इस बात में भिन्न है कि यह अभिकांक्षित पदार्थ की प्राप्ति की सम्भावना के विश्वास से युक्त होता है। इच्छा में ऐसा नहीं होता। परन्तु 'तीव्र गम्भीर आकांक्षा करना' या अभीप्सा स्वतः ही अभीष्ट-प्राप्ति कैसे कर लेते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं ? अब मनोविज्ञान के अनुसार "सामान्य नियम यह है कि जब 'किसी काम का करना, किसी करणीय काम का विचार' चेतना को इस प्रकार व्याप्त कर लेता है कि विरोधी सुझावों या प्रेरणाओं (Suggestions) को निकाल कर सर्वथा बाहर कर दे या दबा दे तभी क्रिया घटित होती है।" पुनश्च "अगर यह पता हो कि हम कोई क्रिया कर सकते हैं तो उसे करने के लिये जो कुछ आवश्यक है वह इतना ही कि इसके विचार की या इससे प्राप्य उद्देश्य की अपने अन्दर अनन्य रूप में प्रबलता या प्रधानता प्राप्त करने का यत्न करें"—स्टौट (Stout)। इस प्रकार किसी कार्य या परिणाम की सिद्धि के लिये 'आत्म-नियमन-पूर्वक उसकी ओर ध्यान लगाना' बस यही सब कुछ है जो अपेक्षित है। सच तो यह है कि 'विचारों की अपने आप को कार्य में परिणत कर लेने की ओर प्रवृत्ति अब मनोविज्ञान में एक प्रसिद्ध चीज़ है'—स्टौट। परन्तु कभी कभी हमारे इरादे और इच्छा के विरुद्ध भी कार्य हो जाते हैं। एक युवक जो अभी हाल में अपना भाषण देने वाला है, पहले से ही यह समझता है कि वह कांपेगा और पीला पड़ जायगा और कदाचित् असंगत बोलने लगेगा। वह चाहता है कि मैं इससे सर्वथा भिन्न व्यवहार करूँ, तो भी ऐन मौक़े पर उसका यह ख्याल कि वह ठीक प्रकार भाषण दे सकने में इतना डरता है उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन को ऐसे घेर लेता है 'कि वह जैसी आशंका करता था वैसा ही अपरिहार्य रूप से कर बैठता है।' इस प्रकार, यह उसके ठीक प्रकार भाषण दे सकने में इतना डरने का ही ख़याल है जो उसके मन को आ घेरता है और उसके कार्य का निर्धारण करता है। निरूढ़ विचारों (Fixed ideas) की दशा में भी, जहाँ कि व्यक्ति अनिच्छा-पूर्वक किसी 'आ घेरने वाले पाप', या प्रबल प्रलोभन के अधीन हो जाता है, ठीक यही बात होती है। "विचार की मोहक दिलचस्पी के कारण कार्य करने का और उस के फल का ख्याल उसके मन में तीव्र स्पष्टता के साथ बलात् प्रविष्ट हो जाता है और वह उसे कर डालने में अपने को बाधित अनुभव करता है"—स्टौट। यह स्पष्ट है कि विचार और इच्छा की अवाञ्छनीय आदतों पर विजय पाने का केवलमात्र प्रभावशाली उपाय उनकी तरफ़ से अपना ध्यान और अनुमति हटा लेना ही है। किसी वस्तु में अनुराग कायम रखते हुए उसकी क्रिया का दमन कर डालना गीतोक्त मिथ्याचार ही है, और मनुष्य के आन्तरिक संघर्ष की समस्या का यह कोई हल नहीं है। तो क्या संघर्ष और मानसिक गड़बड़ से बचने के लिये दमन सर्वथा बुरा और रमण (Indulgence) वास्तविक उपाय है, जैसा कि बहुतों की समझ में मनोविश्लेषकों का भी अभिप्राय है? परन्तु यह बात नहीं है। सभ्यता और शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निग्रह आवश्यक है और फ्रायड अपनी कृतियों में इसे स्पष्ट स्वीकार करता है।

इस प्रकार दमन या निग्रह आवश्यक है। परन्तु यह केवल सामयिक और अधूरा हल है। पूर्ण समाधान तो दबी हुई प्रवृत्ति के उदात्तीकरण (Sublimation) या रूपान्तर से ही होगा और इसकी प्राप्ति के लिये आवश्यक है वासना से मुक्ति के लिये तीव्र अभीप्सा और प्राप्य उद्देश्य पर ध्यान का केन्द्रीकरण।

ऊपर हमने यह दिखाने का यत्न किया है कि किस प्रकार स्वीकृत मनोवैज्ञानिक तथ्य आधुनिक मन के सम्मुख योग की फलोत्पादकता और बुद्धिग्राह्यता की व्याख्या और प्रतिपादन करते हैं। परन्तु सत्य यह है कि ध्यानसम्बन्धी मनोविज्ञान (Psychology of attention) अभी एक अपूर्ण चीज़ है और अब तक ध्यान के बारे में जो कुछ ज्ञात है उसके आधार पर कम-से-कम ऐसी आस्था रखना सम्भव है कि योग का यह दावा सर्वथा अशक्य नहीं है कि उसके अभ्यास से मन की उच्चतर शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

योग मुख्यतया मानसिक तथा आंतरिक अभ्यास है

स्वामी विवेकानन्द ने मनोवैज्ञानिक योग की बात कही थी, अर्थात् प्रधानतया मानसिक नियमन से चलने वाले योग की। श्रीअरविन्द भी योग को विशेषतया आन्तरिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यास ही मानते हैं। पर पतञ्जलि साधनपाद में योग के अभ्यास की उस पद्धति का भी निरूपण करते हैं जिसमें यम-नियम-पूर्वक आसन, प्राणायाम के सोपानों द्वारा वर्णित शारीरिक तप को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हमारा विवरण बेशक शुद्धतया मनोवैज्ञानिक है। पर इसका यह मतलब नहीं कि हम परिमित भोजन या शारीरिक संयम के अन्य अंगों का मूल्य कम करना चाहते हैं, तो भी इतना अवश्य मानते हैं कि योग में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु मानसिक वृत्तियों का निरोध ही है (जैसा कि पातञ्जल योग के प्रथमपाद में वर्णित है), और शारीरिक नियन्त्रण केवल उपकरण के तौर पर, साधन के तौर पर ही उपादेय है। यह शोचनीय बात है कि प्रायः बाह्य नियमों को ही योगाभ्यास का बड़ा भाग बना दिया जाता है। ऐसी अवस्था में बहुधा तपस्या, सुख का परित्याग और इन्कार या दमन अपने आप में ही उद्देश्य बन जाते हैं। परन्तु तपस्या नियन्त्रण के तौर पर उचित और उपयोगी होती हुई भी यौगिक जीवन का अन्तिम स्वरूप नहीं बन सकती क्योंकि इसमें वासनाओं के रूपान्तर के बजाय उनका दमन अन्तर्निहित होता है। तपस्वी और भोगवादी में भेद केवल इतना ही है कि पहला तो अपनी सुख की इच्छा को दबाये हुए रखता है और दूसरा अपने आपको उसके प्रति खुल्लमखुल्ला सौंप देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। योग में जैसे कि ऊपर उसका विचार किया गया है, आन्तरिक मन का मूलगत परिवर्तन, जीवन-विषयक दृष्टि को ही पलटना और जीवन के सब व्यवहारों में नये मूल्यों का निर्धारण समाविष्ट है। यह व्यक्तित्व का, और फलतः इसके संसार का पूर्ण रूपान्तर है।

बचपन से अभ्यास की आवश्यकता

जो लोग प्रौढ़ावस्था में यौगिक जीवन के सौन्दर्य और सामर्थ्य से अभिज्ञ होकर अपनी प्रवृत्तियों के रूपान्तर के लिये सचाई के साथ उद्योग शुरू करते हैं वे सोचते हैं कि उन्हें बहुत पहले ही कुछ आधारभूत मनोवृत्तियाँ बना लेनी चाहिये थीं। उन्हें अनुभव होता है कि तब वे कुछ उन कठोर संघर्षों से बच जाते जिनमें से अब उन्हें अवश्य गुज़रना होगा। बहुतों को रसना के साथ कड़ी लड़ाई लड़नी पड़ती है और प्रतिदिन प्रत्येक भोजन के समय अध्यशन (बहुत खा जाने) की तुच्छ दुर्बलताओं की पुनरावृत्ति से उत्पन्न विक्षोभ के कारण एक जिज्ञासु के मुँह से वर्ड्ज़वर्थ की भाँति यह दुःख-भरी चीख अवश्य निकल पड़ेगी, 'काश! मेरी दुर्बलता का कभी तो अन्त हो' ('Oh let my weakness have an end')। और तब उसने अवश्य ही यह चाहा होगा कि अगर वह बचपन में ही मूल्यों की श्रेष्ठतर भावना और खाने की उचित आदतों को डाल लेता तो वह इस सारे कष्ट से बच जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग में अनेक यूरोपियनों की और नहीं तो मोहकता की दिलचस्पी होती है। वे स्वीकार करते हैं कि इसमें भारतवर्ष संसार के इतिहास में अद्वितीय रहा है। और मुझे याद है कि एक यूरोपियन उपाध्याय ने अपनी भारत यात्रा के समय एक वार्तालाप के मध्य में योग के आधार पर निर्मित शिक्षापद्धति का विचार प्रस्तुत किया था। निःसन्देह यह एक सुन्दर विचार है परन्तु इससे शैक्षणिक जीवन की एक पूर्ण पद्धति का निर्माण उस व्यक्ति का काम है जो एक साथ योगी भी हो और शिक्षाशास्त्री भी। तथापि यह स्पष्ट है कि बचपन में ठीक मनोवृत्तियों और मूल्यांकनों (Values) का अभ्यास अधिक सुगमतया डाला जा सकता है और यदि ऐसा किया जाय तो यह व्यक्ति के जीवन की सर्वोत्तम सम्पत्ति होगी। यह उसकी दैवी संपत् होगी जो उसे बहुत योग्यता से और सुखपूर्वक जीवन-संघर्षों से पार कर देगी, अपेक्षा उस धन-दौलत के जिसे हम कितनी चिन्ता के साथ अपने बच्चों को देना आवश्यक समझते हैं।

(असमाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग

(विचार तथा प्रार्थना रूप में)

:o:

(ले०— श्री अनिलवरणराय)

अपनी सत्ता के सत्य के अनुकूल जीवन बिताना ही हमारी साधना है। अपने जीवन के सभी अंगों में हम उसी सत्य को अभिव्यक्त करने की चेष्टा करते हैं; परन्तु साधारणतः हमारी चेष्टा अंध होती है, अंधेरे में टटोल-टटोलकर आगे बढ़ती है और बराबर ही उल्टी दिशा में, मिथ्या की ओर ले जाती है। उस सत्य को ठीक-ठीक, सचेत होकर जानना और अपने जीवन में उसे सिद्ध करना ही योग कहलाता है।

हमें अपने शरीर, प्राण और मन को इस तरह बदल देना और नये सांचे में ढाल देना होगा जिसमें वे नमनीय हो जायं, उस सत्य के यंत्र, सर्वाङ्गपूर्ण वाहन बन जायं। परन्तु जो विश्वास और अभ्यास उनके अन्दर जमकर बैठ गये हैं वे इस परिवर्तन के सब से बड़े बाधक हैं। शरीर को यह विश्वास ही नहीं होता कि जिन नियमों को वह जानता है और जिनका वह अनुसरण करता आ रहा है वे कभी बदले या हटाये जा सकते हैं और यही बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण और मन के विषय में भी कही जा सकती है। कहीं भी सत्य-चेतना का प्रकाश नहीं हैं, उच्चतर दिव्य संभावनाओं में तनिक भी विश्वास नहीं है, हमारे जीवन की गति सदा से अंधवत्, यंत्रवत् चल रही है।

सबसे पहली आत्यावश्यक बात यह है कि हमारी सत्ता के प्रत्येक भाग में अपनी दिव्य संभावनाओं के प्रति दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो, यह विश्वास जमकर बैठ जाय कि हमारी समूची प्रकृति पूर्ण रूप से परिवर्तित और रूपान्तरित हो सकती है, इसे होना ही होगा। इस विश्वास के अन्दर अचल-अटल स्थिति प्राप्त करने के बाद, अपने अन्दर से 'असंभव' सम्बन्धी सभी प्रकार के संस्कारों को दूर भगाने के बाद, हमें अपनी सत्ता के सभी अंगों को मां भगवती की ओर खोले रखने का प्रयत्न करना चाहिए तभी वह सत्य हमारे अन्दर अभिव्यक्त हो सकता है और वह अपनी प्रकृति के अनुसार हमें नया रूप दे सकता है।

* * *

हे मां! मेरे व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से अपने अन्दर मिल जाने दे, जिससे मेरे अन्दर अपने पुराने जीवन का कोई भी चिन्ह बाकी न रह जाय। केवल इसी तरीक़े से मैं अपनी सत्ता के सत्य को प्राप्त कर सकता हूँ, क्योंकि तेरे साथ मेरा एकत्व ही वास्तविक सत्य है और मेरा पार्थक्य एक मिथ्या है जो सभी दुःखों और दुर्दशाओं का कारण है।

माँ! तेरे साथ पुनः एकत्व प्राप्त करने के लिये केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि हम अपने हाथों से तेरा चरण स्पर्श करें या कभी-कभी ध्यान में बैठा करें; हमें इन सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज़ों का त्याग करना चाहिये जिनमें हम पहले से लिप्त हैं और तेरे सभी कार्यों, तेरी सभी क्रियाओं में पूर्णरूप से तेरा साथ देना चाहिये। हमारा जीवन अभी भी पुरानी धारणाओं और विचारों से, पुराने स्वार्थों तथा तत्सम्बन्धी वस्तुओं से, पुरानी आदतों और प्रवृत्तियों से भरा हुआ है और ये सब मिलकर, हे माँ, तेरे साथ युक्त होने में हमें बड़ी बाधा प्रदान कर रहे हैं। हमें इन सबकी ओर से मुँह फेर लेना चाहिये और जो महान् कार्य, पृथ्वी पर अतिमानस सत्य को अभिव्यक्त करने का जो कार्य तू कर रही है, केवल उसी के साथ हमें तादात्म्य स्थापित करना चाहिये। हमें अपनी पूरी-की-पूरी दृष्टि केवल इस बात पर आबद्ध करनी चाहिये कि इस अभिव्यक्ति के लिये अनुकूल अवस्था उत्पन्न हो और सब बाधाएँ दूर हो जाएँ।

और हे मां! हमें अपने सभी विचारों, अनुभूतियों और कर्मों में तेरे ही आन्तरिक स्पर्श और तेरी ही प्रेरणा को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। इस तरह जब हम तुझे सब प्रकार की ज्योति, शक्ति और आनन्द का मूल समझ कर अपने अन्दर तेरे साथ युक्त होंगे और बाहर में तेरे इस महान् कार्य में योग देंगे तभी तेरे साथ हमारा एकत्व पूर्ण होगा और हम वास्तव में तेरे दिव्य आत्मा का एक अंग बन सकेंगे।

× × × ×

मां! योग का अर्थ केवल तेरा चिन्तन ही नहीं है और न तेरे चरणों में सिर टेकना ही है। अवश्य ही ये चीज़ें बहुत सहायता करती हैं और इन्हीं के द्वारा हम अपनी साधना आरम्भ करते हैं; परन्तु केवल ये ही चीज़ें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें बहुत दूर तक नहीं ले जा सकतीं। हमें अपनी सारी सत्ता को तेरी जीवित-जागृत उपस्थिति से भर देना चाहिये, हमें तेरे साथ निरन्तर सक्रिय और सर्वांगीण एकत्व बनाये रखना चाहिये, उसी एकत्व में निवास करना चाहिये और यही योग शब्द का वास्तविक अर्थ है।

हमारे अन्दर जान में या अनजान में, इच्छा से या अनिच्छा से ऐसी कोई क्रिया नहीं होती जिसे हमारी सत्ता का कोई-न-कोई भाग अनुमति, सज्ञान अनुमति न देता हो। हमें सदा तेरी ज्योति प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये; सजग होकर अपने अन्दर की व्यर्थ, अज्ञानोचित क्रियाओं को ढूँढ निकालना चाहिये और दृढ़ता के साथ उनसे अपनी अनुमति हटा लेनी चाहिये तथा सच्चे दिल से उन्हें निकाल बाहर करने के लिये तेरी शक्ति का आवाहन करना चाहिये। यही यौगिक साधना की सच्ची प्रक्रिया है।

इसके बाद हमें यह जानने का प्रयास करना चाहिये कि इस संसार में तेरी क्या इच्छा है और फिर सचाई के साथ तेरी सेवा में अपने आपको लगा देना चाहिये और उसमें सदा तेरी ही प्रेरणा तथा पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। हमें केवल उसी विशुद्ध आनन्द में डूबे रहना चाहिये जो तेरे प्रति सच्ची प्रीति और भक्ति रखने से उत्पन्न होता है। उस दिव्य आनन्द का आस्वादन करने के लिये ऊपर से स्वयं देवगण हमारे अन्दर उतर आवेंगे और दिव्य जीवन प्राप्त करने में हमें सहायता प्रदान करेंगे। यही योग-प्रणाली है जो हमें अवश्य ही सर्वोच्च सिद्धि प्रदान करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द-निकेतन

श्रीअरविन्द के कार्य में रुचि रखने वाले सज्जनों क यह समाचार प्रसन्नता-दायक होगा कि यहाँ देहली के पास 'श्रीअरविन्द-निकेतन' नाम की एक छोटी सी संस्था स्थापित हुई है। यह 'अदिति' नामक पुस्तिका या पत्रिका (Bulletin) इसी श्रीअरविन्द-निकेतन की तरफ़ से प्रकाशित की जा रही है, इस निकेतन की तरफ़ से होने वाली प्रवृत्तियों में से यह एक है। इसलिए इस निकेतन का कुछ परिचय पाठकों को देना उचित होगा।

स्थान

यह अभी बिल्कुल प्रारम्भिक रूप में है। इसको भौतिक रूप देने में मुख्य हाथ देहली के एक व्यापारी सज्जन श्री सुरेन्द्रनाथजी जौहर का है। वे अभी तक कांग्रेस के भी मुख्य कार्यकर्त्ता रहे हैं, पर पिछले तीन वर्षों से वे धीरे २ श्रीअरविन्द की तरफ़ आकृष्ट हो रहे थे, इस बीच में वे चार पांच बार दर्शन के लिए पांडिचेरी भी जा चुके हैं और अब उन्होंने अपने आपको श्री-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरविन्द के कार्य के लिए सौंप दिया है। उनकी जो एक कोठी और जमीन देहली से करीब सात मील दूर कुतुब-मीनार के पास अधचिनी ग्राम के पड़ोस में है वही श्री अरविन्द-निकेतन का मुख्य स्थान है। और इस संस्था का देहली शहर में प्रतिनिधित्व करने वाला जो केन्द्र है वह नई देहली के कनाट-सर्कस में 'स्टेट्समैन' के दफ्तर के सामने, 'हिन्दुस्तान' के कार्यालय के पास, एस० एन० संडरसन कम्पनी से संबद्ध है। यह कम्पनी भी श्री सुरेन्द्रनाथ जी की है। यहीं का डाक का संक्षिप्त पता 'डाकपेटी ८५' है। यहां एक विभाग पूरी तरह 'श्रीअरविन्द-निकेतन' का है। इसी में शहर से संबन्ध रखने वाले श्रीअरविन्द -निकेतन के उपविभाग हैं। यह सब तो स्थान के बारे में हुआ।

१ साहित्य-प्रकाशन

इस श्रीअरविन्द-निकेतन द्वारा पाँच प्रकार का कार्य जारी करने का बिचार है। उनका कुछ-कुछ प्रारम्भ भी हो गया है। इनमें पहिला कार्य है हिन्दी में श्रीअरविन्द -साहित्य का प्रकाशन। अभी तक प्रकाशित हुई श्रीअरविन्द की हिन्दी पुस्तकें मुख्यतया मद्रास में दक्षिण हिन्दी-प्रचार-मुद्रणालय में छपी हैं। इन सबके प्रकाशन में श्रीमान् मदनगोपालजी गाडोदिया ने जो अब पांडिचेरी में रहते हैं बहुत परिश्रम, त्याग और सेवा की है। उनकी इच्छा से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अब वह कार्य यहाँ उत्तर भारत में, देहली में इस श्रीअरविन्द निकेतन द्वारा होगा। वहाँ का पुस्तक-भण्डार सब धीरे-धीरे यहीं आ जायगा। आगे की पुस्तकें अब यहीं से छपेंगी और प्रकाशित होंगी।

२ अदिति

इसके साथ ही यहाँ से अदिति पत्रिका का प्रकाशन होगा, जो कि साधारण पत्रिका (Bulletin) या पुस्तिका रूप में प्रारम्भ हो गया है। विचार तो यह था और है कि अवस्थाओं के अनुकूल हो जाने पर यह मासिक रूप में प्रकाशित हो। परन्तु आजकल की काग़ज़ आदि की कठिनाई के कारण उस विचार को अभी स्थगित रखना पड़ा है। अतः अभी हम वर्ष में चार बार श्रीअरविंद के दर्शन के अवसरों पर—अर्थात् २१ फर्वरी, २४ अप्रैल, १५ अगस्त तथा २४ नवम्बर को—एक प्रकार से त्रैमासिक के से रूप में अदिति की पत्रिकायें पाठकों को भेंट किया करेंगे, जैसे कि पहली यह पत्रिका की जा रही है। यह विचार हमें बंगाल में जो श्रीअरविंद-कार्य एक समुदाय द्वारा किया जा रहा है वहाँ से सूझा है। वहाँ 'श्रीअरविंद-पाठमन्दिर' नाम से एक छोटा सा संगठन है। वे भी कोई मासिक या त्रैमासिक पत्र न निकालकर श्रीअरविंद पाठमन्दिर की वर्त्तिकायें (Bulletins) निकालते हैं। हम यहाँ इस मन्दिर के सञ्चालकों का, तथा विशेषतया इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख श्रीमान्य चारुचन्द्रदत्त जी का हार्दिक धन्यवाद भी करते हैं कि उन्होंने अपनी इन 'वर्त्तिकाओं' में से लेखों को 'अदिति' के लिए अनुवाद कर लेने की अनुमति प्रदान करदी है। फलतः इस अंक में भी पाठक श्री हरिदास चौधरी का 'मां' नामक उत्तम लेख पढ़ेंगे।

इस तरह मासिक के स्थान पर पुस्तिका या पत्रिका (Bulletin) के रूप में निकालने से डाक का खर्च तो काफ़ी ज्यादा होगा, पर अभी यह मजबूरी है। अवस्थायें अनुकूल होते ही हम इसे बाक़ायदा पत्रिका (त्रैमासिक या मासिक) का रूप दे देने का विचार रखते हैं।

३ साहित्य-विक्रय

श्रीअरविंद के हिन्दी-साहित्य का तथा इन अदिति पत्रिकाओं का प्रकाशन ही नहीं किन्तु इनका विक्रय केन्द्र भी यहाँ रहेगा। और केवल हिन्दी का साहित्य ही नहीं किन्तु श्रीअरविंद सम्बन्धी सब भाषाओं का—अंग्रेजी, बंगला, गुजराती आदि सभी भाषाओं का साहित्य यहाँ इस श्रीअरविन्द-निकेतन में विक्रयार्थ उपस्थित रहेगा। यह कार्य भी कुछ प्रारम्भ हो गया है। हिन्दी, अंग्रेज़ी, बंगला की काफ़ी पुस्तकें विक्रयार्थ निकेतन में पहुंच चुकी हैं। यह विक्रय-विभाग शहर के केन्द्र में कनाट सर्कस के श्रीअरविंद-निकेतन में स्थापित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ अध्ययनमण्डल तथा वाचनालय

इसके अतिरिक्त यह सोचा गया है कि श्रीअरविन्द के साहित्य को पढ़ने, पढ़ाने और समझाने का भी कुछ प्रबन्ध हो सके। इसके लिये श्रीअरविन्द-निकेतन में अध्ययन मण्डल (Study circle) तथा वाचनालय खोलने का भी आयोजन लगभग पूरा हो चुका है। अध्ययन-मण्डल का प्रारम्भ इस रूप में हो चुका है कि श्री डा० इन्द्रसेन जी ने अभी दरियागञ्ज में अपने घर पर ही श्रीअरविन्द के साहित्य का एक अध्ययन-मण्डल प्रारम्भ किया है जिसमें वे प्रति सप्ताह दो बार—बृहस्पति तथा रविवार को रात्रि के ८॥ से ६॥ तक—श्रीअरविन्द की पुस्तकों का आगन्तुकों को अध्ययन कराते हैं। पर श्रीअरविन्द वाचनालय तो कनाट सर्कस के श्रीअरविन्द-निकेतन केन्द्र में ही सामान्य रूप से चालू हो गया है। श्रीअरविन्दसाहित्य की एक एक प्रति रख दी गई है और जो भाई चाहें सायं ७ से ६ बजे के बीच में वहाँ जाकर वाचन कर सकते हैं।

५ आध्यात्मिक जीवन में सहायता

पाँचवाँ कार्य है श्रीअरविन्द की योगपद्धति के अनुसार जो लोग अपना जीवन व्यतीत करना चाहें उन्हें उसमें सहायता पहुँचा सकना। यह कार्य अभी प्रारम्भ होने को है। कुछ महीनों बाद, सम्भवतः मई-जून मास से, श्रीअरविन्द-निकेतन में साधना करना चाहने वालों के रहने आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की व्यवस्था की जा सकेगी ऐसी आशा है। यह व्यवस्था मुख्य श्रीअरविन्द-निकेतन में जो कि देहली से ७ मील दूर कुतुब मीनार के पास है की जायगी। यहाँ पर रहने वाले भाई परस्पर सत्संग, स्वाध्याय करते हुए, आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए कुछ क्रियात्मक अनुभव पाकर श्रीअरविन्द के महान् योग के लिये तैयार हो सकेंगे। ऐसी तैय्यारी के लिये सब अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करना ही इस निकेतन का प्रयत्न होगा। अथवा यूँ कहना चाहिए कि श्रीअरविन्द के कार्य के लिये इधर उत्तर भारत की तरफ़ जो एक केन्द्र का अभाव कुछ काल से बहुत से लोगों को अनुभव हो रहा था, उसीकी अंशतः पूर्त्ति के लिये यह एक प्रयत्न है। अस्तु।

अभी इन पाँच कार्यों को सम्मुख रख कर श्रीअरविन्द-निकेतन स्थापित हो रहा है। इस पवित्र संस्था की स्थापना का समाचार पाठकों को सुनाते हुए हम नम्रभाव से परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे समर्पित भाव से किये जाने वाले हमारे इन प्रयत्नों में सदा सहायक हों। आशा है पाठक भी प्रभु से की गई हमारी इस प्रार्थना में सम्मिलित होंगे।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अदिति' नाम

कई मित्रों ने पूछा है कि 'अदिति का क्या मतलब है, यह नाम क्यों रखा है ?' अन्यों को भी ऐसी जिज्ञासा होना स्वाभाविक है, क्योंकि यह वस्तुतः साधारण हिन्दी भाषा में अप्रसिद्ध शब्द है। असल में यह एक वैदिक शब्द है। हम यह सूचित कर चुके हैं कि पत्रिका का यह वैदिक नाम स्वयं श्रीअरविन्द का पसन्द किया हुआ है। लौकिक संस्कृत में 'अदिति' का अर्थ 'देवमाता' होता है। बस, 'अदिति' का अर्थ 'देवजननी' है इतना समझ लेना ही इस नाम के सौन्दर्य का आनन्द लेने को काफ़ी है। अदिति 'दिति' से उलटा है। 'दिति' राक्षसों की, असुरों की माता है। इसी लिये 'दैत्य' (दिति के पुत्र) राक्षसों का नाम है। 'अदिति' के पुत्र आदित्य होते हैं, सूर्य आदि देवता होते हैं। सो 'अदिति' देवों को उत्पन्न करने वाली देवजननी माता का नाम है।

श्रीअरविन्द के समष्टिगत और व्यष्टिगत योग का ध्येय देवजाति उत्पन्न करना, मनुष्य को देव बनाना है, यह हमारे पाठकों से अब छिपा न होगा। तो हम यह भी दृष्टि में ला सकते हैं कि यह भगवान् की शक्ति, भगवती आद्या शक्ति, देवजननी अदिति माता की ही कृपा और शक्ति है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे कि श्रीअरविन्द द्वारा देखा गया दिव्य जगत् की उत्पत्ति का महान् कार्य पूरा होना है। तो श्रीअरविन्द के सन्देश को सुनाने वाली पत्रिका का 'अदिति' से अधिक सुन्दर, सार्थक और समंजस नाम और क्या हो सकता था।

इस प्रकरण में बस केवल एक और बात की तरफ़ पाठकों का ध्यान खींच कर इस विषय को अभी हम समाप्त करते हैं। क्योंकि इस पत्रिका के आदर्श-मन्त्र-भूत

'अनागसो अदितये स्याम'

इस वेद वचन पर हम अगली बार पाठकों की सेवा में अपना एक लेख प्रस्तुत करने वाले हैं जिसके लिये कि इस पत्रिका में गुञ्जायश नहीं रही है। तब अदिति शब्द की कुछ और सूक्ष्मता में जाकर भी व्याख्या हो जायगी। पर इतना संक्षेप रूप से अभी कह सकते हैं कि 'दिति' शब्द संस्कृत में जिस धातु से बना है उसका अर्थ है 'टुकड़े करना, खण्ड खण्ड करना, काटना'। सो यह हमारा वर्तमान अदिव्य, अविद्यायुक्त संसार, अधिक से अधिक खण्डित मानसिक प्रकाश से ही प्रकाशयुक्त होने वाला यह हमारा संसार, जिसमें हम प्रत्येक वस्तु को टुकड़े-टुकड़े, खण्डित, सीमित, परिमित रूप में ही देख पाते हैं दिति का संसार है। श्रीअरविन्द इसे अदिति के लिये जीतना चाहते हैं, इसे अदिति का लोक बनाना चाहते हैं, वह दिव्य, विद्यायुक्त लोक जिसमें अखण्ड, असीम दृष्टिगोचर और व्यव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारगोचर होता है, अतः जहाँ विशुद्ध असीम प्रकाश का राज्य है, जो कि मन को अतिक्रान्त कर ऊपर के अतिमानस 'विज्ञान' नामक तत्त्व की विशेषता है, और जिसको पाने की साधना ही श्रीअरविन्द की सब साधना है। यह अखण्डता, असीमता, अपरिमितताखपिणी विज्ञानमयी अदिति माता ही है जो कि दिव्यत्व को जन्म दे सकती है। अखण्ड, असीमस्वभावा इस अदिति माता का राज्य हो जाने पर ही इस पृथ्वी का दुःख, दारिद्र्य, शोक-मोह, क्लेश, भय, मरण-त्रास से वास्तविक त्राण हो सकता है। और कोई जगत् के दुःख-पाप को दूर कर सकने का आत्यन्तिक सच्चा उपाय नहीं है। इसीलिये हम 'अदिति' माता की उपासना करते हैं।

मुखपृष्ठ पर जो 'अदिति' माता का चित्र दिया हुआ है उसमें यही चित्रित है कि अदिति माता अपनी पुनीत उपस्थिति द्वारा जगत् के मनुष्यों को अभयवर प्रदान कर रही हैं। यह चित्र श्रीअरविन्द-आश्रम के एक कलाकर साधक का बनाया हुआ है।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों का परिचय

१ श्री नलिनीकान्त जी—

आप श्रीअरविन्द के पहले के, वंग-भंग समय से, सहयोगी हैं; आज श्रीअरविन्द के योगाश्रम के मन्त्री और श्रीअरविन्द के 'निजीमन्त्री' भी हैं। प्रथमवार ही आपके किसी लेख को जिसने पढ़ा है वह आपकी उच्च विचारशीलता तथा सुलेखकता से प्रभावित हो जाता है। आपकी कई उत्तम पुस्तकें जैसे The coming Race, Towards The Light अंग्रेज़ी में भी प्रकाशित हुई हैं जो कि श्रीअरविन्द-साहित्य में उच्च कोटि की हैं। बंगला में तो आपके लेखों की प्यास सी रहती है और बंगला साहित्य को आपके ने लेखों धनी किया है—यह कहना अत्युक्ति नहीं है।

इस पत्रिका में श्रीनलिनीकान्त जी का जो लेख छपा है उसका मुख्य अंश गत ७ दिसम्बर को देहली के अखिल भारतीय रेडियो से श्री डा० इन्द्रसेन जी द्वारा उद्घोषित भी किया गया था।

आशा है आपके लेखों का रसास्वादन हम पाठकों को निरन्तर करा सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ श्री हरिदास चौधरी—

आप कलकत्ते के समीप चिटागांग कालेज में दर्शन (फ़िलासफ़ी) के प्रोफेस्सर हैं। एम० ए० हैं। श्रीअरविन्द के दर्शन के आप माने हुए मर्मज्ञ तथा उसके कुशल व्याख्याकार हैं। आपके लेख आकर्षक और प्रभावोत्पादक होते हैं।

३ डा० इन्द्रसेन जी--

आप देहली के हिन्दू कालेज में दर्शन (फ़िलासफ़ी) के प्रोफेस्सर हैं। एम० ए०, पी० एच० डी० हैं। कुछ वर्षों से श्रीअरविन्द के योग से आकृष्ट होकर पांडिचेरी आश्रम से निकट सम्बन्ध प्राप्त कर चुके हैं। देहली में जो श्रीअरविन्द-निकेतन की स्थापना हुई है उसके वास्तविक प्रेरक और जन्मदाता आप ही हैं। आप इस समय इस निकेतन के मन्त्री हैं।

४ श्री अनिलवरणराय—

आप पहिले बँगाल के एक प्रसिद्ध काँग्रेस कार्यकर्त्ता रहे हैं। अब श्री अरविन्दाश्रम के एक प्रमुख साधक हैं। आप बँगला के प्रसिद्ध लेखक हैं। गीता पर आपने बहुत लिखा है, गीता के तो आप विशेषज्ञ कहे जा सकते हैं। अँग्रेज़ी में आपकी Songs from the soul तथा Message of the Gita प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द की हिन्दी पुस्तकों की सूची

श्रीअरविन्द और उनका योग	...	मूल्य ।
योगप्रदीप	...	,, ।
इस जगत् की पहेली	...	,, ॥
माता	...	,, ।
योग के आधार	...	,,
हमारा योग और उसके उद्देश्य	...	,, ।
गीता-प्रबन्ध (प्रथम भाग)	...	,,

इसके अतिरिक्त श्रीअरविन्द की अंग्रेज़ी, बंगला औ भाषाओं की सब पुस्तकें भी यहाँ से मिल सकती हैं।

मिलने का पताः—

श्रीअरविन्द-निकेतन

एस० एन० संडरसन के साथ

डाकपेटी ८५

कनाट सर्कस

नयी देहली।

प्रकाशक और मुद्रक श्री डा० इन्द्रसेन जी मंत्री श्रीअरविन्द-निकेत
द्वारा रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, २३, दरियागंज, दिल्ली में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

श्री पं॰ अमरनाथ जी लघू
की सेवा में।

अदिति

अनागसो अदितये स्याम

—वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

(देवजननी)

सम्पादक

आचार्य अभयदेवजी विद्यालंकार

प्रकाशक

श्रीअरविन्द निकेतन

कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

मूल्य सवा रुपया

वर्ष-भर की चारों पुस्तिकाओं का मूल्य चार रुपया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४ एप्रिल १९४३ के
श्रीअरविन्द दर्शन
के उपलक्ष में
भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

मातृ-वचनामृत		
१. प्रार्थना व ध्यान ...		५
२ 'मातृवाणी' का एक अध्याय ...		७
श्रीअरविन्द-वाणी		
१. श्रीअरविन्द के सूत्र-वचन		
(३) मनुष्य अर्थात 'पुरुष'	श्रीअरविन्द	१६
(४) अन्त.	"	१८
२. स्वप्न	"	१६
३. वर्तमान युद्ध पर श्रीअरविन्द के विचार	"	२८
हमारा आदर्श	श्री नलिनीकान्त गुप्त	३०
वह भूख	श्री लीलावती	३८
मां	श्री हरिदास चौधरी	४१
जगत् मिथ्या ?	श्री दीनानाथ 'दिनेश'	५४
मनोविज्ञान और योग	श्री डा० इन्द्रसेन	५५
अनागसो अदितये स्याम	श्री आचार्य अभयदेव	६५
लेखकों का परिचय	"	६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृ-वचनामृत—

प्रार्थना व ध्यान

[श्रीमाता जी बहुत वर्षों से अपनी दिनचर्या पुस्तक में प्रार्थनाएं तथा ध्यान विचार लिखती रही हैं। ये बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, अद्भुत हैं, आत्मा को एकदम ऊँचा उठाने वाले हैं। मूलत: ये फ्रेंच में हैं। इनमें से कुछ का अंग्रेज़ी अनुवाद भी हुवा है। प्रत्येक बार हम उनमें से एक प्रार्थना का श्री चन्द्रदीपजी का किया हुवा मूल से हिन्दी अनुवाद 'प्रार्थना व ध्यान' इस शीर्षक से अदिति के पाठकों को भेंट किया करेंगे। संपादक]

ज्यों ही मैं अपने-आपको सभी सांसारिक दायित्वों से अलग कर लेती हूँ त्योंही इन सब चीज़ों से संबंध रखने वाले सभी विचार मुझसे कोसों दूर भाग जाते हैं और मैं एकनिष्ठ होकर तेरे अन्दर डूब जाती हूँ, तेरी सेवा में पूर्ण रूप से तल्लीन हो जाती हूँ। और तब पूर्ण शान्ति और निस्तब्धता के अन्दर-मैं अपनी इच्छा को तेरी इच्छा के साथ एक कर देती हूँ, और उस सर्वांगपूर्ण निश्चल-नीरवता के भीतर मैं तेरे सत्य को प्रकट करने वाली वाणी को सुनती हूँ।

तेरी दिव्य इच्छा के विषय में सज्ञान होने तथा तेरी इच्छा के साथ अपनी इच्छा को एकाकार कर देने से ही हम सच्ची स्वतंत्रता और सर्वशक्तिमत्ता के रहस्य का पता पा सकते हैं; अपनी शक्तियों को पुनः जागरित करने और अपनी सत्ता को रूपान्तरित करने के रहस्य को जान सकते हैं।

तेरे साथ निरन्तर सर्वांगीण एकता बनाये रखना ही इस विषय में एकदम निश्चित हो जाना है कि हम सारी बाधाओं को पार कर जायेंगे, बाहरी और भीतरी सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

प्रभु! हे प्रभु! असीम आनन्द मेरे हृदय में भर रहा है, आनन्द-गान की अद्भुत तरंगें मेरे मस्तक में लहरा रही हैं और तेरी ध्रुव विजय में पूर्ण विश्वास होने के कारण मैं चरम शान्ति और अजेय शक्ति प्राप्त कर रही हूँ। तू मेरी सत्ता के अन्दर ओत-प्रोत होकर विराजमान है, तू इसे संजीवित कर रहा है, इसके प्रसुप्त शक्ति-स्रोतों को गतिशील बना रहा है, इसकी बुद्धि को आलोकित कर रहा है, इसके जीवन को तीव्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदान कर रहा है, इसके प्रेम को दस गुना बढ़ा रहा है, और अब मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि मैं यह विश्व हूँ या यह विश्व 'मैं' है, तू मेरे अन्दर है या मैं तेरे अन्दर हूँ। एक मात्र तू ही विद्यमान है और सब कुछ 'तू' है; और तेरी अनन्त कृपा की लहरें जगत् में भर रही हैं, जगत् को डुबा रही हैं।

गाओ, गाओ, सब देश, सब समाज, सब मनुष्य, गाओ,
भागवत सामंजस्य विद्यमान है, गाओ।

११ मई १९१२

— मूल फ्रेंच से अनूदित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मातृवाणी' का एक अध्याय

क्या योगी सब प्रश्नों का उत्तर दे सकता है ?—विज्ञानमय अवस्था तक पहुंच—शारीरिक परिवर्त्तन के लिये ध्यान या एकाग्रता—ध्यान द्वारा सफलता पाने की शर्तें

प्र०—"क्या योगी चेतना की किसी ऐसी अवस्था को प्राप्त हो सकता है, जिस अवस्था में पहुँचकर वह सब कुछ जान सके, समस्त प्रश्नों का, यहां तक कि सायंस की कठिन समस्याओं का, जैसे कि 'सापेक्षता-वाद' के विषय में भी, उत्तर दे सके ?"

उ०—विचारात्मक रूप से और सिद्धान्ततः यह ठीक है कि योगी के लिये सब कुछ जान लेना असम्भव नहीं है, पर सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि, वह योगी कौन है।

ज्ञान ज्ञान में भेद होता है। मन जिस तरीके से जानकारी लाभ करता है, योगी का ज्ञान वैसा नहीं होता। योगी यदि सब कुछ जानता है, तो उसका कारण यह नहीं कि वह यह सब इसलिये जान पाता है चूँकि हरेक संभावित खबर के अन्दर उसका प्रवेश होता है, या चूँकि उसके मन के अन्दर विश्व के समस्त तथ्य भरे पड़े होते हैं, या चूंकि उसकी चेतना किसी अद्भुत विश्वकोष के जैसी होती है। वह जान पाता है वस्तुओं, व्यक्तियों और शक्तियों के साथ उसकी जो धारणात्मक रूप से या सक्रिय रूप से तादात्म्य हो जाने की क्षमता होती है, उसके कारण। अथवा वह इसलिये जान पाता है कि वह चेतना की एक ऐसी भूमिका में रहता है या एक ऐसी चेतना के संस्पर्श में होता है, जिसमें सत्य और ज्ञान स्थित है।

यदि तुम सत्य चेतना में होओ, तो तुम्हें मिलनेवाला ज्ञान भी सत्य का ज्ञान ही होगा। इस अवस्था में भी ज्ञेय के साथ अपने को एक करके ही तुम उसके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकते हो। यदि तुम्हारे सामने कोई समस्या उपस्थित की जाय, यदि तुमसे यह पूछा जाय कि, अमुक अवसर-विशेष पर क्या करना चाहिये, तो तुम उस विषय पर पर्याप्त ध्यान देकर और एकाग्र होकर उस विषय के आवश्यक ज्ञान और सत्य उत्तर को अनायास प्राप्त कर सकते हो। इस ज्ञान को तुम किसी सिद्धान्त का यत्नपूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोग करके अथवा उसे किसी मनोमय प्रक्रियाद्वारा कार्यान्वित करके प्राप्त नहीं करते। इन पद्धतियों की आवश्यकता तो भौतिक विज्ञानवादी (Scientific) मन को ही अपने निर्णयों तक पहुंचने के लिये होती है। परन्तु योगी का ज्ञान तो सीधा और तत्त्वण होता है, वह निगमनात्मक नहीं होता। यदि किसी इंजीनियर को एक मेहराब बनानी हो, तो वह उसके ठीक-ठीक स्थान को, उसकी गोलाई की रेखा और उसके पोले स्थान के कद को नाप-जोखकर ठीक करता है, इस विषय को वह अपनी भौतिक विद्या की सामग्री को मिला-जुलाकर ठीक करता है। परन्तु योगी को इस तरह की किसी चीज़ की जरूरत नहीं होती ; वह तो उस वस्तु की तरफ़ दृष्टि डालता है, अपनी दिव्य दृष्टि से उसके स्वरूप को ग्रहण करता है और वह देख पाता है कि इस चीज़ को इस प्रकार से करना होगा, केवल इसी प्रकार से करना होगा और किसी दूसरे प्रकार से नहीं, और उसका यह देखना ही उसका ज्ञान होता है।

यद्यपि सामान्यतया और किसी अर्थ में यह ठीक है कि, योगी अपनी दृष्टि और चेतना के क्षेत्र में से सभी बातों को जान सकता और सभी प्रश्नों का उत्तर दे सकता है, फिर भी इसका मतलब यह नहीं कि कोई भी प्रश्न ऐसे नहीं होते, जिनका उत्तर देना योगी के लिये कठिन न हो, फिर ऐसे भी प्रश्न हो सकते हैं, जिनका उत्तर देना वह चाहे ही नहीं। जिस योगी को प्रत्यक्ष ज्ञान, वस्तुओं के सच्चे सत्य का ज्ञान प्राप्त है, वह उन प्रश्नों का, जो सर्वांशतः मानव मन की ही रचनाओं की कोटि के होते हैं, उत्तर देने की परवाह नहीं करेगा, शायद उसे ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में कठिनाई भी हो। यह हो सकता है कि वह वस्तुओं के केवल मिथ्या और बाह्य स्वरूप से सम्बन्ध रखनेवाली तुम्हारी समस्याओं और कठिनाइयों का हल करना न चाहे या न कर सके। उसके ज्ञान की क्रिया मन में नहीं होती और यदि तुम उसके सामने उपर्युक्त प्रकार का कोई फूहड़ मानसिक प्रश्न करो, तो शायद वह उसका उत्तर ही न दे। यह जो आम धारणा है कि जिस प्रकार ऊँचे दर्जे के किसी स्कूल-मास्टर से प्रश्न किया जाता है, उसी प्रकार किसी योगी से भी तुम जो कोई अज्ञानयुक्त प्रश्न कर सकते अथवा भूत, वर्तमान और भविष्य काल के किसी भी समाचार को पूछ सकते हो और वह इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये बाध्य है, यह एक मूर्खतापूर्ण विचार है। यह बात उतनी ही बेढंगी है, जितनी कि किसी आध्यात्मिक पुरुष से यह आशा रखना कि वह कोई ऐसे असाधारण पराक्रम या चमत्कार करके दिखावे, जिनसे साधारण असंस्कृत और बहिर्मुख मन को सन्तुष्टि मिलती और वह आश्चर्यचकित रह जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त "योगी" शब्द बहुत ही अस्पष्ट और व्यापक है। योगी बहुत तरह के होते हैं, आध्यात्मिक अथवा गुह्य तत्त्वों की साधना की अनेक धाराएं और दिशाएं हैं, और फिर इन साधनों द्वारा प्राप्त होनेवाली चढ़ती-उतरती अनेक प्रकार की सिद्धियां हैं। कुछ योगी ऐसे हैं, जिनकी शक्तियां मानसिक भूमिका से ऊपर नहीं होतीं, दूसरे ऐसे हैं जो इस भूमिका से ऊपर उठे हैं। सब कुछ उनकी साधना की भूमिका या उसके स्वभाव पर, जिस ऊंचाई तक वे पहुंचे हैं, उस पर तथा जिस चेतना का स्पर्श उन्हें मिला है अथवा जिस चेतना में उन्होंने प्रवेश किया है, उस पर निर्भर करता है।

प्र०—"क्या यह ठीक नहीं है कि जड़वैज्ञानिक (Scientist) भी कभी-कभी मनोमय भूमिका से परे जाते हैं ? ऐसा कहा जाता है कि आइनस्टाइन ने 'सापेक्षता के वाद' का आविष्कार किसी तर्क की प्रक्रिया द्वारा नहीं किया था, बल्कि यह वाद उन्हें एक सद्यः प्रेरणा के रूप में प्राप्त हुआ था। क्या इस प्रेरणा का विज्ञान (Supermind) से कोई सम्बन्ध था ?"

उ०—जड़विज्ञान की खोज करनेवाले जिस किसी व्यक्ति को इस तरह की कोई प्रेरणा होती है, जिसके फलस्वरूप वह किसी नवीन सत्य का दर्शन करता है, तो वह उसको अन्तर्ज्ञान देनेवाले मनकी भूमिका से होती है। इस तरह का ज्ञान तब मिलता है जब कि उसका उस उच्चतर मनोमय भूमिका के साथ जो कि और भी अधिक ऊपर की ज्योति द्वारा प्रकाशमान होती है, सीधा सम्बन्ध हो जाता है और वहां से उसको प्रेरणा मिलने लगती है। परन्तु इस सबसे विज्ञान की क्रिया का कोई सम्बन्ध नहीं है और यह उच्चतर मनोमय भूमिका विज्ञानमय भूमिका से कोसों दूर है। औसत अवस्था से ज़रा ऊपर उठते ही मनुष्य बड़ी जल्दी यह विश्वास करने लग जाते हैं कि वे पूर्ण भागवत क्षेत्रों में पहुँच गये। साधारण मानव मन और विज्ञान के बीच अनेक अवस्थाएं, अनेक स्तर और अनेक भूमिकाएं हैं। यदि कोई साधारण कोटि का आदमी इन मध्यवर्ती भूमिकाओं में से किसी एक के भी सीधे सम्पर्क में आ जाय, तो वह चौंधिया जायगा और उसकी आँखें वहां के प्रकाश में अन्धी हो जायंगी, वह वहां की विशालता के भान के बोझ के नीचे कुचल-सा जायगा अथवा अपने संतुलन को गंवा देगा, और फिर भी वह अभी तक विज्ञान-लोक से दूर ही होगा।

योगी सभी बातों को जान सकता है और सभी प्रश्नों का उत्तर दे सकता है, इस साधारण धारणा के पीछे जो असली तथ्य है वह यह है कि, मन के अन्दर एक ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तर है जहां समस्त वस्तुओं की स्मृति संगृहीत हुई रहती है और वह सदा विद्यमान रहती है। पार्थिव जीवन में होने वाली समस्त मानसिक क्रियाएं इस स्तर में स्मृतिगत और अंकित की जाती हैं। जिन लोगों में वहाँ तक पहुँचने की क्षमता है और जो वहाँ तक जाने का कष्ट उठाना चाहते हैं, वे वहाँ के बहीखातों में दर्ज किसी भी चीज को बाँच और जान सकते हैं। परन्तु इस क्षेत्र को विज्ञानमय भूमिका समझ लेने की भूल नहीं करनी चाहिये। और फिर भी यहाँ तक पहुँचने के लिये भी तुम्हें अपने स्थूल या भौतिक मन को निश्चित और नीरव कर लेना होगा; तुम्हें इस योग्य बन जाना होगा कि तुम अपने समस्त संवेदनों को एक किनारे रख सको और अपनी साधारण मनोमय क्रियाओं को, फिर चाहे वे कैसी भी क्यों न हों, बंद कर सको, तुम्हें अपने प्राण के दायरे से बाहर निकल आना होगा; तुम्हें अपने शरीर की गुलामी से मुक्त हो जाना होगा। ऐसा होने पर ही तुम इस क्षेत्र में प्रवेश पा सकोगे, तथा वहाँ जो कुछ है, उसको देख सकोगे। पर यदि तुम इस प्रयास को करने के लिये पर्याप्त दिलचस्पी रखते हो, तो तुम वहाँ पहुँच सकते हो और पृथ्वी की स्मृति में जो कुछ लिखा हुआ है उसे बांच सकते हो।

इस प्रकार यदि तुम अपने अंदर की गहराई में उतरो और वहाँ की निश्चल-नीरवता में पहुंच जाओ, तो तुम चेतना की एक ऐसी भूमिका को प्राप्त कर ले सकते हो, जहां पर तुम्हारे लिये यह असंभव नहीं है कि तुम अपने सभी प्रश्नों का उत्तर पा लो। और यदि कोई व्यक्ति ऐसा है जो विज्ञानलोक के पूर्ण सत्य के प्रति सचेतन रूप से उद्घाटित हो, उसके साथ उसका सतत संपर्क हो, तो वह निश्चय ही ऐसे किसी भी सवाल का उत्तर दे सकता है, जो विज्ञानलोक के प्रकाश से उत्तर दिये जाने लायक हो। ऐसे व्यक्ति से किया जाने वाला प्रश्न अवश्य ही इस तरह का होना चाहिये कि वह वस्तुओं के पीछे जो सत्य और सद्वस्तु है, उससे सम्बन्ध रखता हो। बहुत से प्रश्न और विवादग्रस्त समस्याएं ऐसी होती हैं, जिनको मन मकड़ी के जाले की तरह बुनकर तैयार करता है और वे वस्तुओं के मिथ्या पार्श्व से ही सम्बन्ध रखती हैं। इनका वास्तविक ज्ञान से संबंध नहीं होता, ये तो ज्ञान की एक विकृति मात्र होती हैं, उनका सब ताना बाना ही अज्ञान का होता है। अवश्य ही मन के अज्ञान द्वारा उपस्थित की हुई समस्याओं का भी उत्तर विज्ञानमय ज्ञान दे सकता है, पर यह उत्तर उसका अपना उत्तर होगा और बहुत संभव है कि, मन की भूमिका से प्रश्न करने वाले व्यक्तियों को यह ज़रा भी संतुष्ट न कर सके अथवा यह भी हो सकता है कि, यह उनकी समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही न आवे। मन की तरह ही विज्ञान भी काम करे, ऐसी तुम्हें आशा नहीं करनी चाहिये और न तुम्हारी यह मांग ही होनी चाहिये कि सत्य चेतना में रहने वाले ज्ञान को इस योग्य होना चाहिये कि उसे अज्ञान में रहने वाले अर्धज्ञान के साथ टांका जा सके। मन की आयोजना एक बात है, लेकिन विज्ञान बिलकुल दूसरी ही बात है और यदि वह मानसिक आयोजना की मांग के अनुसार अपने-आपको बना ले, तो उसकी विज्ञानमयता ही जाती रहे। ये दोनों इतने भिन्न हैं कि ये एक ही माप से मापे जाने के लायक नहीं हैं और ये दोनों एक साथ नहीं रखे जा सकते।

प्र०—"चेतना जब विज्ञान के आनन्द को प्राप्त हो जाती है, तब क्या वह मन के व्यापारों में दिलचस्पी लेना बंद कर देती है?"

उ०—मानसिक व्यापारों में विज्ञान उसी प्रकार से दिलचस्पी नहीं लेता जैसा कि मन लेता है। विश्व की समस्त गतियों में ही उसके अपने ढंग की दिलचस्पी होती है, किंतु यह एक भिन्न दृष्टिबिंदु से होती है और एक भिन्न चक्षु द्वारा होती है। उसकी दृष्टि के सम्मुख जगत् का रूप बिलकुल दूसरे ही प्रकार का दीखने लगता है। यहाँ पर दृष्टिकोण पलट जाता है और इस भूमिका पर से सभी चीजें जैसी कि मन से नज़र आया करती हैं, उससे दूसरे ही प्रकार की, बल्कि बहुधा बिलकुल उससे विपरीत तक नज़र आती हैं। यहाँ पर वस्तुओं का अर्थ ही बदल जाता है; उनका पहलू, उनकी हलचल और प्रक्रिया, उनके विषय का सभी कुछ दूसरी ही आँखों से देखा जाता है। यहाँ के सब कुछ के पीछे विज्ञान रहता है; मन की गतियों में, उसी प्रकार प्राण और स्थूल भौतिक गतियों में भी, इतना ही नहीं बल्कि विश्व की समस्त लीला में ही विज्ञान बहुत गहरी दिलचस्पी रखता है, किंतु उसकी वह दिलचस्पी एक दूसरे ही प्रकार की होती है। मन और विज्ञान की दिलचस्पियों के भेद को कठपुतलियों के खेल के दृष्टांत से स्पष्ट किया जा सकता है। कठपुतली के खेल में एक तो उसकी दिलचस्पी होती है, जो कठपुतलियों की बागडोर अपने हाथ में रखता है और यह जानता होता है कि इन कठपुतलियों को क्या करना है, उस इच्छा को जानता होता है जो उन्हें घुमाती है, और वह यह भी जानता होता है कि केवल उस इच्छा के अनुसार ही वे हिलडुल सकती हैं, और दूसरी उसकी दिलचस्पी होती है, जो इस खेल का दर्शक होता है, पर जो केवल क्षण-क्षण पर बदलते जाने वाली घटनाओं को ही देखता है, अन्य कुछ भी नहीं जानता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो व्यक्ति खेल का दर्शक होता है और उसके रहस्यों से अनजान होता है, उसकी खेल में घटने वाली घटनाओं के प्रति जो दिलचस्पी होती है वह अधिक तीव्र उत्सुकता-पूर्ण और आवेशमय होती है, और वह उसकी अभी तक अज्ञात नाटकीय घटनाओं को उत्तेजना पूर्ण कौतूहल के साथ देखता है, किंतु दूसरा, जिसके हाथ में खेल की बागडोर है और जो तमाशे का संचालक है स्थिर और शांत रहता है। दिलचस्पी की एक ऐसी प्रखरता या प्रगाढ़ता होती है जो अज्ञान से ही आती है और वह भ्रम के साथ जुड़ी हुई होती है और जब तुम अज्ञान से बाहर निकल आते हो, तब यह भी जाती रहती है। वस्तुओं के प्रति मानव-प्राणियों की जो दिलचस्पी होती है, उसकी स्थापना भ्रम पर होती है और यदि भ्रम हटा दिया जाय, तो फिर इस लीला में उनको कोई दिलचस्पी रहेगी ही नहीं, उन्हें यह रूखी और नीरस लगेगी। यही कारण है कि यह सब अज्ञान और भ्रम इतने दिनों तक टिका रह सका है; यह इसलिये है कि मनुष्य इसे पसन्द करते हैं और इससे तथा इसमें जो उन्हें एक विशिष्ट रस मिलता है, उससे वे चिपके रहते हैं।

प्र०—"जो कोई अपनी शारीरिक अवस्था को परिवर्तित करना, किसी रोग का निवारण करना अथवा किसी शारीरिक अपूर्णता को दूर करना चाहता हो, तो उसे क्या करना चाहिये ? क्या उसे अपने प्राप्य लक्ष्य के प्रति तन्मय हो जाना चाहिये और अपने कार्य की पूर्ति के लिये अपनी संकल्पशक्ति का प्रयोग करना चाहिये अथवा उसे केवल इस दृढ़ विश्वास में निवास करना चाहिये कि, यह सब हो ही जायगा या यह भरोसा रखना चाहिये कि, भागवत शक्ति अपने समय पर और अपने तरीके से वांछित परिणाम को ले ही आवेंगी ?"

उ०—ये सभी उस एक ही काम को करने के अनेक उपाय हैं और अवस्था-विशेष के अनुसार प्रत्येक ही फलदायक हो सकता है। तुम किस पद्धति का उपयोग कर अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त कर सकोगे यह बात इस पर निर्भर करती है कि तुमने कौनसी चेतना को विकसित किया है अथवा तुम जिन शक्तियों को कार्यक्षेत्र में उतार सकते हो, वे कौनसी हैं। तुम यह कर सकते हो कि तुम उस चेतना में रहने लगो, जहां रोग दूर हो चुका है या उसका पूर्ण परिवर्तन हो चुका है और इस प्रकार तुम्हारा जो आन्तरिक गठन बन जायगा, उसकी शक्ति द्वारा तुम यह कर सकोगे कि धीरे-धीरे तुम अपने बाह्य परिवर्तन को भी सिद्ध कर लो। अथवा यदि उस शक्ति को तुम जानते हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसका तुम्हें दर्शन हो चुका है, जो ऐसे कार्यों को सिद्ध कर सकती है, और यदि तुम्हें उस शक्ति का उपयोग करने की कुशलता प्राप्त है तो तुम उसका आवाहन कर सकते हो और जिन अंगों में उसकी क्रिया की आवश्यकता हो, वहां उसका उपयोग कर सकते हो और वह उस परिवर्तन को कार्यान्वित कर देगी। अथवा तुम यह कर सकते हो कि तुम अपनी कठिनाई को भगवान् के सामने, भागवत शक्ति में विश्वासपूर्ण भरोसा रखते हुए, उपस्थित कर दो और उनसे पूछो कि तुम्हारे रोग का इलाज क्या है।

परन्तु तुम जो कुछ भी करो, तुम किसी प्रक्रिया का उपयोग करो, फिर चाहे उस प्रक्रिया का उपयोग करने में तुम्हें बड़ा भारी कौशल या सामर्थ्य ही क्यों न प्राप्त हो गया हो, तो भी उसका जो फल होगा, उसको तो तुम्हें भगवान के हाथों में ही छोड़ देना चाहिये। सदा प्रयत्न करते रहना तुम्हारा काम है, किन्तु उस प्रयत्न के फल को देना या न देना, यह भगवान का काम है। अब यहां पर आकर तुम्हारी अपनी ताकत बन्द हो जाती है और यदि कोई परिणाम होता है, तो उसको तुम्हारी अपनी शक्ति नहीं बलिक भागवत-शक्ति लाती है। तुम्हें क्या इस बात की शंका है कि भगवान से इन सब चीजों को मांगना उचित है या नहीं। परन्तु यदि किसी नैतिक दोष को दूर करने के लिये भगवान से प्रार्थना करने में कोई बुराई नहीं है, तो फिर किसी भौतिक अशुद्धि या अपूर्णता को दूर करने के लिये भगवान् की ओर मुंह करना उससे कुछ अधिक बुरा नहीं है। परन्तु तुम जो कुछ भी मांगो, तुम्हारा जो कुछ भी प्रयास हो, उस समय भी जब कि तुम अपनी भरपूर चेष्टा कर रहे होओ, फिर चाहे इस चेष्टा में तुम ज्ञान का प्रयोग करते होओ या शक्ति का, तुम्हें यह सदा अनुभव करना चाहिये कि परिणाम भगवान् की कृपा पर निर्भर करता है। एक बार यदि तुमने इस योगमार्ग को स्वीकार कर लिया है, तो फिर तुम्हारे समस्त कार्य पूर्ण आत्म-समर्पण के भाव से होने चाहियें। तुम्हारा भाव यह होना चाहिये— "मैं अभीप्सा करता हूँ, मैं अपनी अपूर्णताओं को दूर करना चाहता हूँ, मुझ से जो कुछ हो सकता है, वह मैं करता हूँ, किन्तु इसका जो फल होगा, उसके लिये मैं अपने आपको सम्पूर्ण रूप से भगवान् के हाथों में सौंपता हूँ।"

प्र०—"यदि कोई ऐसा कहे कि 'मुझे परिणाम के विषय में निश्चय है, मैं इस बात को जानता हूँ कि जो मैं चाहता हूँ, उसे भगवान् मुझे देंगे' तो क्या इससे कोई सहायता मिलती है?"

उ०—इस बातको तुम इस रूप में ले सकते हो। तुम्हारी श्रद्धा की तीव्रता या अटलता का ही यह अर्थ हो सकता है कि भगवान् ने यह निर्धारित कर रखा है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी श्रद्धा जिसका निर्देश करती है वह अवश्य पूर्ण हो। अचल श्रद्धा भागवत संकल्प के विद्यमान होने का चिह्न होती है, जो कुछ होने वाला है, उसकी निदर्शिका होती है।

प्र०—"जिस समय कोई निश्चल-नीरव ध्यानावस्था में होता है, उस समय उसके अन्दर कौन सी शक्तियां काम कर रही होती हैं ?"

उ०—यह बात ध्यान करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करती है।

प्र०—"परन्तु क्या निश्चल-नीरव ध्यान की अवस्था में साधक अपने-आपको पूर्ण रूप से शून्य नहीं कर देता ? तब फिर कोई भी बात उस पर कैसे निर्भर कर सकती है ?"

उ०—यदि तुम अपने-आपको सम्पूर्ण रूप से शून्य भी कर डालो, तो भी इससे तुम्हारी अभीप्सा में कोई परिवर्तन नहीं होता, उसका कार्यक्षेत्र नहीं बदलता। किसी की अभीप्सा मानसिक भूमिकाओं पर अथवा प्राण के क्षेत्रों में कार्य करती होती है; किसी की अभीप्सा आध्यात्मिक होती है। जिस जाति की तुम्हारी अभीप्सा होगी, वैसी ही शक्ति उसका उत्तर देगी और उसी तरह का काम वह शक्ति आकर करेगी। ध्यान के समय अपने-आपको शून्य कर लेने से यह होता है कि तुममें एक आंतरिक निश्चल-नीरवता पैदा हो जाती है; इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हारा व्यक्तित्व अस्तित्वविहीन हो गया अथवा तुम कोई निर्जीव या जड़ वस्तु बन गये। तुमने अपने-आपको खाली करके रिक्त पात्र कर लिया, तो इसका यह मतलब हुआ कि तुमने उस वस्तु का आवाहन किया, जो आकर उस रिक्त स्थान को भर देगी; अर्थात् तुमने अपनी आंतरिक चेतना के दबाव को सिद्धि की ओर कर दिया। तो तुम्हारी चेतना के स्वभाव पर और उसका दबाव कितना है, इस पर यह निर्भर करता है कि किन शक्तियों को तुम कार्य-क्षेत्र में उतार कर ला सकोगे और यह कि वे शक्तियां तुम्हारे कार्य में सहायता पहुँचावेंगी और उसको सफल करेंगी या तुम्हारे कार्य को विफल करेंगी अथवा यह कि वे तुम्हारे कार्य में हानि करने वाली और बाधा पहुँचाने वाली तक होंगी।

जिन अवस्थाओं के अन्तर्गत तुम ध्यान करने बैठते हो, वे अनेकविध होती हैं और उन सभी अवस्थाओं का अन्दर की ओर या नीचे की ओर उतार लायी गयी शक्तियों पर तथा उनके कार्य पर प्रभाव पड़ता है। यदि तुम अकेले ध्यान करने बैठो, तो तुम्हारी आन्तर और बाह्य अवस्था ही मुख्य होगी। और यदि तुम दूसरों के साथ मिलकर ध्यान करने बैठो, तो फिर मुख्य बात होगी वहां की सार्वजनिक अवस्था। परन्तु इन दोनों ही दशाओं में अवस्थायें सदा बदलती रहेंगी और जो शक्तियां उनका उत्तर देंगी वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी भी दुबारा वे ही न होंगी। उचित रूप में की गई सम्मिलित एकाग्रता एक महान् शक्ति बन जा सकती है। ऐसी एक प्राचीन कहावत है कि "यदि एक दर्जन सच्चे मनुष्य अपने संकल्प और अभीप्सा को एक करके भगवान् को पुकारें, तो भगवान् प्रकटे बिना न रह सकेंगे।"

परन्तु उनका संकल्प एकनिष्ठ होना चाहिये, उनकी अभीप्सा सच्ची होनी चाहिये। कारण, यह हो सकता है कि इस प्रकार का प्रयास करने वाले किसी प्रकार की जड़ता के वश अथवा किसी भ्रांत या विकृत इच्छा के कारण एक हो गये हों और ऐसी अवस्था में प्राप्त होने वाले परिणाम विनाशकारी हो सकते हैं।

ध्यान के समय जो पहली और अनिवार्य आवश्यकता है, वह यह कि तुम्हारी समस्त चेतना पूर्ण और नितान्त सचाई की अवस्था में हो। यह अपरिहार्य है कि तुम अपने आपको धोखा न दो और न दूसरे के धोखे में आओ। बहुधा लोगों को कोई कामना होती है, कोई मन की पसन्द या प्राण की वासना होती है; वे चाहते हैं कि उनके ध्यान में होने वाली अनुभूति किसी विशिष्ट रूप में हो अथवा वह कुछ ऐसा मार्ग ले, जिससे उनकी भावनाओं, इच्छाओं और पसन्दों को सन्तोष हो; वे रिक्त और निष्पक्ष होकर नहीं रहते और यह नहीं करते कि जो कुछ घटना घटे, उसे केवल सचाई के साथ साक्षी रूप से देखते रहें। ऐसी अवस्था में यदि ध्यान के समय घटनेवाली घटना तुम्हें पसन्द न हो, तो तुम्हारे लिये अपने-आपको धोखा देना सहज हो जायगा। तुम देखोगे तो कोई और चीज़, किंतु उसको थोड़ा-सा तोड़ मरोड़ के कोई दूसरी ही चीज़ बना डालोगे अथवा तुम यह करोगे कि, किसी सहज और स्पष्ट वस्तु को विकृत कर डालो या उसको किसी असाधारण अनुभूति में बढ़ा-चढ़ा डालो। तुम जब ध्यान करने बैठो, तब तुम्हें एक बालक की भांति सरल और निष्कपट रहना चाहिये, अपने बाहरी मन को किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करने देना चाहिए, कोई आशा नहीं रखनी चाहिए, किसी तरह का हठ नहीं करना चाहिये। यदि यह अवस्था हो जाय, तो बाकी सब कुछ तुम्हारी अन्दर की अभीप्सा पर निर्भर करेगा। यदि तुम अन्दर से शान्ति मांगोगे, तो वह मिलेगी; यदि बल मांगोगे, शक्ति मांगोगे, ज्ञान मांगोगे, तो वे भी मिलेंगे,— किन्तु ये सब-के-सब प्राप्त होंगे तुम्हारी ग्रहण करने की शक्ति के परिमाण में। और यदि तुम भगवान् का आवाहन करो,—सदा यह मान लेते हुए कि भगवान् तुम्हारे आवाहन को सुनने के लिए तैयार हैं, और इसका यह अर्थ हुआ कि यदि तुम्हारा आवाहन उन तक पहुंचने के लिए पर्याप्त रूप से शुद्ध और पर्याप्त रूप से बलवान् है,—तो तुम्हें भगवान् का उत्तर भी अवश्य मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द-वाणी—

श्रीअरविन्द के सूत्र-वचन

३—मनुष्य अर्थात् 'पुरुष'

परमेश्वर प्रकृति की ओर झुकना नहीं छोड़ सकता है और नाहीं मनुष्य ईश्वरत्व के प्रति अभीप्सा करने से रुक सकता है। यह तो सान्त और अनन्त का नित्य सम्बन्ध है। जब वे एक दूसरे से विमुख होते हुए प्रतीत होते हैं तो यह उनका और भी प्रगाढ़ मेल से मिलने के लिये पीछे हटना होता है।

मनुष्य में आकर जगत् की प्रकृति फिर स्व-चेतन हो उठती है जिससे कि वह (जगत्-प्रकृति) अपने दिव्य **भोक्ता** के प्रति अधिक लम्बी कूद लगा सके। यह वह दिव्य भोक्ता है जिसे वह न जानते हुए अपने में धारण करती है, जिसे प्राण और इन्द्रिय-वृत्तियां अपने में धारण करते हुए भी अस्वीकार करते हैं और अस्वीकार करते हुए भी ढूंड़ते हैं। यह जगत्-प्रकृति **परमेश्वर** को नहीं जानतीं, केवल इसलिये क्यों कि यह अपने आप को ही नहीं जानती। जब यह अपने आपको जान जाय तो सत्ता के विशुद्ध आनन्द को भी जान जायगी।

एक हो जाने में सब की उपलब्धि रहना और एक हो जाने से किसी का खोया न जाना—यही रहस्य है। **परमेश्वर** और **मनुष्य**, **संसार** और **संसारातीत** एक हो जाते हैं जब वे एक दूसरे को जान जाते हैं। उनका जुदा-जुदा होना अज्ञान का मूल है, जैसे अज्ञान दुःख का मूल है।

पहिले मनुष्य अन्धे की तरह ढूंड़ता है और यह भी नहीं जानता कि वह स्वयं अपने ही दिव्य स्वरूप को ढूंड़ रहा है; क्यों कि वह भौतिक **प्रकृति** के अन्धकार से चलता है और जब वह देखना शुरु भी कर देता है तब भी देर तक उस प्रकाश से चुंधियाया रहता है जो कि उसके अन्दर बढ़ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर भी उसकी खोज का अस्पष्टतया प्रत्युत्तर देता है। वह मनुष्य की अन्धता को खोजता और उसमें आनन्द लेता है जो एक नन्हें बच्चे के उन हाथों के समान है जो अपनी माता को टटोल रहे होते हैं।

परमेश्वर और **प्रकृति** एक बालक और बालिका के समान हैं जो कि एक दूसरे के साथ खेलते हैं और प्रेम करते हैं। दृष्टिगोचर हो जाने पर वे एक दूसरे से छिपते और भागते हैं ताकि उनको फिर खोजा जाय, पीछा किया और पकड़ा जाय।

मनुष्य वह **परमेश्वर** है जिसने अपने आप को **प्रकृति-शक्ति** से छिपाया हुआ है ताकि वह उस शक्ति को संघर्ष द्वारा, आग्रह से, जबर्दस्ती से और अचानक हमला करके पा सके। **परमेश्वर** वह विश्वव्यापी और विश्व से भी ऊँचा उठा हुआ परात्पर **मनुष्य** है जिसने अपने आपको मानवीय रूप में विद्यमान अपने ही व्यक्तित्व से छिपाया हुआ है।

पशु **मनुष्य** है जो कि बालों वाली खाल के वेष में है और जो चार टांगों पर खड़ा होता है। कृमि **मनुष्य** है जो अपनी **मनुष्यता** के विकास की ओर मुड़ता-तुड़ता रेंग रहा है। यहां तक कि भौतिक **प्रकृति** के अविकसित रूप भी अपने गठन-रहित शरीर में **मनुष्य** ही हैं। सभी वस्तुयें **मनुष्य** हैं, '**पुरुष**' हैं।

क्योंकि, **मनुष्य** से हम क्या अभिप्राय लेते हैं? एक अज और अविनाशी आत्मा जो अपने ही तत्त्वों से बने हुए मन और शरीर में वास कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—अन्त

मनुष्य और परमेश्वर के मेल का मतलब सदा यही हो सकता है कि ईश्वरीय दिव्यता का मनुष्यता के अन्दर संचार व प्रवेश हो जाय तथा मनुष्य का ईश्वरीय दिव्यता के अन्दर अन्तर्लय हो जाय।

किन्तु वह अन्तर्लय आत्म-विनाश के रूप का नहीं है। इस सब खोज और आवेश, दुःख और उल्लास का परिणाम उच्छेद नहीं है! यदि यही इसका अन्त होना होता तो यह खेल कभी प्रारम्भ ही न हुआ होता।

आनन्द ही रहस्य है। शुद्ध आनन्द को जानो और तुम परमेश्वर को जान जाओगे।

तो फिर इस सब का प्रारम्भ क्या था? अस्तित्व, जिसने निरे सत्ता के आनन्द के लिये ही अपने आपको बहुगुणित कर दिया और अगणित कोटि-कोटि रूपों में प्रविष्ट हो गया ताकि वह अपने आपको असंख्य प्रकार से पा सके।

और मध्य क्या है? विभक्तता जो कि बहुगुणित एकता की ओर प्रयत्नशील है; अज्ञान जो कि विविध प्रकाश के एक प्रवाह के प्रति परिश्रमपूर्वक अग्रसर हो रहा चलता है; दुःख-क्लेश जो कि अकल्पनीय आनन्द के संस्पर्श को पाने के लिये घोर तपस्या कर रहा है। क्योंकि यह सब वस्तुएँ छायामय आकृतियां और बिगड़े हुए उलटे कम्पन हैं।

और इस सारी बात का अन्त क्या है? मानो मधु अपने आपका और अपने सब बिन्दुओं का इकट्ठा स्वाद ले सके और इसकी सब बूंदे एक दूसरे का स्वाद ले सकें तथा इसकी प्रत्येक बूंद अपने आप के तौर पर सम्पूर्ण मधु-छत्ते का स्वाद ले सके, ऐसे ही परमेश्वर और मानवीय आत्मा और इस विश्व का अन्त होगा।

प्रेम आदि स्वर है, आनन्द संगीत है, शक्ति आलाप है, ज्ञान गायक है, वह अनंत सर्वात्मा उसका रचयिता और श्रोता है। अभी हम केवल प्रारम्भिक बेसुरे स्वरों को जानते हैं जो उतने ही भयंकर हैं जितनी कि उनकी समस्वरता महान् होगी। लेकिन हम एक दिन अवश्य ही दिव्य कल्याण-मय आनंदों के समूह-संगीत तक पहुंच जायंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न

(श्रीअरविन्द)

एक दरिद्र आदमी अंधेरी कोठरी में बैठा हुआ अपनी शोचनीय अवस्था और भगवान् के राज्य में अन्याय और अविचार की बातें सोच रहा था। अभिमान से वशीभूत होकर दरिद्र कहने लगा कि "लोग कर्म की दुहाई देकर भगवान् के सुनाम की रक्षा करना चाहते हैं। यदि गत जन्म के पाप से मेरी यह दुर्दशा हुई होती, यदि मैं इतना ही पापी होता तो निश्चय ही इस जन्म में भी मेरे मन में पाप चिंता का स्रोत अभी भी बहता होता! इतना घोर पातकी मन क्या एक दिन में निर्मल हो सकता है? और उस पाड़े के तीनकौड़ी शील को देखो, उसकी धन-दौलत, सोना-चांदी, दास-दासियों को देखो, यदि कर्मफल सत्य है तो पूर्वजन्म में निश्चय ही वह कोई जगद्विख्यात साधु या महात्मा था। परंतु कहाँ, इस जन्म में तो इसका चिह्नमात्र भी दिखायी नहीं देता। ऐसा निष्ठुर पाजी बदमाश सारे संसार में नहीं है। नहीं, कर्मवाद भगवान् की ठगविद्या है, मन को ढाढ़स देने का एक बहाना मात्र है। श्यामसुंदर बड़े चतुर चूड़ामणि हैं, मेरे पास आकर पकड़ाई नहीं देते, इसी में उनकी कुशल है, नहीं तो अच्छी तरह से शिक्षा देकर उनकी सारी चालाकी दूर कर देता।"

इतना कहते ही दरिद्र ने देखा कि हठात् उसका अंधकार-घर अतिशय उज्ज्वल आलोक-तरंग में प्रवाहित हो गया, फिर तुरत ही वह आलोक-तरंग अंधकार में लीन हो गयी। उसने देखा कि उसके सामने एक सुन्दर कृष्णवर्ण बालक हाथ में दीपक लिये हुए खड़ा है—धीरे-धीरे मुसकरा रहा है पर कुछ बोलता नहीं। उसके सिर पर मोरमुकुट और पावों में नूपुर देखकर दरिद्र ने समझा कि स्वयं श्यामसुन्दर उसे पकड़ाई देने के लिये आये हैं। दरिद्र अप्रतिभ हो गया, एक बार उसके मन में आया कि प्रणाम करूं, किंतु बालक का हंसता हुआ मुखड़ा देखकर किसी तरह भी प्रणाम करने की प्रवृत्ति नहीं हुई। अंत में उसके मुंह से ये वाक्य निकल पड़े—"अरे कन्हैया, तू क्यों आया है?"

बालक ने हंसकर उत्तर दिया—"क्यों, तुमने मुझे बुलाया है न? अभी-अभी मुझको चाबुक लगाने की प्रबल वासना तुम्हारे मन में थी न, इसीलिये आकर मैंने अपने को पकड़वा दिया है, उठकर चाबुक लगाना शुरू करो न।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरिद्र और भी अप्रतिभ हुआ, भगवान् को चाबुक लगाने की इच्छा के लिये उसके हृदय में अनुताप नहीं हुआ, किंतु इतने सुंदर बालक को स्नेह करने के बदले उसके शरीर पर हाथ लगाना, यह भी ठीक नहीं मालूम हुआ। बालक ने फिर कहा—"देखो हरिमोहन, जो लोग मुझसे भय नहीं करके मुझे सखा की भांति देखते हैं, स्नेह-भाव से गाली देते हैं, मेरे साथ क्रीड़ा करना चाहते हैं, वे मुझे बहुत ही प्रिय हैं। मैंने क्रीड़ा के लिये ही जगत् की सृष्टि की है, इस क्रीड़ा के उपयुक्त साथी को मैं सदा खोजता रहता हूँ। परंतु भाई, ऐसे साथी मिलते कहाँ हैं? सभी मेरे ऊपर क्रोध करते हैं, दावा करते हैं, दान मान मुक्ति भक्ति, न जाने क्या-क्या चाहते रहते हैं, किंतु कहाँ, मुझे तो कोई नहीं चाहता! जो कुछ ये चाहते हैं वह मैं इन्हें देता हूँ। क्या करूं, इन्हें संतुष्ट तो करना ही पड़ता है, नहीं तो ये मेरी जान के गाहक बन जायं। तुम भी देखता हूँ कुछ चाहते हो। नाराज़ होने पर गुस्सा उतारने के लिये तुम्हें एक आदमी चाहिये। इसी अभिलाषा को पूरी करने के लिये तुमने मुझे बुलाया है। अस्तु, मैं भी तुम्हारे चाबुक की मार खाने के लिये आया हूँ—ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। हां, यदि प्रहार करने के पहले तुम मेरे मुंह से कुछ सुनना चाहते हो तो मैं तुम्हें अपनी प्रणाली बता दूंगा। क्यों! तुम राज़ी हो?"

हरिमोहन ने कहा—"तू ऐसा कर सकेगा तो? देखता हूं तू बहुत बकबक करना जानता है, किंतु तेरे जैसा नन्हासा बालक मुझे कुछ शिक्षा दे सकेगा यह मैं कैसे विश्वास करूं?"

बालक ने फिर हंसकर कहा—"अच्छा, आओ देखो मैं यह कर सकता हूँ या नहीं।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण ने हरिमोहन के सिर पर हाथ रखा। हठात् दरिद्र के समस्त शरीर में विद्युत् का स्रोत प्रवाहित होने लगा, मूलाधार में सुप्त कुंडलिनी-शक्ति अग्निमयी सर्पिणी के रूप में गर्जन करती हुई उसके ब्रह्मरंध्र में दौड़ आयी, उसका मस्तिष्क प्राणशक्ति की तरंग से भर गया। इतने में उसे ऐसा दिखायी दिया कि उसके चारों ओर जो उसके घर की दीवार है वह मानो दूर भागी जा रही है, यह नाम-रूपमय जगत् मानो उसे छोड़कर अनंत में छिप गया है। हरिमोहन बाह्य-ज्ञान-शून्य हो गया। जब उसे फिर से चेतना हुई तो उसने देखा कि वह किसी अपरिचित मकान में बालक के संग खड़ा है और उसके सामने गाल पर हाथ रखे गद्दी पर बैठे हुए एक वयोवृद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष प्रगाढ़ चिंता में निमग्न हैं। घोर चिंता से विकृत, हृदय-विदारक निराशा से मलिन उनके मुंह को देख कर हरिमोहन को यह विश्वास करने की इच्छा नहीं हुई कि यही वृद्ध ग्रामके हर्त्ता-कर्त्ता तीनकौड़ी शील हैं। अंत में अत्यंत भयभीत होकर उसने बालक से कहा—"अरे कन्हैया, यह तैंने क्या किया, चोर की भांति घोर रात्रि में दूसरे के मकान में घुस आया? पुलिस आकर हम लोगों को पकड़ेगी और मारते-मारते हम दोनों का प्राण ले लेगी। तीनकौड़ी शील के प्रताप को क्या तू नहीं जानता?"

बालक ने हंसकर कहा—"अच्छी तरह जानता हूं। परन्तु चोरी मेरा पुराना धन्धा है, पुलिस से मेरी खूब घनिष्ठता है, तुम डरो नहीं। अब तुमको मैं सूक्ष्म दृष्टि देता हूं, वृद्ध के मन के भीतर क्या हो रहा है, यह देखो। तीनकौड़ी के प्रताप को तो तुम जानते ही हो, किन्तु मेरे प्रताप को भी देखो।"

अब हरिमोहन वृद्ध तीनकौड़ी के मन को देखने में समर्थ हुआ। उसने देखा मानो उस वृद्ध की धनाढ्य नगरी नाना प्रकार के आक्रमणों से विध्वंस हो रही है, उसकी तीक्ष्ण और ओजस्विनी बुद्धि में कितनी ही भीषण मूर्त्तियां, पिशाच और राक्षस आदि प्रवेश कर उसके सुख को लूट रहे हैं। वृद्ध ने अपने प्यारे सबसे छोटे पुत्र के साथ कलह किया है, उसे घर से निकाल दिया है; अब वे बुढ़ापे के प्यारे पुत्र को खोकर शोक से मरणातुर हो रहे हैं, फिर भी क्रोध, गर्व और हठ उनके हृदय-द्वार में सांकल लगाकर पहरा दे रहे हैं। क्षमा को उस द्वार से प्रवेश करने की मनाही है। उनकी कन्या के नाम दुश्चरित्रा होने का कलंक लगा है, अतः वृद्ध अपनी प्रिय कन्या को घर से निकालकर अब उसके लिये रो रहे हैं, वृद्ध यह जानते हैं कि उनकी कन्या निर्दोष है, किन्तु समाज का भय, लोक-लज्जा, अहंकार और स्वार्थ स्नेह को दबाकर रखे हुए हैं, उसे उभड़ने का अवसर नहीं देते। हजारों पाप-स्मृतियों से डरकर वृद्ध बार-बार चमक उठते हैं, तथापि पाप-प्रवृत्तियों को रास्ते पर लाने का साहस या बल उनमें नहीं है। बीच-बीच में मृत्यु और परलोक की चिन्ता वृद्ध को अत्यन्त कठोर विभीषिका दिखा देती है। हरिमोहन ने देखा कि मरने की चिन्ता के परदे के पीछे से विकट यमदूत वृद्ध को झांक-झांक कर देख रहे हैं और उनके दरवाजे को खटखटा रहे हैं। जब-जब दरवाजा खटखटाने का शब्द होता है तब-तब वृद्धका अन्तरात्मा भय से व्याकुल होकर चीत्कार कर उठता है। इस भयंकर दृश्य को देखकर हरिमोहन भयभीत हो गया और उसने बालक की ओर देखकर कहा—"अरे कन्हैया! यह क्या, मैं तो सोचता था कि वृद्ध परम सुखी हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक ने कहा—"यही मेरा प्रताप है। कहो किसका प्रताप अधिक है, इस महल्ले के तीनकौड़ी शील का या वैकुण्ठवासी श्रीकृष्ण का? हरिमोहन देखो! हमारे यहां भी पुलिस है, पहरा है, गवर्नमेंट है, कानून है, विचार है, मैं भी राजा बनकर खेल कर सकता हूँ। यह खेल क्या तुमको पसन्द है?"

हरिमोहन ने कहा—"नहीं रे बाबा, यह तो बड़ा बुरा खेल है, क्या तुमको यह खेल अच्छा लगता है?"

बालक ने हंसकर उत्तर दिया—"मैं सभी खेल पसन्द करता हूँ, चाबुक लगाना भी पसन्द करता हूँ और चाबुक खाना भी।" इसके बाद उसने कहा—"देखो हरिमोहन, तुम लोग केवल बाहर को ही देखते हो, भीतर को देखने की सूक्ष्म दृष्टि का तुमने अभी तक विकास नहीं किया है। इसीलिये तुम कहते हो कि तुम दुःखी हो और तीनकौड़ी सुखी है। इस आदमी को पार्थिव किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है—फिर भी यह लखपति तुम्हारी अपेक्षा कितनी अधिक दुःख-यंत्रणा भोग रहा है। ऐसा क्यों होता है? क्या तुम यह कह सकते हो? बात यह है कि मन की अवस्था में ही सुख है और मन की अवस्था में ही दुःख। सुख और दुःख मन के विकार मात्र हैं। जिसके पास कुछ नहीं है, विपद् ही जिसकी सम्पद् है वह इच्छा करने पर उस विपद् के अन्दर भी परम सुखी हो सकता है। और देखो, जिस तरह तुम नीरस पुण्य में दिन बिताते हुए सुख नहीं पा रहे हो, केवल दुःख की ही चिन्ता करते हो, उसी तरह ये भी नीरस पाप में अपने दिन बिताते हुए केवल दुःख की ही चिन्ता करते हैं। इसीलिये पुण्य से केवल क्षणिक सुख और पापसे केवल क्षणिक दुःख या पुण्य से केवल क्षणिक दुःख और पाप से केवल क्षणिक सुख होता है। इस द्वन्द्व में आनन्द नहीं है। आनन्द के आगार की छवि तो मेरे पास है। जो मेरे पास आता है, मेरे प्रेमपाश में बंधता है, मुझे साधता है, मेरे ऊपर ज़ोर-ज़ुलम करता है, अत्याचार करता है—वह मेरे आनन्द की छवि को वसूल करता है।"

हरिमोहन बड़ी तत्परता के साथ श्रीकृष्ण की बातें सुनने लगा। बालक ने फिर कहा—"हरिमोहन और देखो, रूखा-सूखा पुण्य तुम्हारे निकट नीरस हो गया है फिर भी इस संस्कार के प्रभाव को छोड़ देना, इस तुच्छ अहंकार को जीत लेना, तुम्हारे लिये कठिन हो रहा है। इसी तरह पाप भी यद्यपि वृद्ध के निकट नीरस हो गया है फिर भी संस्कार के प्रभाव से वे उसे छोड़ नहीं पाते और इस जीवन में नरक की यन्त्रणा भोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। इसीको 'पुण्य का बन्धन' और 'पाप का बन्धन' कहते हैं। अज्ञानजनित संस्कार इस बन्धन के लिये रस्सी का काम करता है। परन्तु वृद्ध की यह नरकयन्त्रणा बड़ी ही शुभ अवस्था है। इससे इनका परित्राण और मंगल होगा।"

हरिमोहन अब तक चुपचाप बालक की बातों को सुन रहा था, अब उसने कहा—"प्यारे कन्हैया, तेरी बातें बड़ी मीठी हैं, किन्तु इनसे मेरा समाधान नहीं हो रहा है। सुख और दुःख मन के विकार हो सकते हैं, किन्तु बाह्य अवस्था ही इनका वास्तविक कारण है। विचार देखें, क्षुधा की ज्वाला से प्राण जब छटपटा रहा हो, तब क्या कोई परम सुखी हो सकता है? रोग या यन्त्रणा से शरीर जब कातर हो रहा हो, तब क्या कोई तेरी बात को सोच सकता है?"

बालक ने कहा—"आओ हरिमोहन, यह भी तुम्हें दिखाऊंगा।"

इतना कहकर बालक ने हरिमोहन के सिर पर पुनः अपना हाथ रखा। हाथ के स्पर्श का बोध होते ही हरिमोहन ने देखा कि तीनकौड़ी शील के मकान का अब कहीं पता भी नहीं है, अब उसके सामने किसी निर्जन सुरम्य पर्वत के वायुसेवित शिखर पर एक संन्यासी आसन लगाये ध्यानमग्न अवस्था में बैठे हैं, उनके चरणों के नीचे एक प्रकाण्ड व्याघ्र प्रहरी की तरह लेटा हुआ है। बाघ को देखकर हरिमोहन के पैर आगे बढ़ने से रुके, किन्तु बालक उसे खींचकर संन्यासी के निकट ले गया। बालक के संग ज़ोर न लगा सकने के कारण हरिमोहन को लाचार होकर चलना पड़ा। बालक ने कहा—"हरिमोहन देखो।"

हरिमोहन ने देखा कि संन्यासी का मन उसकी आंखों के सामने एक खुली हुई बही के समान पड़ा हुआ है, इस बही के हरेक पन्ने पर श्रीकृष्णनाम हज़ार बार लिखा हुआ है। संन्यासी निर्विकल्प समाधि के सिंह-द्वार का अतिक्रमण कर सूर्य के आलोक में श्रीकृष्ण के संग क्रीड़ा कर रहे हैं। उसने और भी देखा कि संन्यासी कई दिनों से अन्न और जल के बिना जीवन बिता रहे हैं तथा गत दो दिनों में भूख और प्यास से उनके शरीर को बहुत कष्ट हुआ है। हरिमोहन ने कहा—"अरे कन्हैया! यह क्या? महात्मा तुमसे इतना प्रेम करते हैं फिर भी ये क्षुधा और पिपासा की पीड़ा भोग करते हैं। तुझे क्या साधारण-सी बुद्धि भी नहीं है। इस निर्जन व्याघ्रसंकुल अरण्य में कौन इन्हें आहार देगा!" बालक ने कहा—"मैं दूंगा, किंतु एक और मज़ा देखो।" हरिमोहन ने देखा कि बाघ ने खड़े होकर अपने पंजे के आघातसे निकटवर्ती वल्मीक को तोड़ दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब क्या था, उस मिट्टी के ढेर में से हज़ारों दीमक निकल कर मारे क्रोध के संन्यासी के बदन पर चढ़कर उन्हें काटने लगे। संन्यासी उसी अवस्था में बैठे हैं, ध्यानमग्न, निश्चल, अटल। अब बालक ने संन्यासी के कान में अति मधुर स्वर से आवाज़ लगायी—"सखे!" संन्यासी ने आँखें खोलीं, आरंभ में उन्होंने इस मोह-ज्वालामय दंशन का अनुभव नहीं किया, अभी भी उनके कानों में वही विश्व-वांछित चित्त को हर लेने वाली वंशी बज रही थी—ठीक उसी तरह जिस तरह वह वृन्दावन में श्री राधा के कानों में बजी थी। इसके बाद उन हज़ारों दीमकों के काटने से उनकी बुद्धि शरीर की ओर आकृष्ट हुई। संन्यासी अपने आसन से हिले नहीं—विस्मयपूर्वक मन-ही-मन कहने लगे—"यह क्या? ऐसा तो कभी नहीं हुआ। ओहो! यह तो श्रीकृष्ण मेरे संग क्रीड़ा कर रहे हैं, क्षुद्र दीमक-समूह के वेश में मुझे काट रहे हैं।" हरिमोहन ने देखा कि दीमकों के काटने की पीड़ा अब संन्यासी की बुद्धि तक नहीं पहुंच पाती, प्रत्येक दंशन में तीव्र शारीरिक आनंद का अनुभव कर, श्रीकृष्ण नाम लेते हुए तथा अत्यंत आनंद पूर्वक तालियाँ बजाते हुए, वे नाचने लगे। दीमक मिट्टी में गिर कर भाग गये। हरिमोहन ने आश्चर्य पूर्वक पूछा—"अरे कन्हैया, यह क्या माया है!"

बालक ताली बजाकर एक पैर के बल दो बार घूमकर नाचा, ठठाकर हंसा और बोला—"मैं ही हूँ जगत् का एकमात्र जादूगर! इस माया को तुम नहीं समझ सकोगे, यह मेरा परम रहस्य है। देखा! यंत्रणा में भी संन्यासी मुझे स्मरण कर सके तो! और देखो।"

संन्यासी अब पुनः प्रकृतिस्थ होकर बैठे, उनका शरीर अब भूख प्यास अनुभव करने लगा, किंतु हरिमोहन ने देखा कि संन्यासी की बुद्धि उस शारीरिक विकार का अनुभवमात्र करती है, लेकिन न तो वह इससे विकृत ही हो रही है न लिप्त ही। इसी समय पहाड़ पर से किसी ने वंशी-विनिन्दित स्वर से पुकारा, "सखे!" हरिमोहन चौंक पड़ा। यह तो श्यामसुन्दर का ही मधुर वंशीविनिन्दित स्वर है। इसके बाद उसने देखा कि पहाड़ी चट्टान के पीछे से एक सुंदर कृष्णवर्ण बालक थाली में उत्तम आहार और फल लिये हुए आ रहा है। हरिमोहन हतबुद्धि होकर श्रीकृष्ण की ओर देखने लगा। बालक उसके पास खड़ा है, फिर भी जो बालक आ रहा है वह भी अविकल श्रीकृष्ण ही है। दूसरा बालक वहाँ आकर और संन्यासी को रोशनी दिखाकर बोला—"देखो, क्या लाया हूं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संन्यासी ने हंसकर कहा--"आ गया ? इतने दिनों तक भूखा ही रखा ? ख़ैर, जब आया है तो बैठ मेरे संग खा।"

संन्यासी और बालक उस थाली की सामग्रियों को खाने लगे, आपस में छीना-झपटी होने लगी। आहार समाप्त होने पर बालक थाली लेकर अंधकार में विलीन हो गया।

हरिमोहन कुछ पूछने जा रहा था, हठात् उसने देखा कि श्रीकृष्ण अब वहाँ नहीं हैं, अब न वहाँ संन्यासी हैं, न बाघ, न पर्वत ही। अब तो वह एक भले आदमियों के महल्ले में वास कर रहा है। प्रगाढ़ धन-दौलत है, स्त्री है, परिवार है, नित्य ब्राह्मणों और भिक्षुकों को दान देता है, त्रिकाल संध्या करता है, शास्त्रोक्त आचार-विचार की यत्नपूर्वक रक्षा करता हुआ रघुनंदनप्रदर्शित पथ पर चल रहा है। आदर्श पिता, आदर्श स्वामी और आदर्श पुत्र होकर जीवन यापन कर रहा है। परंतु दूसरे ही क्षण उसने भयभीत होकर देखा कि जो लोग इस भद्र महल्ले में वास रहे हैं उनके अंदर लेशमात्र भी सद्भाव या आनंद नहीं है, ये लोग यंत्र की तरह बाह्य आचार-रक्षा को ही पुण्य समझ रहे हैं। इस जीवन से हरिमोहन को आरंभ में जितना आनंद हुआ था, उतनी ही अब उसे यंत्रणा होने लगी। उसे बोध हुआ मानो उसको भयानक प्यास लगी है, किंतु उसको जल नहीं मिल रहा है, वह धूल फाँक रहा है। वहाँ से भागकर वह एक दूसरे गाँव में गया, वहाँ एक प्रकांड अट्टालिका के सामने अपूर्व जनता का और उसके द्वारा दिये गये आशीर्वाद का कोलाहल मचा हुआ था। हरिमोहन उस जन-समूह के कुछ पास गया, उसने देखा कि तीनकौड़ी शील दालान में बैठे हुए उस जनता को दोनों हाथों से धन दे रहे हैं, कोई भी वहाँ से निराश होकर नहीं लौट रहा है। हरिमोहन ठठाकर हंस पड़ा, उसने सोचा—"यह कैसा स्वप्न! तीनकौड़ी शील और दाता ? आश्चर्य !" इसके बाद उसने तीनकौड़ी के मन को देखा। उसे ज्ञात हुआ कि तीनकौड़ी शील के मन में लोभ, ईर्ष्या, काम, स्वार्थ आदि हज़ारों प्रकार की अतृप्तियां और कुप्रवृत्तियां 'दो, दो' कहती हुई चिल्ला रही हैं। पुण्य के लिये, यश के लिये, गर्व के वश तीनकौड़ी उन भावों को अतृप्त अवस्था में ही किसी तरह ढाँक कर रखे हुए हैं, लेकिन ये भाव उनके चित्त से दूर नहीं हो गये हैं। इसी समय हरिमोहन को पकड़ कर कोई जल्दी-जल्दी परलोक में घुमा लाया। हिंदू का नरक, क्रिस्तान का नरक, मुसलमान का नरक, यूनानियों का नरक, हिंदू का स्वर्ग, क्रिस्तान का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग, मुसलमान का स्वर्ग, यूनानियों का स्वर्ग—न मालूम कितने नरकों और कितने स्वर्गों को हरिमोहन देख आया। इसके बाद उसने देखा कि वह अपने ही मकान में, अपनी पूर्व परिचित फटी हुई चटाई और अपने उसी मैले-कुचैले तोशक पर बैठा हुआ है, और उसके सामने ही श्याम सुन्दर खड़े हैं। बालक ने कहा—"रात बहुत बीत गयी है, यदि मैं घर न लौटूंगा तो मेरे घर वाले मुझे डांटेंगे, पीटेंगे। इसलिये अधिक बातें करने का अवकाश नहीं है, संक्षेप में इतना ही कहता हूँ कि जिन स्वर्गों और नरकों को तुमने देखा है, ये सब स्वप्न-जगत् की कल्पना से सृष्ट हुए हैं। मनुष्य मरणांतर स्वर्ग और नरक में जाता है, अपने गत जन्म के भाव को वहाँ भोगता है। तुम पूर्वजन्म में पुण्यवान् थे, किंतु उस जन्म में प्रेम को तुम्हारे हृदय में स्थान नहीं मिला। न तुमने ईश्वर से प्रेम किया न मनुष्य से। इसलिये प्राण त्याग करने पर स्वप्न-जगत् में भले आदमियों के उस महल्ले में वास करके पूर्व जीवन के भावों का तुम भोग करने लगे, भोग करते-करते उस भाव से तुम ऊब गये, तुम्हारे प्राण व्याकुल होने लगे, और तुम वहाँ से निकल कर धूलिमय नरक में वास करने लगे, अंत में जीवन के पुण्य फलों को भोग कर पुनः तुम्हारा जन्म हुआ। उस जीवन में छोटे-छोटे नैमित्तिक दानों को छोड़कर, नीरस बाह्य व्यवहार को छोड़ कर किसी के अभाव को दूर करने के लिये, तुमने कुछ नहीं किया। इसीलिये इस जन्म में तुम्हें इतना अभाव है। अभी भी तुम जो नीरस पुण्य करते हो इसका कारण यह है कि केवल स्वप्न-जगत् के भोग से पाप और पुण्य का संपूर्ण क्षय नहीं होता, इनका संपूर्ण क्षय तो कर्म फल को पृथ्वी पर भोगने से ही होता है। तीनकौड़ी गत जन्म में दाता कर्ण थे, हजारों व्यक्तियों के आशीर्वाद से इस जन्म में लखपति हुए हैं, उन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं है। परंतु उनका चित्त शुद्ध नहीं होने के कारण अतृप्त कुप्रवृत्तियों को, पाप कर्मों के द्वारा, उन्हें इस समय तृप्त करना पड़ रहा है। कर्मवाद समझे क्या? न तो यह पुरस्कार है न दंड—यह है अमंगल के द्वारा अमंगल की और मंगल के द्वारा मंगल की सृष्टि, प्रकृति का कानून। पाप अशुभ है अतः उसके द्वारा दुःख की सृष्टि होती है; पुण्य शुभ है इसलिये उसके द्वारा सुख की सृष्टि होती है। यह व्यवस्था चित्त की शुद्धि के लिये, अशुभ के विनाश के लिये की गयी है। देखो हरिमोहन, पृथ्वी हमारे वैचित्र्यमय जगत् का एक छोटा सा अंशमात्र है, और कर्म के द्वारा अशुभ का नाश करने के लिये तुम लोग वहाँ जन्म ग्रहण करते हो। और फिर जब पाप और पुण्य के हाथों से परित्राण पाकर प्रेम-राज्य में पदार्पण करते हो तब इस कार्य से छुटकारा मिलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अगले जन्म में तुम भी छुटकारा पाओगे। मैं अपनी प्रिय भगिनी शक्ति और उसकी सहचरी विद्या को तुम्हारे निकट भेजूंगा, परंतु देखो एक शर्त्त है कि तुम मेरे इस खेल के साथी बनोगे, मुक्ति नहीं माँग सकोगे। क्यों, राज़ी हो?" हरिमोहन ने कहा—"अरे कन्हैया! तैंने मेरा बड़ा उपकार किया। तुझे गोद में लेकर प्यार करने की बड़ी इच्छा होती है, ऐसा मालूम होता है मानो इस जीवन में मुझे अब कोई वासना नहीं रह गयी है।"

बालक ने हँसकर कहा—"हरिमोहन, कुछ समझे क्या?" हरिमोहन ने उत्तर दिया—"समझा क्यों नहीं।" इसके बाद उसने कुछ सोचकर कहा—"अरे कन्हैया, तैंने मुझे फिर ठगा। अशुभ का सृजन तैंने क्यों किया इसकी तो कोई कैफियत दी ही नहीं।" इतना कहकर उसने बालक का हाथ पकड़ लिया। उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर और उसको धमकाते हुए बालक ने कहा—"दूर हटो! वाह, एक घण्टे में ही मेरी समस्त गुप्त बातें कहला लेना चाहते हो?" इतना कहकर बालक ने दीपक को हठात् बुझा दिया और हरिमोहन से कुछ दूर हटकर हँसते हुए कहा—"देखो हरिमोहन, चाबुक मारना तो तुम एकदम ही भूल गये। इसी से तो मैं तुम्हारी गोद में नहीं बैठा कि कहीं तुम बाह्य दुःख से क्रुद्ध होकर मुझे अच्छी तरह पीटने न लगो! तुम पर मेरा लेशमात्र भी विश्वास नहीं है।"

हरिमोहन ने अन्धकार में अपना हाथ बढ़ाया, बालक और अधिक दूर हट गया और बोला—"नहीं, इस सुख को मैं तुम्हारे दूसरे जन्म के लिये बाकी रख छोड़ता हूँ। अच्छा अब चलता हूँ।"

इतना कहकर उस अन्धकारमय रात्रि में बालक न जाने कहां अदृश्य हो गया। हरिमोहन उसकी नूपुरध्वनि को सुनते-सुनते जाग उठा। जागकर उसने सोचा कि "यह कैसा स्वप्न देखा! नरक देखा, स्वर्ग देखा, और भगवान् को तू कहा, छोटा-सा बालक समझकर डांटा, डपटा! यह बड़ा भारी पाप किया! परन्तु जो कुछ भी क्यों न हो प्राण में एक अभूतपूर्व शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ।" हरिमोहन अब उस कृष्णवर्ण बालक की मोहिनी मूर्त्ति का ध्यान करने लगा और बीच-बीच में कहने लगा "कितनी सुन्दर, कितनी सुन्दर!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान युद्ध पर श्रीअरविन्द के विचार

(केवल श्रीअरविन्द के साधकों व शिष्यों के लिये)

हम अनुभव करते हैं कि यह केवल एक ऐसी लड़ाई ही नहीं है जो न्याय्य आत्म-संरक्षण के लिये या जर्मनी के संसार-व्यापी प्रभुत्व की पिपासा से तथा नाज़ी-जीवन-पद्धति से संत्रस्त राष्ट्रों के परित्राण के लिये छेड़ी गयी है, बल्कि यह कि इस युद्ध का अर्थ है सभ्यता और उसकी उच्चतम प्राप्त सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संपत्तियों की तथा मानव-जाति के सारे भविष्य की ही रक्षा। इस कार्य के लिये हमारी सहायता और सहानुभूति अटल बनी रहेगी, कुछ भी क्यों न हो; हम ब्रिटेन की विजय की आशा और प्रतीक्षा करते हैं और इस बात की कि इस विजय के परिणाम स्वरूप एक ऐसा युग आवे जहाँ शान्ति हो, विभिन्न राष्ट्रों में एकता हो और एक अच्छी तथा अधिक सुरक्षित जग-व्यवस्था हो।

१९. ९. १९४०

श्रीअरविन्द
माँ

ज़ोर दे कर और स्पष्ट रूप से यह जता देना आवश्यक हो गया है कि वे सब जो अपने विचारों और इच्छाओं के द्वारा नाज़ी दल का समर्थन कर रहे हैं और उसकी विजय मना रहे हैं, वे इसी बात के द्वारा भगवान् के विरुद्ध असुर के साथ सहयोग कर रहे हैं और असुर की विजय कराने में सहायक हो रहे हैं।

हिटलर को अपना यंत्र बना कर जो आसुरी शक्ति कार्य कर रही है और उसके द्वारा संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहती है वह वही शक्ति है जो श्रीअरविन्द के कार्य का विरोध करती रही है और उसे नष्ट कर देने की तथा भगवान् के कार्य की पूर्ति में विघ्न डालने की चेष्टा करती रही है।

अतएव वे जो नाज़ियों और उनके सहगामियों की विजय चाहते हैं अब समझ लें कि इस तरह की इच्छा करना हमारे कार्य को नष्ट करने की इच्छा करना तथा श्रीअरविन्द के प्रति विश्वासघात करना है।

६. ५. १९४१

माँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

0 79445

तुम्हारा कहना है कि तुम सन्देह करने लगे हो कि क्या यह **माता** का युद्ध है और यह चाहते हो कि मैं तुम्हें फिर से अनुभव करा दूं कि हां यह **माता** का युद्ध ही है। तो सुनो, मैं तुम्हें पूरे बल के साथ यह दुबारा कहता हूँ कि हां यह **माता** का युद्ध है। तुम्हें यह नहीं सोचना चाहिये कि यह लड़ाई दूसरों के विरुद्ध कतिपय राष्ट्रों के लिये है या यह भी कि यह युद्ध भारत के लिये है। यह संघर्ष है एक आदर्श के लिये जिसे मानव-जाति के जीवन में पृथिवी पर स्थापित होना है, उस सत्य की प्रतिष्ठा के लिये जिसे अभी पूर्ण रूप से यहां सिद्ध होना है और यह उस अन्धकार और मिथ्यात्व के विरुद्ध है जो निकट भविष्य में पृथिवी और मानवता को अभिभूत कर देने की चेष्टा कर रहे हैं। देखना है उन शक्तियों को जो इस संग्राम के पीछे कार्य कर रही हैं, इस या उस किसी बाह्य अवस्था को नहीं। राष्ट्रों के दोषों और भूलों पर दृष्टि केन्द्रित करने से कोई लाभ नहीं, सभी राष्ट्र दोषों से भरे पड़े हैं और गहरी भूलें करते हैं; जो बात महत्त्व रखती है वह यह कि इस संग्राम में कौन राष्ट्र किस पक्ष का होकर खड़ा हुआ है। यह संघर्ष है इसलिये कि मनुष्य समाज को अपना विकास करने की स्वाधीनता रहे, ऐसी अवस्थाएं रहें जिसमें मनुष्य को अपने अन्दर के प्रकाश के अनुकूल चिंतन और कर्म करने की स्वतन्त्रता तथा उपयुक्त क्षेत्र मिले, वह सत्य में, आत्मा में संवर्द्धित हो सके। इसमें ज़रा भी सन्देह की गुंजायश नहीं कि यदि एक पक्ष की जीत हो तो इस तरह की स्वतन्त्रता का तथा प्रकाश और सत्य की आशा का अन्त हो जायगा और जिस कार्य को करना है वह ऐसी अवस्थाओं के अधीन हो जायगा कि उसे कम-से-कम मानुषिक शक्ति से पूरा करना असम्भव हो जायगा; असत्य और अन्धकार का राज्य छा जायगा, अधिकांश मानवजाति का इतना क्रूर पददलन होगा, इतनी अधोगति होगी जिसकी कि इस देश के लोग कल्पना भी नहीं कर रहे, जिसे कि वे अभी ज़रा भी अनुभव नहीं कर सकते। यदि दूसरे पक्ष की जीत हुई, उस पक्ष की जीत हुई जिसने यह घोषणा की है कि वह मानवजाति के स्वतन्त्र भविष्य का हिमायती है तो यह भयानक खतरा टल जायगा और ऐसी अवस्थाओं की सृष्टि हो जायगी जिसमें मानव-जाति के स्वतन्त्र विकास के सिद्धान्त को पनपने की, भगवान् के कार्य को करने की, जिस आध्यात्मिक सत्य के लिये हम हैं उसकी इस पृथिवी पर स्थापना होने की आशा रहेगी। जो लोग इस ध्येय के लिये लड़ रहे हैं वे भगवान् के लिये लड़ रहे हैं और असुर का राज्य हो जाने की प्रबल विभीषिका का अन्त करने के लिये लड़ रहे हैं।

२९. ७. ४२ —श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा आदर्श

(लेखक—श्रीयुत नलिनीकान्तजी)

हमारा अर्थात् श्रीअरविन्द का आदर्श क्या है? सीधे-सादे तौर पर थोड़े में हम कह सकते हैं कि यह आदर्श है मनुष्य को देवता बनाना, मर को अमर बनाना, जड़ को चेतन बनाना अर्थात् जड़ के अन्दर आत्मा को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करना। तो क्या यह आदर्श संभव है? व्यवहार्य है? हम इस लेख में क्रमशः यही दिखाने की चेष्टा करेंगे कि यह संभव है, और व्यवहार्य है, बल्कि साथ ही यह अनिवार्य भी है।

सबसे पहले हम यह देखें कि यह संभव है। साधारणतया लोग यह समझते हैं कि यह आदर्श असंभव है, एक मिथ्या कल्पना है, क्योंकि उन्हें इसके अन्दर स्पष्ट ही स्वतोविरोध दिखायी देता है। उनका कहना है कि क्या देवत्व ठीक मनुष्यत्व के विरुद्ध नहीं है, अमरत्व मृत्यु के, आत्मा जड़ के एकदम विपरीत नहीं है? ये तीनों जोड़े तो ऐसी दो दो स्वतंत्र वस्तुओं से बने हुए हैं जिन दोनों में परस्पर कोई मेल ही नहीं। मायावाद की ठीक ऐसी ही मान्यता है। परन्तु फिर भी क्या यह आवश्यक और अनिवार्य है कि यह बात ऐसी ही हो? आखिरकार मायावाद ने इस विरोध को एक स्वतःसिद्ध सिद्धान्त ही तो मान लिया है और इसी तरह दूसरे भी किसी अन्य स्वतःसिद्ध सिद्धान्त को मानकर चल सकते हैं। सच बात तो यह है कि जीवन और जगत् संबंधी जितने भी विचार और मत हैं वे सभी मूलतः किसी-न-किसी आध्यात्मिक अनुभूति के ऊपर अवलंबित हैं और प्रत्येक ऐसी अनुभूति का एक-न-एक अपना स्वतःसिद्ध सिद्धान्त होता है।

तो हम आरंभ में ही यह बात अस्वीकार करते हैं कि जड़ और आत्मा, देह और देही या मनुष्य और देवता के बीच कोई विभेद या विरोध है या होना अनिवार्य है। हम एक ऐसी अनुभूति, एक ऐसे साक्षात्कार को आधार में रखकर चलते हैं जो इस द्वैत के बीच मूलतः एकत्व और तादात्म्य का होना घोषित करता है। इसी बात को हमें सबसे पहले स्पष्ट और निश्चित रूप में स्थापना के तौर पर मान लेना होगा। इसके बाद फिर यह प्रश्न उठता है कि किस प्रकार ये दोनों तत्त्व एक और अभिन्न हैं और इस प्रश्न पर अवश्य यहाँ कुछ विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि यहाँ पर यह संदेह किया जा सकता है कि क्या ये दोनों ठीक उसी अर्थ में एक और अभिन्न हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस अर्थ में 'सूर्य' और 'आफ़ताब' या 'जल' और 'H_2O' (अर्थात् २ भाग हाइड्रोजन + १ भाग आक्सिजन जिनके मिलने से पानी बनता है) एक और अभिन्न हैं ? क्या मत-मतान्तर के निरर्थक झगड़े को अलग रख हम यह नहीं कह सकते कि यह एक सार्वदेशिक, सनातन और अटल अनुभव है कि देवता (भगवान्) को प्राप्त करने के लिये हमें मनुष्य को अवश्य पीछे छोड़ना चाहिये, अमर बनने के लिये हमें पहले मर्त्य अवस्था से अवश्य ऊपर उठना चाहिये और आत्मा में निवास करने के लिये हमें जड़ को अवश्य अस्वीकार करना चाहिये ? इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर है, बात ऐसी ही है और ऐसी नहीं भी है। क्योंकि वास्तव में इस पहेली को जितना जटिल बना दिया गया है उतनी जटिल यह है नहीं।

एक प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति के अनुसार जड़ केवल अपने बाह्य और प्रत्यक्ष रूप में ही आत्मा से भिन्न मालूम होता है और उसकी यह भिन्नता भी केवल दीखने में है और आपेक्षिक ही है। यहीं इस पहेली की प्रधान ग्रंथि है। इस दृष्टि के अनुसार आत्मा ही जड़ का रूप धारण करता है, वही जड़ भी है—अन्नं ब्रह्म एव। आत्मा चेतना (चित्) है और जड़, कहते हैं, अचेतना (अचित्) है। परन्तु हमारे विचार में यह कोई जरूरी नहीं है, और न ऐसा है ही, कि अचेतना पूर्ण रूप से चेतना के अभाव या एकदम लोप की अवस्था हो; अचेतना चेतना की आत्म-समाहित या आच्छादित एक अवस्थामात्र है। अगर हम चेतना को जागरूकता की अवस्था कहें तो अचेतना को विस्मृति के सिवाय और कुछ नहीं कह सकते। अचेतना वह अवस्था है जिसमें चेतना मानो प्रतीक्षा कर रही हो या किसी बाधा के कारण अभिव्यक्त न हो पाती हो; केवल सुप्त हो, नष्ट न हो गयी हो।

इस तरह जड़ का चेतन (आत्मा) बन जाना, चैतन्यमय हो जाना केवल इसी एक कारण से संभवनीय हो जाता है कि जड़ और चेतन (आत्मा) पूर्ण रूप से परस्पर भिन्न, विरोधी या असमान तत्त्व नहीं हैं, बल्कि वे दोनों एक ही सद्वस्तु हैं; एक ही सद्वस्तु केवल दो अलग-अलग रूपों में विद्यमान है, जैसे एक ही पानी भाप और बर्फ दो विभिन्न रूप ग्रहण करता है। आत्मा जड़ बना है और जड़ अपने मूल रूप में आत्मा ही है। जहाँ आत्मा जड़ के अन्दर अपने-आपको छिपाये हुए है वहाँ जड़ स्वयं एक ऐसा रूप है जो आत्मा के अन्दर गुप्त रूप से विद्यमान है। जड़ आत्मा से ही उत्पन्न हुआ है। आत्मा स्वयं अपने आप को दबाकर, धीरे-धीरे जमकर, अन्त में ठोस जड़ात्मिका सद्वस्तु के रूप में परिवर्तित हो गया है। दाना बन्धने (Crystallisation),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आपको सीमित करने तथा अपने ही अन्दर पूर्णरूपेण एकाग्र होने की प्रक्रिया के द्वारा आत्मा जड़ बन गया है। यह प्रक्रिया आत्मविकृति की एक विशेष धारा का अनुसरण करती है और क्रमशः नीचे की ओर कई स्तरों को पार करती हुई अन्तिम अवस्था को प्राप्त होती है। यह आत्मा की आत्मविकृति की अनन्त प्रकार की प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया है जो एक विशेष उद्देश्य और निश्चित परिपूर्णता को सामने रख कर चुनी गयी है और स्वतन्त्र रूप से विकसित की गयी है।

निवर्तन (Involution) की एक क्रिया क्रमशः चेतना के अनेक स्तरों से होती हुई, धीरे-धीरे बाहरी मूल्यों को घटाती हुई नीचे की ओर उतरी और अन्त में उसने आत्मा को जड़ के अन्दर पर्यवसित कर दिया। अब अगर यह बात ऐसी ही हो तो फिर यह बात भी सहज ही समझ में आ जाती है कि विवर्तन (Evolution) की, प्रत्यागमन की एक क्रिया के द्वारा फिर से जड़ आत्मा के अन्दर उन्नीत हो सकता है। इस तरह आत्मा का जड़ बनना ही, जड़ का आत्मा का एक विशेष रूप होना ही तुरत इस सम्भावना को उत्पन्न कर देता है कि जड़ आत्मा में रूपान्तरित हो सकता है। तब इस संभावना को स्वीकार कर लेने पर भी यहां यह तर्क किया जा सकता है कि उस समय इस रूपान्तर का फल होगा आत्मा के अन्दर जड़ का विलीन हो जाना; इसका अर्थ होगा उस विशेष रूप और संगति का विनाश जिसे हम जड़ के नाम से पुकारते हैं। आधुनिक विज्ञान के प्रताप से आज हम सभी यह अच्छी तरह जानते हैं कि जड़ को शुद्ध शक्ति के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है, परन्तु उस समय जड़ जड़ नहीं रहता, वह अपने जड़ स्वरूप को एक दम खो देता है।

यही कुछ पुराने आध्यात्मिक साधन-मार्गों की शिक्षा है। उनका कहना है कि यद्यपि आत्मा और जड़ के बीच कोई ऐसी खाई नहीं है जिसे पाटा न जा सके, यद्यपि ये दोनों एक दूसरे से एकदम भिन्न नहीं हैं बल्कि एक ही सद्वस्तु हैं, फिर भी आत्मा मूलगत सद्वस्तु है और जड़ उसीका एक निकृष्टतर रूप। जड़ अनन्त आत्मा से ही बाहर निकला है और यह फिर अन्त में केवल आत्मा के ही अन्दर समा सकता है और इसे समा जाना ही होगा।

यहीं पर हमें दूसरे प्रधान सिद्धान्त को जानने की आवश्यकता है जिसे श्रीअरविन्द की आध्यात्मिक दृष्टि प्रस्थापित करती है और वह यह है कि आत्मा का एक 'निकृष्टतर' रूप, 'निम्न' स्तर में उसकी प्रसुप्तावस्था, अपने बाह्य और क्रियाशील स्वभाव और व्यवहार में भी, वास्तव में या मूलतः केवल क्षणिक नहीं है; अप्रधान सद्वस्तु नहीं है; इसका एकमात्र कार्य केवल वास्तविक सद्वस्तु को बाधा देना, घटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना और छिपा देना नहीं है जिसके कारण मूलस्रोत की ओर वापस आने के समय रास्ते में धीरे-धीरे उसे त्याग दिया जाय और नष्ट कर दिया जाय। वास्तव में इस 'निकृष्टतर' रूप का कार्य द्विविध होता है: अवरोहण के (नीचे उतरने के) मार्ग में यह उच्चतर सद्वस्तु को सीमित करता है, आच्छादित करता है, पथभ्रष्ट करता है और अन्त में उसे एकदम मिथ्या बना देता है, और इसके साथ ही साथ वह जिसे कि यह आवृत करता है उसे स्थूल रूप भी प्रदान करता है, क्रियाशील बनाता है और सशरीर करता है। किन्तु आरोहण के मार्ग में अर्थात् हीनतर से उच्चतर अवस्था की ओर प्रत्यागमन करने की अवस्था में यह कोई आवश्यक नहीं है कि यह क्रिया सदा अन्तर्धान होने और विलुप्त हो जाने की ही हो; बल्कि यह क्रिया शुद्ध करने, आलोकित करने और परिपूर्ण करने की भी हो सकती है। उस अवस्था में हमारा दृष्टान्त यह नहीं होगा कि जड़ अपना जड़त्व खोकर शुद्ध शक्ति के रूप में परिवर्तित हो सकता है, बल्कि यह होगा कि जड़ रूपान्तरित होकर एक ज्योतिर्मय वस्तु बन सकता है जिस ज्योतिर्मय होने की प्रक्रिया में वह अपने आपको नष्ट नहीं कर देगा बल्कि वह एक अमर प्रकाशमय उपादान द्वारा नये सिरे से गठित हो जायगा।

रूपान्तर करने वाले क्रमविवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया का होना केवल संभव या व्यवहार्य ही नहीं है बल्कि यही है जो स्वयं प्रकृति के अन्दर हो रहा है। प्राकृतिक क्रमविवर्तन का यही अर्थ है, इससे कम कुछ भी नहीं। सर्वप्रथम क्रमविवर्तन का अर्थ है प्रकृति की विलोम गति, क्योंकि यह निवर्तन की प्रक्रिया के प्रत्यागमन की एक क्रिया है। हम कह चुके हैं कि परम सत्य और सद्वस्तु ने—जिसे सच्चिदानन्द भी कहते हैं—आत्म-प्रकाश की शक्ति को कम करने वाले या आत्मगोपन के परिमाण को बढ़ाने वाले अनेक स्तरों और अवस्थाओं से होकर—जिनमें प्रधान हैं, अतिमानस, अधिमानस, उच्चतर मन, मन, प्राण और शरीर या जड़—धीरे धीरे अपने आपको घनीभूत किया और अनेक रूपों को ग्रहण किया। परन्तु जड़ की अवस्था तक, जो इस निवर्तन की गति की अन्तिम अवस्था है और जो अपनी मूल अवस्था से अत्यन्त दूर दिखायी देती है, पहुँचने के बाद यह गति पीछे की ओर लौट पड़ती है और फिर उन्हीं स्तरों से हो कर जिन्हें वह पार कर आयी है, ऊपर जाने की चेष्टा करती है। परन्तु यह प्रत्यागमन की गति लुप्त या नष्ट हो जाने की प्रक्रिया नहीं है बल्कि महत्तर परिपूर्णता की और समन्वय साधित करने की प्रक्रिया है, उन्नयन की और साथ ही साथ सर्वांगपूर्ण बनाने की प्रक्रिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़ से ही क्रम-विवर्तन की क्रिया आरम्भ होती है। इस अवस्था में जड़ एक भौतिक-रासायनिक पदार्थमात्र होता है। परन्तु सब से पहिले यह उस समय परिवर्तित और रूपान्तरित होता है जब प्राणतत्त्व इसे ग्रहण करता है, जब यह प्राण-क्रिया को स्वीकार कर सजीव प्राणियों की सृष्टि का आधार बनता है। इस समय यह प्राणमयीभूत जड़ अपने मूल रूप भौतिक-रासायनिक पदार्थ से एकदम भिन्न प्रकार की क्रिया करता है। उसके बाद जड़ में इससे भी महान् परिवर्तन उस समय दिखायी देता है जब यह और भी ऊपर उठता है और इसे मन-तत्त्व ग्रहण करता है, जब यह मनोमय सृष्टि की तरंगों को स्वीकार करता है और अपने अन्दर रूप ग्रहण करने देता है। इस मनोमयीभूत जड़ में एक तीसरे ही प्रकार का आचरण दिखायी देता है। इस तरह जब हम प्राकृतिक क्रमविवर्तन की धारा को ध्यानपूर्वक देखते हैं तो हमें मालूम होता है कि जड़ धीमी गति से रूपान्तरित होता हुआ अधिकाधिक नमनीय और स्वतः स्फुरणायुक्त होता जा रहा है, उत्तरोत्तर संज्ञापूर्ण और प्रकाशयुक्त होता जा रहा है।

यह क्रम-विकास प्रकृति के अन्दर सतत और स्थायी रूप से चल रहा है और प्रकृति निरन्तर जड़ के अन्दर अधिकाधिक उच्चतर रूपान्तर साधित करने का कठिन प्रयास कर रही है। वर्त्तमान स्थिति में भले ही यह कल्पना करना कठिन हो कि जड़ भविष्य में कैसा रूप ग्रहण करेगा या किन किन अवस्थाओं में से होकर गुजरेगा जैसा कि अवश्य ही एकदम आरम्भ में मनोमयीभूत जड़ या प्राणमयीभूत जड़ के विषय में कल्पना करना असम्भव था, परन्तु इसी कारण इस बात के अनिवार्य होने में कोई कमी नहीं आ जाती।

प्रकृति के अन्दर इस विकासोन्मुखी प्रवृत्ति के होने के कारण ही यह अनिवार्य हो जाता है कि एक अवस्था ऐसी आयेगी जब जड़ के अन्दर एक दूसरा परिवर्तन दिखायी देगा, और भी गम्भीर और पूर्ण रूपान्तर साधित होगा, मन से भी एक उच्चतर सद्वस्तु इसे अधिकृत करेगी और उस सद्वस्तु की ज्योति और शक्ति इसके अन्दर ओत-प्रोत हो जायगी, आध्यात्मिक चेतना प्रकट होगी और इसके साथ ही साथ अध्यात्ममयीभूत जड़, आत्मचैतन्यमय जड़ उद्भूत होगा, जैसे कि इसके पूर्व मनोमय चेतना और मनोमयीभूत जड़ उत्पन्न हुआ था और उससे भी पहले प्राणमय चेतना और प्राणमयीभूत जड़। अवश्य ही इस आत्मचैतन्यमय अवस्था के भी अनन्त स्तर हो सकते हैं; क्योंकि प्रकृति आत्मा को उतने ही अंश में पार्थिव शरीर में अभिव्यक्त कर सकेगी जितने अंश में स्वयं शरीर आत्ममयीभूत हो सकेगा। एकमात्र पूर्ण क्रियात्मिका आध्यात्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतना में ही वह शक्ति होगी कि वह शरीर, प्राण और मन को पूर्ण रूप से आत्मचैतन्यमय बना सके। परम आत्मा की इसी शक्ति और स्तर को श्रीअरविन्द 'अतिमानस' के नाम से पुकारते हैं।

अब हम जरा यह समझने की भी चेष्टा करें कि इस उन्नयन और रूपान्तर का स्वरूप क्या होगा। उदाहरण के तौर पर हम मन को लें। हम यह जानते हैं कि मन एक यन्त्र है जो स्वयं आत्मा के ज्ञान या सत्य चेतना को प्राप्त करने में असमर्थ है। अपने वर्त्तमान स्वरूप में यह केवल उस ज्ञान और चेतना के अनुपयुक्त ही नहीं है बल्कि उनकी प्राप्ति में बाधक भी है। इसकी तरंगों और रचनाओं से उच्चतर छन्द विकृत और नष्ट हो जाता है; यही कारण है कि उपनिषदों में यह बार बार कहा गया है कि—

नैषा तर्केण मतिरापनेया (कठ)
या तान् मनसा न मनुते (केन)
अथवा न मनसा प्राप्तुं शक्यः (कठ) इत्यादि

—फिर भी वही मन जब स्वतंत्र नहीं रहता, स्वयं अपने आप अपना स्वामी नहीं रहता, बल्कि उच्चतर ज्योति के अधीन हो जाता है, उसके अनुकूल बन जाता है, तब वह उस ज्योति के मूर्तिमान् होने का एक यंत्र बन जाता है, पार्थिव जीवन में उसके प्रवाहित होने और अभिव्यक्त होने में एक प्रणाली का कार्य करता है। इसी कारण उपनिषद् में यह भी वचन आता है कि "मनसैवेदमवाप्तव्यम्" (कठ) अर्थात् मन से भी इसे जानना चाहिये। जो मन तर्क-वितर्क की क्रिया द्वारा कठोरतापूर्वक सीमित नहीं है बल्कि दिव्य स्फुरणा, अन्तर्ज्ञान और सत्यदृष्टि तथा और भी परे के उच्चतर स्रोतों के प्रकाश और छन्द के अन्दर पुनः गठित हुआ है वह तुरत एक रूपान्तरित पात्र, एक सुयोग्य यंत्र बन जाता है जो साधारणतः बहुत दूर और ऊपर रहने वाले सत्यों और सद्वस्तुओं को भौतिक और जड़ात्मक क्षेत्र में अभिव्यक्त करता और क्रियाशील बनाता है। उदाहरण के तौर पर कवि या कलाकार के अन्दर प्रायः कुछ इसी तरह की बात देखी जाती है यद्यपि वह होती है अत्यन्त कम मात्रा में। एक कवि जो सूक्ष्म दृष्टि और दिव्य स्फुरणा के वश होकर कार्य करता है वह मन से रहित नहीं होता, न उसे ऐसा होने की कोई आवश्यकता ही है। उसका मन नष्ट नहीं हो जाता और न निष्क्रिय ही बन जाता है, बल्कि वह उन्नत हो जाता है, एक नये सांचे में ढल जाता है, और भी ऊँची अवस्था को प्राप्त हो जाता है। अगर उसके अन्दर विचार-वितर्क की क्रिया बंद भी हो जाय तो भी इसका मतलब यह नहीं है कि उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक शक्ति ही नष्ट हो गयी, बल्कि उसका मतलब है कि उसकी मानसिक शक्ति एक नयी कोटि में और भी बढ़ गयी। ठीक यही बात मनुष्य की चेतना और सत्ता के अन्य भागों और स्तरों के विषय में भी लागू हो सकती है।

अवश्य ही, अगर कोई चाहे तो आत्मा और जड़ के बीच विद्यमान चेतना के इन मध्यवर्ती स्तरों को एक किनारे छोड़कर सीधे, दोनों के बीच एक प्रत्यंचा की भांति ऊपर की ओर जा सकता है। परन्तु यह कोई जरूरी भी नहीं है कि संन्यासियों के इस सूने, सीधे रास्ते से ही ऊपर जाया जाय; हम और भी विस्तृत, वृत्ताकार या सर्वतोमुखी गति का अनुसरण कर सकते हैं जो केवल पहुँचाती ही नहीं प्रत्युत परिपूर्णता भी प्रदान करती है। स्वयं प्रकृति की यही क्रियापद्धति है; क्योंकि प्रकृति संपूर्ण सद्वस्तु है। पहली ऐकान्तिक गति केवल व्यष्टि के लिये है और सर्वतोमुखी समष्टि दृष्टि में इसका भी मूल्य और अर्थ है, क्योंकि समष्टि की अग्रगति और परिणति में यह भी सहायता करती है।

हमने यह देख लिया कि जड़ का आत्ममय होना ही उसकी अनिवार्य परिणति है जिसे पूरा करने का प्रयास विवर्त्तनशीला प्रकृति कर रही है। अब हम थोड़ा और आगे बढ़कर यह कह सकते हैं कि यह दूर भविष्य में एक-न-एक दिन पूरी होनेवाली कोई अनिवार्य बात नहीं है, बल्कि लगभग निकट भविष्य में पूरी होने वाली एक निश्चित बात है। क्योंकि केवल प्रकृति की विवर्तनकारिणी शक्ति ही इस कार्य में अकेली नहीं लगी हुई है, वही इस महान् उद्देश्य के पूरा होने का एकमात्र आश्वासन नहीं है। इस कार्य की सिद्धि के लिये स्वयं भगवान् समय-समय पर अवतरित होते हैं, सहयोग देते हैं और विवर्तनकारिणी शक्ति को अपने हाथ में लेते हैं। इस पार्थिव लीला के अन्दर जब जिस सत्य को स्थापित करना होता है तब उस सत्य को लेकर वह एक क्रियात्मिका चेतन शक्ति के रूप में अवतरित होते हैं, क्रिया करते हैं और सर्व प्रथम ऊपर से, फिर अन्दर से और वस्तु की समता में होकर विकासात्मिका शक्ति को आगे बढ़ाते हैं और इस तरह अकेली प्रकृति को जिस कार्य के करने में शायद कई युग—ब्रह्मा के कई युग—लग जाते उसे वह शीघ्रता से थोड़े समय में ही पूरा कर डालते हैं। वास्तव में प्रकृति के क्रमविवर्तन के प्रायः सभी संधिक्षणों में, जब उसने सृष्टि के एक स्तर से दूसरे स्तर में जाने की चेष्टा की, इसी प्रकार के अवतरण के द्वारा कार्य बड़ी शीघ्रता के साथ पूरा हुआ है। यह अवतरण उस पार्थिव वस्तु पर जो और किसी प्रकार भी न तो शीघ्र आगे बढ़ती और न परिवर्तित होती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानो एक अदम्य स्थूल दबाव डालता है और इस तरह परिवर्तन का कार्य बड़ी शीघ्रता से पूरा हो जाता है।

अवश्य ही भागवत चेतना के इस अवतरण के भी विभिन्न स्तर हैं; जब जो कार्य पूरा करना होता है तब उसी कार्य के अनुसार अवतरण भी होता है। विकसनशीला प्रकृति के निम्नतर क्षेत्रों में, जिन्हें मन, प्राण और जड़ का निम्नतर गोलार्द्ध भी कहते हैं, अवतरण आंशिक, अप्रत्यक्ष और आपेक्षिक होता है, क्योंकि वहां जड़ में थोड़ा-बहुत परिवर्तन भर करना होता है, उसका पूर्ण रूपान्तर करना नहीं; रूपान्तर का कार्य तब सम्भव होता है जब प्रकृति मन के अन्दर पहुंचती है और वहां उससे भी आगे, उच्चतर गोलार्द्ध में, क्रियात्मक आध्यात्मिक सत्य के क्षेत्र में पदार्पण करने के लिये अपने आपको प्रस्तुत करती है।

जब प्रकृति मन को अतिक्रमण करने का प्रयास करती है तब उसके अन्दर भागवत चेतना के अधिकाधिक प्रत्यक्ष और पूर्ण अवतरण के लिये द्वार खुल जाता है और जब यह चेतना अपने उच्चतम स्तर से अर्थात् अतिमानस लोक से अवतरित होती है तब पार्थिव जीवन के सभी साधारण मूल्य बदल जाते हैं, सारा जीवन शीघ्र और पूर्णतर रूप से रूपान्तरित होने लगता और ऊर्ध्वस्थित आध्यात्मिक सद्वस्तुओं की प्रतिमूर्त्ति बनने लगता है। फिर अन्त में भागवत चेतना का परिपूर्ण मात्रा में अवतरण, अपनी परम पवित्रता और परिपूर्णता के साथ उसका परिप्लावन अनिवार्य हो जाता है; क्योंकि केवल वही उस पूर्णता को सिद्ध कर सकता है जो प्रकृति का चरम लक्ष्य है। केवल तभी जड़ और प्राण भी स्वयं भगवान् के प्रत्यक्ष स्पर्श और आलिंगन के सामने पूर्ण रूप से हार मान सकते हैं अर्थात् पूर्ण मात्रा में रूपान्तरित हो सकते हैं।

इस युग में हम भी प्रकृति के क्रमविवर्तन के इतिहास के एक ऐसे ही संधि-क्षण में पहुंचे हुवे हैं। इस बार के अवतरण का पूरा पूरा अर्थ क्या होगा, तत्काल कितनी मात्रा में क्या कार्य सिद्ध होगा, अवतरण का आकार और प्रकार क्या होगा— ये सब बातें ऐसी हैं जो कि पर्दे की ओट ही रहेंगी जब तक यह कार्य सिद्ध नहीं हो जाता। तो भी आध्यात्मिक दृष्टि तथा श्रद्धालु हृदय के सामने इसका थोड़ा-सा रहस्य अवश्य खुल सकता है अथवा उन्हें थोड़ा-बहुत मालूम हो सकता है जिन्हें स्वयं भगवान् कृपा करके बताना चाहें—यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भूख !

(लेखिका—श्री लीलावतीजी)

याद पड़ता है, तब बच्ची थी। माता पिता अपनी लाड़ली को देख देख कर खिल उठते थे। दादा, दादी शैशव की किलकारियां सुन कर अपना जीवन सार्थक समझते थे। खाना, चहकना और रात को दादी के बिस्तरे पर पड़ कर राजा और उसकी सात रानियों की कहानी सुनना—इन तीन कामों के अतिरिक्त और भी कोई काम हो सकता है इसका ज्ञान शायद तब नहीं था। स्कूल और घर दोनों तक ही सारा संसार सीमित था। पर वह तृप्ति, वह पूर्णता क्या पूर्ण थी इसमें, न जाने क्यों, अब सन्देह हो रहा है। आज जान पड़ता है तब भी वह तृप्ति कहीं कोई अभाव लिये हुए थी। एक भूख शायद तब भी थी।

× × × ×

धीरे धीरे बड़ी हुई। शैशव ने चुपचाप बड़ी उदारता के साथ अपना समस्त अधिकार कौमार्य को सौंप दिया। दादी की कहानियों में अब वह रस नहीं आता था। उस रस का स्थान अब एक उपेक्षामय हँसी ने ले लिया था। माता पिता की संगति से जी खिंचने लगा। पहले की सरलता और सन्तोष धीरे धीरे लोप हो रहे थे और मन नई नई उमंगों और आकांक्षाओं से ओत-प्रोत हो उठा। स्कूल कालिज की सखी सहेलियों की बातों में, उनके सहवास में जो आनन्द-प्राप्ति होती थी वह एक नई वस्तु प्रतीत हुई। दिन प्रति दिन वह आकर्षण बढ़ने लगा। पर वह पहले की भूख तो जैसी की तैसी ही बनी रही। कहीं कोई कमी है, कहीं कोई कमी है—की पुकार तो उस अन्तरतम प्रदेश से सदा ही निकलती रही। पर तब इसका ज्ञान शायद उतना नहीं था। और फिर उस समय अन्तर की ओर देखने और समझने का अवकाश और बुद्धि भी किसे थी ? हाँ, इतना याद पड़ता है कि जितना ही मन उस समय नित नये नये विविध उपायों से उस कमी को दूर करने का विफल प्रयास करता था उतनी ही तो यह भूख बढ़ती थी।

× × × ×

समय के साथ साथ सहेलियां और उनका प्रेम समुद्र में उठती हुई तरंगों के समान पीछे हटने लगा और उनका स्थान एक नये संसार ने ले लिया। एक नये जीवन का पदार्पण हुआ। अपना घर है, पति है, सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण हैं, सजा सजाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकान है। वाह ! इससे अधिक सुख और कहाँ मिल सकता है। लोगों को ऐसे भाग्य पर ईर्ष्या होती थी। मन को भी यह विश्वास हो गया था कि यह सब कुछ 'अपना' पाकर इस भूख के शान्त होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। इतने दिन की प्रतीक्षा के बाद हृदय को अब शायद वह वस्तु मिल जायगी जिसके अभाव में वह रह रह कर मचल उठता था। और कुछ समय तक ऐसा प्रतीत भी हुआ कि मानों सब कुछ मिल गया है। एक अनोखी तृप्ति सी जान पड़ी थी। पर यह क्या ? उन मनोरंजन के साधनों का पहला ज्वारभाटा शान्त होते ही फिर वही अतृप्ति, वही अभाव ! हृदय निराश हो गया, ठगा सा खड़ा रह गया। फिर एकबारगी ही चिल्ला उठा—हा ! मैंने धोखा खाया है। इनसे मेरी भूख शान्त नहीं होगी। मेरी तृप्ति का साधन कहीं और है, कहीं और है, और तब वह भूख अपने पूरे वेग से छटपटा उठी। मन से न रहा गया, उसके काम में बाधा पड़ने लगी। वह झुंझला उठा—यह हृदय आखिर चाहता क्या है ? किस वस्तु का अभाव है इसे ? पर बताने में वह सदा की भांति तब भी असमर्थ ही रहा। उसकी भूख, उसकी अतृप्ति वैसी की वैसी ही बनी रही।

एक दिन, हां, एक दिन उसे ज़रा सा—बहुत ही ज़रा सा इस भूख के स्रोत का आभास मिला था। कहीं से एक छोटी सी पंक्ति कान में पड़ गई थी। 'हमारे जन्म मरण के साथी।' अरे यह साथी कौन ? किस साथी के लिये यह व्यथापूर्ण स्वर फूट निकला है ? अब भी अच्छी तरह याद है उस समय हृदय एकबारगी चौंक पड़ा था ? हैं ! कहीं यही भूख ही मेरी भी तो नहीं है ? मन, अपनी विद्वत्ता का कायल मन एक दम ठहाका मार कर हंस पड़ा—भूख ! अरे भूख कैसी ? इस भावुकता से कहीं किसी की भूख मिटती है ? हृदय, दुर्बल हृदय तब भी सहम गया। आगे बोलने की उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी। फिर वही अतृप्ति, वही असफल साधना !

फिर एक दिन, एक दिन जैसे वह सोते से जग पड़ा। उसका भीतर एक अपूर्व ज्योति से जगमगा उठा। उसकी खोज का जैसे आज अन्त हो गया। एक शान्तिप्रद प्रसन्नता से वह व्याप्त हो उठा—इतने दिन बाद, इतने दिन बाद आज यह तृप्ति कैसी ? इस शीतलता का अनुभव तो पहले कभी नहीं हुआ था। जिसको वह अब तक कुछ चेतन पर अधिकतर अचेतन मन से ढूंढता फिरता था उसी अपने प्रेमपात्र को अपने भीतर ही पाकर वह आनन्द के आवेग में रो दिया। आज जैसे उसकी समस्त शक्तियां एकत्रित होकर पूरे प्रवाह से अपने प्रेमपात्र के चरणों की ओर जा रही थीं। जिसकी उसे भूख थी, जिसको वह पाने के लिये इतने दिनों से छटपटा रहा था, उसको सामने पाकर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आश्चर्यमयी प्रसन्नता से खिल उठा। फिर एकबारगी ही अपने को उसके चरणों में डालकर वह शान्त स्थिर पड़ रहा। तब उसने मन-ही-मन प्रार्थना की थी, "यदि इतने दिन बाद बुलाया है तो अब छोड़ना मत, हाँ, कभी न छोड़ना। यह मेरा बड़ा मंहगा सौदा है।" आश्वासन पा वह तृप्त हो गया।

× × × ×

अब उसमें वह अतृप्ति नहीं है। उस अभाव, उस भूख का स्थान अब एक ऐसी तृप्ति ने ले लिया है जिसमें मधुरता है, प्रेम है, मीठी-मीठी वेदना है और क्या-क्या है, यह वही जानता है। मन अब भी उसे बहकाने की चेष्टा करता है—'सब भूल है, सब धोखा है।' पर हृदय के कान अब बहरे हो चुके हैं। वह सुनकर भी नहीं सुन पाता। वह अब अपना नहीं है किसी और का है। उसी में अपने को लीन कर देने में ही उसकी वह 'भूख' अब शान्त होगी, ऐसा उसका विश्वास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां

(शेष भाग)

(लेखक—श्रीहरिदास चौधरी)

धन-संपत्ति, ऐश्वर्य, प्रभाव-प्रतिष्ठा इत्यादि के विषय में प्रचलित मत यह है कि ये सब आध्यात्मिक जीवन के एकदम विरोधी हैं—ये केवल साधना के विघ्न, रास्ते के कांटे हैं। इसी कारण हमारे देश के बहुत से सच्चे योगी और साधक ऐश्वर्य का मार्ग एक किनारे छोड़कर आगे चले गये। उन्होंने बहुमूल्य मणि-मुक्ता को 'लोष्टवत्' समझा; सोना और मिट्टी, मिट्टी और सोना इन दोनों को एक और अभिन्न माना। हमने यह सीखा है कि संन्यास-मूलक निवृत्ति-मार्ग ही भगवान् को प्राप्त करने का अत्यन्त प्रशस्त पथ है, दरिद्रता और रिक्तता ही इस पृथ्वी पर आध्यात्मिकता की श्रेष्ठ अवस्था है। धन-ऐश्वर्य-विषयक ऐसा मनोभाव मन के एक अत्यन्त सुन्दर निर्लिप्त भाव को सूचित करता है, ऐकान्तिक और विशुद्ध भगवत्प्रेम का परिचय देता है। किंतु जो लोग केवल भगवान् के प्रेमी-पुजारी न हो उनके कर्मी साधक होना चाहें, जो लोग मां के शक्ति-प्रवाह के केंद्र बनना चाहें, जो लोग दिव्य जीवन के शिल्पी बनना चाहें, उन्हें यह याद रखना चाहिये कि इससे भी कोई बड़ी बात है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संन्यास-मूलक निवृत्ति के मूल में एक बहुत बड़ा सत्य वर्तमान है तो भी वह सत्य अर्धसत्य है, विकलांग और अपूर्ण है। भोगैश्वर्य का त्याग कर दारिद्र्य-व्रत को ग्रहण करना एक बड़ी बात है, परन्तु उससे भी बड़ी बात है चित्त की समता। हम यहां पहले इसी विषय में दो-एक बातें कहेंगे।

ऐश्वर्य और आध्यात्मिकता

अर्थ और ऐश्वर्य के विषय में श्रीअरविन्द का मत बड़ा ही अपूर्व और नवीन है। श्रीअरविन्द की दृष्टि कितनी गंभीर, व्यापक और समन्वय-मूलक है इसका ज्वलंत दृष्टान्त हम यहीं पाते हैं। उनका कहना है कि अर्थ या धनबल एक विश्वजनीन शक्ति की ही स्थूल अभिव्यक्ति है। वह शक्ति मां की ही शक्ति है; प्राण और जड़ के स्तर में वह शक्ति धन-सम्पत्ति के रूप में प्रकट हुई है; इसी कारण हमारे पार्थिव जीवन के परिपूर्ण विकास के लिये उसकी अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव धन स्वयं किसी अनर्थ का कारण नहीं हो सकता। अनर्थ का कारण है अनधिकारी के हाथों अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दुर्व्यवहार। पृथ्वी की सारी धन-संपदा वास्तव में मां भगवती की है। मनुष्य तो केवल उस मातृ-संपदा का भंडारी और रक्षक है, उसका असली मालिक नहीं। इसलिये कमाये हुए सब धन को मां की पूजा में और पृथ्वी पर मां का उद्देश्य पूरा करने में लगा देना ही मनुष्य का सबसे बड़ा कर्तव्य है। इस कर्तव्य को ठीक-ठीक पूरा करने की जिसे योग्यता है, बस, वही धन प्राप्त करने का सच्चा अधिकारी है। आज अधिकांश धनी मनुष्य धन प्राप्त करने के सच्चे अधिकारी नहीं हैं, धनपर उनका अपना अधिकार है भी नहीं, बल्कि धन ही उनके ऊपर अपना अधिकार जमाये हुए है। अपने धन के दास होने के कारण वे अपने धन को अपने आत्म-कल्याण में, आत्मोन्नति में नहीं खर्च करते, मां भगवती का उद्देश्य पूरा करने में नहीं लगाते, बल्कि उन सब दानवीय शक्तियों की तृप्ति के लिये व्यय करते हैं जिन्होंने अपनी चरितार्थता के लिये उन धनवानों को अधिकृत कर रखा है। हम लोग साधारण तौरपर अपने धन का व्यवहार करते हैं अपने क्षुद्र 'अहं' की पूजा के लिये—भोग की लालसा और मान-प्रतिष्ठा की आकांक्षा को तृप्त करने के लिये। फलस्वरूप हमारा धन हमारे आत्मा की अभिव्यक्ति का मार्ग रोककर खड़ा हो जाता है। परन्तु यह दोष अर्थ का नहीं है, यह दोष तो हमारी अज्ञानता का, हमारी आसक्ति और मोहांधता का है। अगर हम उचित रूप में व्यवहार करना सीख जायं तो यह धन ही हमारे पार्थिव जीवन को सर्वांगसुन्दर बनाने वाली एक अनिवार्य शक्ति बन जायगा। पूर्ण दिव्य जीवन को प्रतिष्ठित करने के लिये ऐश्वर्य और सौंदर्य की अधिष्ठात्री देवी की आवश्यकता को क्या हम कभी अस्वीकार कर सकते हैं ?

भय या उपेक्षा का भाव होने से जो योगी धन-संपत्ति का त्याग करते हैं वे अपने पक्ष में दो बातें कह सकते हैं। पहली बात यह है कि अर्थ और काम मानो एक दूसरे से गुथे हुए हैं। कांचन का स्पर्श बड़े ही विचित्र ढंग से हमारे अन्दर कामना की आग जला देता है, योगी के अन्तःकरण की लुप्तप्राय भोगतृष्णा को नाना प्रकार से उद्दीप्त कर देता है। इसलिये साधना के पथ में सोने की थैली को सावधानी के साथ दूर रखना ही सबसे अधिक निरापद है। दूसरी बात यह है कि जो साधक धूलि-धूसरित इस ऐहिक जीवन का कोई निगूढ़ रहस्य स्वीकार नहीं करते, जिनका चरम लक्ष्य है जगत् के साथ सब प्रकार के संबंध को नष्ट कर भगवान् की चिद्घन और आनंदघन सत्ता के अन्दर निरंतर डूबे रहना, उनके लिये कांचन या अन्य किसी शक्ति के प्रयोग की वैसी कोई आवश्यकता नहीं हो सकती। वे चाहते हैं विश्वातीत शान्ति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये विश्वगत शक्तियां उनकी दृष्टि में तुच्छ हैं; वे चाहते हैं निश्चल भूमा चेतना में शाश्वत स्थिति, इसलिये कर्म-जीवन का सहायक अर्थ उनके लिये केवल प्रलोभन है। परन्तु हम जानते हैं कि पूर्णयोग का उद्देश्य हमारे इस ऐहिक जीवन को, इस नश्वर मर्त्य भूमि को भी लिए हुए है। पूर्णयोगी चाहता है विश्वातीत के अन्दर निहित आनन्द को विश्व के प्रत्येक स्तर में विचित्र छन्दों में अभिव्यक्त करना, अर्थात् उस लीला के खेले जाने में सहायक होना। पूर्णयोगी का लक्ष्य है सच्चिदानन्द की तुरीय शक्ति को मर्त्य के अन्दर उतार कर अपने इहजीवन को दिव्य रूप प्रदान करना। इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए कर्म अपरिहार्य है, और कर्म के लिए अर्थ, शक्ति आदि सब की आवश्यकता है। कांचन का त्याग कर जीवन के परे एक भूमानन्द को प्राप्त किया जा सकता हैं, परन्तु उस भूमानन्द को जीवन के प्रत्येक भाग में स्थापित करने के लिए, पार्थिव जीवन का सर्वांगीण विकास करने और पूर्णता प्राप्त करने के लिए कांचन की भी आवश्यकता है। तब यह बात यहां याद रखनी होगी कि पृथ्वी का सब मणि-कांचन मां भगवती का है, उन्हीं की इच्छा से उन्हीं का उद्देश्य पूरा करने के लिए पूर्णयोगी अपने अधिकार में आये हुए धन का उपयोग करेगा। इसलिए इस विषय में श्रीअरविंद की शिक्षा यह है कि पूर्णयोगी को दोनों भिन्नमुखी चरम मार्गों का त्याग करना होगा। एक ओर उसे अपने मन से सब प्रकार से भोगासक्ति और अर्थलोलुपता को समूल नष्ट कर देना होगा और दूसरी ओर अर्थविषयक सब प्रकार के संकोच और भय को निकाल बाहर करना होगा। पूर्णयोगी की प्रधान चेष्टा होगी चित्त की समता को बनाये रखना;—संपद् और विपद् में, ऐश्वर्य और दरिद्रता में, जीवन की भली बुरी सभी अवस्थाओं में मां की इच्छा को हृदयंगम करना। अगर दुःख-दैन्य आवे तो उसे हंसते हुए स्वीकार करना चाहिए; दारुण दरिद्रता के भीतर भी योगी का मन अचल, प्रशान्त रहना चाहिए, आत्मानुभूति के आनन्द से भरा हुआ होना चाहिए। परन्तु इसी कारण भला दरिद्रता के प्रति आसक्ति भी क्यों उत्पन्न होगी? रिक्तता ही आध्यात्मिकता की श्रेष्ठ अवस्था क्यों मानी जायगी? जब ऐश्वर्य का प्राचुर्य होगा तब उसका सद्व्यवहार भी करने के लिए तैयार रहना चाहिए; विपुल ऐश्वर्य के अन्दर भी योगी का मन निर्लिप्त, अनासक्त, नित्ययोगयुक्त रहना चाहिए। योगी को अपनी किसी लालसा को चरितार्थ करने के लिए धन-ऐश्वर्य का उपयोग नहीं करना चाहिए, बल्कि पृथ्वी पर भागवत जीवन स्थापित करने में सहायता पहुँचाने के लिए करना चाहिए। इसीलिए हमने पहले कहा कि भोगैश्वर्य का त्याग कर दरिद्रता के व्रत को ग्रहण करना एक बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी बात है, परन्तु उससे भी बड़ी बात है चित्त की समता—जीवन की विभिन्न अवस्थाओं से होकर निष्कामभाव से पर साथ ही सक्रिय भाव से एक ही ध्रुव लक्ष्य की ओर अग्रसर होना।

आजकल पृथ्वी की धन-संपदा ऐसे लोगों के हाथ में पड़ गयी है जो उसका सद्व्यवहार करना बिलकुल ही नहीं जानते। इस कारण मनुष्य का धनबल आज असुर की पूजा में व्यय हो रहा है या तो अर्थ के उच्छृङ्खल अपव्यय के द्वारा दानवीय प्रवृत्ति चरितार्थ हो रही है अथवा देशाचार या लोकाचार के अनुसार धन का व्यवहार होने के कारण हमारा शुद्र "अहं" परितृप्त हो रहा है। इस विषय में पूर्णयोगी का एक बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वह अनधिकारी के हाथ से धन-बल को निकाल कर मां के सामने अर्पण करे जिसमें दिव्य जीवन के सौन्दर्य और सुषमा को बढ़ाने के काम में धन ऐश्वर्य अपना यथायोग्य स्थान प्राप्त कर सके। इस कर्त्तव्य का पालन सब से उत्तम रूप में वे ही लोग कर सकते हैं जिनके अन्तःकरण से अहंकार और अन्धकामना का विनाश हो गया है और जो कोई दावा पेश न कर अपनी सारी उपार्जन-शक्ति को निःशेषतया मां के हाथों में सौंप देने में समर्थ हैं।

पूर्णयोगी की दृष्टि में जिस तरह पृथ्वी का अर्थबल मां की ही एक विश्वजनीन शक्ति की स्थूल अभिव्यक्ति है और योगी का कर्तव्य है समस्त धन मां के चरणों में उत्सर्ग कर उन्हीं के निर्देशानुसार व्यय करना, उसी तरह पृथ्वी की समस्त कर्मशक्ति का चरम स्रोत भी है मां भगवती की इच्छा और योगी का कर्त्तव्य है,

कर्म और योग

जीवन के समस्त कर्मों को मां के चरणों में उत्सर्ग कर उन्हीं की इच्छा के अनुसार नियंत्रित करना। अवश्य ही इस विषय में प्रचलित मत एकदम उल्टा ही है। हमारे देश के दार्शनिक लोगों का विश्वास है कि पृथ्वी की समस्त कर्मधारा के मूल में, तथा समग्र सृष्टि-प्रवाह के मूल में जो शक्ति क्रिया कर रही है वह है अविद्याशक्ति, माया या प्रकृति। अतएव अध्यात्म-साधना का उच्चतम लक्ष्य है पृथ्वी के कर्म प्रवाह से बहुत ऊपर उठ जाना—सृष्टिपरायणा शक्ति को पूर्ण रूप से अतिक्रम कर जाना। अवश्य ही साधनपथ में कर्म की आवश्यकता को दूर नहीं किया जा सकता तथा कर्म-बन्धन से मुक्ति पाने के लिए जीवन के सभी कर्मों को भगवन्मुखी बनाने की भी आवश्यकता है, फिर भी जब योगी अज्ञान के क्षीणतम बन्धन तक को छिन्न कर विशुद्ध आत्म ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाता है तब कर्म निरर्थक हो जाता है। अब भला कौन कर्म करेगा? किस लिए करेगा? स्वयंसंपूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को क्या कोई अभाव है ? उसे किस बात की आवश्यकता हो सकती है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है, क्यों ? अन्यान्य बद्ध जीवों के मंगल और मुक्ति के लिए आत्म-ज्ञान करने के बाद भी तो योगी के लिए कर्म करना संभव है। परन्तु शुद्ध ज्ञान-वादी के सामने इस युक्ति की भी सीमा है। सिद्ध योगी के अन्दर लोक-संग्रह के लिए कर्म करने का संकल्प भी तभी तक रह सकता है जब तक वह अपने आपको अविद्या के एक अत्यन्त झीने आवरण से ढके हुए है, अर्थात् जब तक वह परिनिर्वाण या पूर्ण-ब्रह्म को नहीं प्राप्त करता और अज्ञान को अपने अन्दर कार्य करने देता है। हमने पहले ही कहा है कि शुद्ध ज्ञानवादी के मतानुसार समस्त कर्मशक्ति का मूल है अविद्या। निरवच्छिन्न रूप से पूर्ण ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाने पर अविद्या के सारे सम्बन्ध नष्ट हो जाते हैं। उस समय सारा जगत्-प्रपंच मिथ्या माया में परिणत हो जाता है और कर्म-मात्र ही अर्थहीन प्रतीत होता है, चाहे वह कर्म स्वार्थ के लिए हो या परार्थ के लिए।

परन्तु पूर्णयोग के अन्दर ज्ञान और कर्म के बीच के सभी विरोध एक अपूर्व समन्वय में जाकर परिसमाप्त हो जाते हैं। श्रीअरविन्द कहते हैं कि पृथ्वी के समस्त कर्म-प्रवाह का चरम मूल-स्रोत अज्ञान या अविद्या नहीं है, वल्कि चिरजागृत सच्चिदा-नन्दमयी शक्ति है। ज्ञानमयी शक्ति के इशारे से ही अर्थात् मां भगवती की इच्छा से ही सृष्टि की अनन्तकोटि क्रियायें-प्रक्रियायें एक अपूर्व शृंखला में नियंत्रित हो रही हैं। हमारे जीवन में आपाततः जो अविद्या मालूम होती है वह विद्या की ही एक विशेष अभिव्यक्ति है। हम जिसे निश्चेतन बाह्य प्रकृति कहते हैं वह चिन्मयी शक्ति का ही एक स्थूलतम रूप है। ज्ञानमयी शक्ति पूर्ण ज्ञान का अवलम्बन करके ही अनन्त सृष्टि के अन्दर अनन्त लीला का विस्तार करती हैं—किसी अभाव को दूर करने के लिए नहीं, किसी मनमानी बात को पूरा करने के लिए नहीं, बल्कि उसी विराट् आनन्दघन सत्ता की विचित्र अभिव्यक्ति के लिए। अतएव हमारा यह कर्ममय जीवन उस ज्ञानमयी शक्ति की ही बहुविध लीला-प्रचेष्टा है, और विशुद्ध ज्ञानस्वरूप की छन्दोमयी अभिव्यक्ति है। पूर्णयोग का लक्ष्य है सर्वांगीण आत्मसमर्पण के द्वारा दिव्य चेतना में जागृत होकर लीलामयी मां का एक अंग बन जाना जिसमें मां की इच्छा और साधक की इच्छा में कोई भेद न रहे, जिसमें मां के कर्म और साधक के कर्म में, मां की प्रेरणा और साधक के संकल्प में तनिक भी भेद न रहे।

साधना के आरंभ में ही मां के साथ पूर्ण सक्रिय एकत्व (complete dynamic identification) स्थापित करना संभव नहीं। इसलिये साधक को एक-एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर कई स्तरों से होकर आगे बढ़ना पड़ता है। पहले स्तर में सेवक-भाव से साधना करनी होती है, दूसरे स्तर में यंत्र-भाव की उपलब्धि होती है, और तीसरे या सबसे अंत के स्तर में साधक यह अनुभव करता है कि वह मां का एक अंश है या मां के साथ उसका पूर्ण एकत्व स्थापित हो गया है। इन विविध स्तरों के विषय में यहां कुछ और विस्तार के साथ कहने की आवश्यकता है।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'—गीता के इस प्रसिद्ध वचन का मर्मार्थ ग्रहण कर कर्म-साधना आरंभ होती है। साधक पहले-पहल अपने को मां भगवती का दास या सेवक समझता है। मां के सेवक के रूप में केवल मां द्वारा निर्दिष्ट कर्म के ऊपर ही उसका अधिकार होता है, कर्म का फलाफल मां के ऊपर ही छोड़ देना होता है। साधक किसी पुरस्कार की आशा रखे बिना ही, कर्मफल के ऊपर किसी प्रकार की आसक्ति न रख, पूर्ण निष्काम भाव से कर्म करता है। मां का सेवक केवल यही चेष्टा करता है कि उसके कार्य के द्वारा मां सन्तुष्ट हों, मां के सभी कार्य सुन्दर रीति से संपन्न हों। इस निष्काम कर्म के द्वारा दिन-दिन साधक दिव्य चेतना, दिव्य आनंद और दिव्य शक्ति से अपने अन्तर को समृद्ध बनाता है। साधक के लिये यही तो सबसे बड़ा पुरस्कार है।

निष्काम कर्मसाधना धीरे-धीरे साधक को एक गंभीरतर उपलब्धि के स्तर में ले जाती है और वह है दूसरे स्तर की यंत्र-भाव की उपलब्धि। पहले स्तर में साधक मां के सेवक के रूप में कर्म में अपना अधिकार समझता है, उसका दावा करता है, परन्तु दूसरे स्तर में उसे यह अनुभव होता है कि कर्म में भी उसका अपना कोई वास्तविक अधिकार नहीं, क्योंकि सभी कर्मों का मूल स्रोत मां स्वयं हैं। साधक के द्वारा स्वयं मां ही सभी कार्यों को संपन्न करती हैं, साधक के शरीर, प्राण और मन मां के हाथ के केवल यंत्र हैं, स्थूल जगत् में उनकी अभिव्यक्ति के आधार हैं। पहले स्तर में साधक को कर्मफल मां के प्रति उत्सर्ग करना होता है, दूसरे स्तर में साधक कर्म को भी मां के हाथों में सौंप देता है। पहले स्तर में साधक कर्मफल की स्पृहा या आसक्ति का त्याग करता है, दूसरे स्तर में कर्तृत्वाभिमान तक उसके अन्तर से विलुप्त हो जाता है। पहले स्तर में साधक का स्वातंत्र्य-बोध प्रबल होता है, वह अलग एक कर्मी होता है, मां का सेवक या पुजारी होता है; दूसरे स्तर में भेद-ज्ञान बहुत कुछ दूर हो जाता है; साधक अब मां की लीला का उपकरण, उनके हाथ का यंत्र बन जाता है। जिस समय अपने भीतर यह रूपान्तर चल रहा हो उस समय साधक को सदा सतर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने की जरूरत है जिसमें किसी प्रकार अहंकार आकर चेतना को आच्छन्न न कर ले। आधार के अन्दर कार्य करने वाली मां की शक्ति को अगर साधक अपनी कोई व्यक्तिगत इच्छा पूरी करने में लगाना चाहता है तो उसकी उन्नति का मार्ग ही बंद हो जाता है। यहां तक कि अगर मां का यंत्र होने का भी गर्व या दर्प मन में स्थान पा जाता है तो उससे साधना में बड़ा विघ्न आ उपस्थित होता है।

तीसरे या अंतिम स्तर में साधक को बड़ी अपूर्व अनुभूति होती है। सिद्धि की इस अंतिम अवस्था में साधक का पूर्ण स्वातंत्र्य-बोध दूर हो जाता है और वह मां भगवती के साथ पूर्ण एकत्व प्राप्त कर लेता है। अब साधक की अपनी कोई अलग सत्ता नहीं रह जाती; साधक अब मां का सेवक या पुजारी मात्र नहीं होता, अथवा मां के हाथ का यंत्रमात्र भी नहीं होता, अब वह मां की वास्तविक सन्तान, उनका सनातन अंश बन जाता है। इस अवस्था में साधक सहज और स्वाभाविक रूप में यह अनुभव करता है कि वह सदा मां की गोदी में ही निवास कर रहा है, और मां भी सर्वदा उसके भीतर विराज रही हैं,—मां की सत्ता से ही उसकी सत्ता है, मां की चेतना से ही उसकी चेतना है, मां की शक्ति की ही वह शक्ति है और मां के आनन्द का ही वह आनन्द है। मां के साथ इस प्रकार सक्रिय एकत्व स्थापित होने पर साधक को दिव्य कर्म की सर्वांगसुन्दर सिद्धि प्राप्त होती है; उसे केन्द्र बनाकर मां भगवती अबाध रूप से दिव्य जीवन गठित करने का सुयोग पाती हैं।

मां की त्रिविध सत्ता

मां भगवती की सत्ता त्रिविध है, अर्थात् अखंड और अविभाज्य होने पर भी मां एक साथ ही तीन अवस्थाओं में विराजमान रहती हैं, और इन विभिन्न अवस्थाओं में रहकर विभिन्न रूपों में कार्य करती हैं। और फिर मां के अद्वितीय होने पर भी उनकी असंख्य शक्तियां और मूर्त्तियाँ हैं, असंख्य विग्रह और विभूतियाँ हैं; वह एक होने पर भी अनन्त रूपों के अन्दर अपने-आपको प्रकट करती हैं। मां की इन असंख्य शक्तियों और विग्रहों में चार प्रधान हैं—महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। हम पहले संक्षेप में मां की त्रिविध सत्ता का पर्य्यालोचन करेंगे।

भगवान् के विषय में हम यह जानते हैं कि वह एक संग तीन अवस्थाओं में अवस्थान करते हैं विश्वातीत रूप में (Transcendental), विश्वव्यापी रूप से (Universal) और व्यष्टि रूप से (Individual)। मां भगवती के विषय में भी यही बात है। वह एक साथ ही विश्वातीता आद्या पराशक्ति, विश्वव्यापिनी विश्वरूपिणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशक्ति और व्यष्टिरूपिणी स्नेहमयी जननी हैं। आद्या पराशक्ति सृष्टि-प्रवाह से बहुत ही ऊपर अवस्थान करती हैं और अव्यक्त परब्रह्म के साथ वैचित्र्यमय इस व्यक्त जगत् को जोड़े रखती हैं। आद्या शक्ति का कार्य है अनिर्वचनीय परम पुरुष के अन्दर निहित अनन्त सत्यों में से कुछ को उनकी रहस्यावृत अवस्था से नीचे उतार कर अपनी चेतना के अन्दर स्पष्ट रूप प्रदान करना, जिसमें वे विश्वलीला के अन्दर मूर्त्तिमान् हो सकें। स्वयं पुरुषोत्तम आद्या शक्ति की ही सहायता से अपने को प्रकट करते हैं; मां की विश्वातीत चेतना के अन्दर वे सच्चिदानंद रूप में नित्य प्रकट रहते हैं, मां की ही सहायता से वे 'ईश्वर और शक्ति' की द्वैताद्वैत चेतना के अन्दर और 'पुरुष तथा प्रकृति' के द्वैततत्त्व के अन्दर उतर आते हैं, और मां के ही द्वारा वे विभिन्न जगतों और लोकों, विभिन्न देवताओं और देव-शक्तियों के विचित्र रूप और आकार परिग्रहण करते हैं। दृश्यमान जो कुछ भी है वह सब पुरुषोत्तम के साथ आद्याशक्ति की लीला है। व्यक्त जगत् के अन्दर ऐसी कोई चीज नहीं रह सकती या घट नहीं सकती जिसे चिद्रूपिणी भागवती शक्ति ने परम पुरुष की अनुमति लेकर अपने सृष्टि के आनंद के अन्दर सर्वप्रथम बीज रूप में न ढाला हो।

विश्वव्यापिनी महाशक्ति-रूप से मां अनंत जगतों और जीवों की सृष्टि करती हैं, अपनी चेतना के अन्दर उन्हें धारण कर फिर उन सबके अन्दर प्रवेश करती हैं तथा विश्व की अनंतकोटि क्रिया-प्रक्रियाओं को परिचालित करती हैं। व्यष्टि रूप में मां हमारे अत्यन्त निकट हैं; वह हमारे अन्तर में उतर आकर मानो हमारा हाथ पकड़ कर धीरे-धीरे हमें सत्यानुभूति के मार्ग पर ले चलती हैं, हमें अपनी (मां की) बृहत्तर सत्ता के अन्दर प्रवेश करने के उपयुक्त बनाती हैं।

आद्याशक्ति पुरुषोत्तम के अन्दर निहित अव्यक्त-सत्य को नीचे उतार कर उसे अपनी चेतना के अन्दर एक प्रकट रूप प्रदान करती हैं; महाशक्ति फिर उसी प्रकट सत्य को विश्व-लीला में मूर्त्तिमान् करती हैं। हम जिसे निश्चेतन जड़ प्रकृति कहते हैं वह चिद्रूपिणी महाशक्ति की ही अत्यन्त बाहरी अभिव्यक्ति है। प्रकृति की सभी शक्तियां विश्वेश्वरी मां के इशारे से परिचालित और नियंत्रित होती हैं तथा प्रकृति की परिणाम-धारा मां द्वारा निर्धारित लक्ष्य की ओर ही प्रवाहित हो रही है।

परन्तु हमारा यह स्थूल जगत् ही मां की सारी सृष्टि नहीं है; विचित्र-विचित्र लोकों और भुवनों में उनकी लीला हो रही है। विश्व-लीला के सर्वोच्च शिखर पर है अनंत लोक—अनंत सत्ता, अनंत चेतना, अनंत शक्ति और अनंत आनंद का लोक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अनंत लोक के ऊपर मां अनावृत शाश्वत शक्ति के रूप में विराजमान हैं। अनंत लोक के नीचे है अतिमानस विज्ञान-जगत्। मां अतिमानस महाशक्ति के रूप में वहां की अधिष्ठात्री देवी हैं। अतिमानस जगत् में मिथ्या की तनिक भी छाया नहीं, भूल-भ्रान्ति या दुर्बलता का कोई चिह्न तक नहीं, दुःख-यंत्रणा के आर्त्तनाद का लेश तक नहीं। वहां पर सब कुछ अखंड सत्य की ज्योति से उद्भासित हो रहा है; वहां पर समस्त अनुभूति अनंत आनंद की बाढ़ में सराबोर हो रही है। अतिमानस जगत् के नीचे है हमारा यह अविद्या का जगत् – देह, प्राण और मन का जगत्—अंधकार, अपूर्णता और अतृप्ति का जगत्। यहां की भी वही चिन्मयी महाशक्ति अधिष्ठात्री देवी हैं; यहां का भी सब कुछ उन्हीं के निर्देशानुसार नियन्त्रित हो रहा है।

परार्द्ध और अपरार्द्ध के मध्यवर्ती लोक में खड़ी होकर मां हमारे इस अज्ञान के जगत् को आश्चर्यपूर्ण शृंखला के साथ परिचालित कर रही हैं। उनके इस कार्य में उन्हीं की विभिन्न मूर्त्तियां और देवशक्तियां, विभिन्न सम्भूतियां (Emanations) और विभूतियां सहायता करती हैं, इन सब मूर्त्तियों और शक्तियों को वह सामने रख एक प्रच्छन्न अभिनेता के रूप में कार्य किया करती हैं। परन्तु यहां पर यह समझना भूल है कि मां केवल ऊपर रहकर ही हमारे इस जगत् का शासन करती हैं। वह केवल विश्व की अधिष्ठात्री देवी ही नहीं हैं, वह विश्वव्यापिनी और विश्वरूपिणी भी हैं। वह हमारे इस अनृत के जगत् में नीचे उतरकर आसुरिक और दानवीय शक्तियों के आघात-अत्याचार के अन्दर से होकर अपना व्रत पूरा करने को अग्रसर होती हैं। मां के अकुंठ आत्म-बलिदान के कारण ही, प्रकृति-यज्ञ के प्रभाव से ही हमारा यह जगत् और जीवन है। चिन्मयी मां अज्ञान-अन्धकार के अन्दर स्वयं उतर आती हैं जिसमें उस अन्धकार को फिर से ज्ञान की पूर्ण ज्योति में परिणत कर सकें; वह हमारे जीवन की नश्वरता के अन्दर उतर आती हैं जिसमें इस नश्वर जीवन को अमर, अमृतमय बना सकें; वह विश्व के शोक-ताप, दुःख-यंत्रणा के अन्दर उतर आती हैं जिसमें सम्पूर्ण वेदना को अपूर्व दिव्य आनन्द में रूपान्तरित कर सकें।

मां की विश्वातीत, विश्वव्यापी और व्यष्टि इस त्रिविध सत्ता के विषय में एक धारणा बनाने की चेष्टा हमने की है। अब हम संक्षेप में विश्वव्यापिनी मां के शक्ति-चतुष्टय का पर्यालोचन करेंगे। पार्थिव लीला को सर्वांगसुन्दर बनाने के लिए विश्वेश्वरी मां की चार प्रधान शक्तियां उनके अग्रभाग में आकर खड़ी होती हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि महाशक्ति के ये चार महारूप हैं—महेश्वरी,

मां की चार शक्तियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। Wisdom, Strength, Harmony and Perfection—प्रज्ञान, प्रताप, सुसंगति और संसिद्धि ये शक्तिचतुष्टय के विभिन्न गुण हैं। इन्हीं दिव्य गुणों को लेकर ये चारों शक्तियां विश्व की जीवनधारा के अन्दर उतर आती हैं; मां की जो विभूतियां हैं वे एक-एक गुण का स्फुलिंग धारण कर शक्तिमान् होती हैं; माँ के प्रति जिन लोगों की प्रकृति खुली हुई होती है वे लोग इन सब ऐश्वर्यों के स्पर्श से नवजीवन प्राप्त करते हैं।

महेश्वरी अनन्त ज्ञानमयी हैं; इसी कारण वह मानसभूमि से ऊपर सीमाहीन विशालता के अन्दर, विक्षोभहीन महान् शांति के अन्दर निवास करती हैं। कोई भी चीज उन्हें डिगा नहीं सकती, क्योंकि सृष्टि का विधान वह जानती हैं और सारा भविष्य उनकी आंखों के सामने खुला हुआ है। विभिन्न वस्तुओं और घटनाओं को तथा विभिन्न जीवों को वह उनके अन्दर निहित सत्य के अनुसार परिचालित करती हैं। ज्ञानी को वह गभीरतर ज्ञान का पता बताती हैं; असुर को वह दुःख के रास्ते से मंगल की ओर ले जाती हैं; मूढ़ को वह अन्धकार के भीतर से होकर आलोक की ओर ले जाती हैं। विरुद्ध शक्ति के प्रति खूब निष्ठुर दिखायी देने पर भी महेश्वरी अपार अनन्त करुणा की मूर्ति हैं। अवश्य ही करुणा उनकी ज्ञान-दृष्टि को आच्छन्न नहीं कर सकती, अथवा उनके कर्म को सत्य के पथ से हटा नहीं सकती। राक्षस या असुर के लिए जब वह अपने कठोर हाथों से दण्ड देने की व्यवस्था करती हैं तब वह दण्ड-विधान उनकी ज्ञानगर्भ करुणा की ही अभिव्यक्ति होता है, क्योंकि उस दण्ड को भोगने के कारण ही असुर के लिए यह संभव होता है कि वह अहंकार का त्याग कर सत्य के पथ में, आत्म-कल्याण के मार्ग में; विश्व-कल्याण के मार्ग में लौट आ सके।

महाकाली प्रलयंकर प्रताप को अपने अन्दर धारण करती हैं। वह अप्रतिहत रुद्रतेज और सर्वजयी शक्ति की खान हैं। हमारे जीवन में जो कुछ क्षुद्र और संकीर्ण है, जो कुछ मिथ्या और तमोग्रस्त है, जो कुछ आसुरिक और भगवद्विरोधी है सब को क्षण भर में संचूर्णित कर के हमारी प्रकृति को एक समुन्नत भागवत महिमा के अन्दर उठा ले जाने का प्रयास महाकाली करती हैं। इसी कारण जो लोग भीरु, दुर्बल या आसुरिक प्रकृति वाले हैं उनके मन में महाकाली का नाम भय का संचार करता है; परन्तु जो लोग शक्तिमान् और वीर साधक हैं वे लोग उनका अत्यधिक आदर करते हैं, सब से आगे उन्हीं को पूजा का आसन प्रदान करते हैं। महाकाली के एक हाथ में जैसे भयावह शासन-दण्ड है, वैसे ही उनके दूसरे हाथ में स्नेह का कोमल स्पर्श है। मिथ्याचार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध जैसे उनका क्रोध तीव्र होता है वैसे ही अभयदान के लिए उनका एक हाथ सदा खुला होता है, क्योंकि एक ही साथ वह प्रलयंकरी और स्नेहमयी व करुणामयी हैं। महाकाली की कृपा से अनेक शताब्दियों की तपस्या का फल एक दिन में पाया जा सकता है; उनकी दिव्य प्रचण्डता और क्षिप्रता हमारी कल्पना के बाहर की चीज है। वह कर्म को आशुफलप्रद, आनन्द को तीव्रतम, ज्ञान को विश्वविजयी, सिद्धि को सर्वांगसुन्दर बनाती हैं तथा सौंदर्य को एक समुन्नत ऊर्ध्वगति प्रदान करती हैं।

महालक्ष्मी की विशेषता है अनुपम सुषमा और सुसंगति। उनके विश्वविमोहन सौंदर्य को यदि अलग कर दिया जाय तो प्रज्ञान और प्रताप अपूर्ण ही रह जायेंगे। उनकी दुर्निवार आकर्षण-शक्ति ही जगत् की सब वस्तुओं को, सब शक्तियों को, सब जीवों को एक साथ पकड़े रखती है, उन सब को परस्पर मिलित होने के लिए बाध्य करती है, जिसमें मां का प्रच्छन्न आनन्द विचित्र रूपों और छन्दों में लीलायित हो सके। मां के विभिन्न महारूपों में महालक्ष्मी का आकर्षण ही जीव के लिए सब से अधिक प्रबल होता है। महेश्वरी इतनी महत् और दुरधिगम्य हैं कि पृथ्वी का क्षुद्र जीव उनके समीप जाते हुए संकोच करता है अथवा उन्हें धारण करने में असमर्थ होता है; महाकाली इतनी प्रचण्ड और तीव्र हैं कि दुर्बल मनुष्य उनका स्पर्श सहन नहीं कर पाता; किन्तु महालक्ष्मी की ओर सभी एक दुर्निवार मोहिनी शक्ति के द्वारा आकृष्ट होते हैं। उन की दृष्टि से जीवन माधुर्य से भर जाता है, उनके स्पर्श से साधक के भीतर आनन्द का झरना खुल जाता है। परन्तु इन श्रीमयी महालक्ष्मी को सन्तुष्ट करना अथवा उन्हें अपने अन्दर धारण करना आसान काम नहीं है। उनकी पूजा करनी होती है अन्तर के सौंदर्य के द्वारा, मन और आत्मा के अन्दर सुसंगति स्थापित करके, विभिन्न विचारों और भावनाओं में, विभिन्न कार्यों तथा बातों में, जीवन के भीतर और बाहर सामंजस्य की प्रतिष्ठा करके। जहां पर सुसंगति और प्रेम का अभाव होता है, जहां पर विरोध और संघर्ष होता है, वहां से देवी दूर चली जाती हैं। जो कुछ कुत्सित और बीभत्स है, जो कुछ रूक्ष और मलिन है वह सब देवी के मन में एक प्रकार की दिव्य घृणा को उत्पन्न करता है; उनके सामने वह अपने आपको एक पर्दे के अन्दर छिपा रखती हैं। महालक्ष्मी का कार्य है प्रेम और सौन्दर्य के द्वारा मनुष्य को भगवान् के साथ युक्त कर देना। अतएव एक ओर जैसे वह भोगविलासी की उच्छृङ्खलता से घृणा के साथ किनारा काट कर चली जाती हैं वैसे ही दूसरी ओर तपस्वी की अनावश्यक रूक्षता और कठोरता का भी समर्थन नहीं करतीं। उन्हें प्रसन्न करने का उपाय यह है कि मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सौंदर्यानुभूति और हृदय के गभीरतर आवेगों का कठोरतापूर्वक दमन या निष्पेषण न करके इन्हें भगवन्मुखी कर दिव्य महिमा में रूपान्तरित किया जाय।

महासरस्वती की विशेषता है संसिद्धि (Perfection of work)। सभी कार्यों को सर्वांगसुन्दर बनाना, प्रत्येक वस्तु को ब्योरेवार समग्र के अन्दर यथास्थान सन्निविष्ट करना, सब प्रकार से सारे दोषों और त्रुटियों को दूर करना उनका प्रधान व्रत है। मां की वह कर्मशक्ति हैं, इस कारण एक ओर जैसे वह मां की चारों शक्तियों में सब से छोटी हैं, वैसे ही दूसरी ओर स्थूल बाह्य प्रकृति तथा मनुष्य के कर्मजीवन के अत्यन्त निकट हैं। मां की अन्यान्य शक्तियों के सभी कर्म अपनी पूर्णता के लिए महासरस्वती के ऊपर निर्भर करते हैं। महेश्वरी विभिन्न जागतिक शक्तियों की बृहत् धाराओं को निश्चित कर देती हैं, महाकाली उन्हें गति और वेग प्रदान करती हैं, महालक्ष्मी उनके छन्द और परिमाण की रक्षा करती हैं और महासरस्वती सर्वदा यह ध्यान रखती हैं कि उन सब जागतिक शक्तियों का यथायथ समावेश और प्रयोग करके मां की इच्छा को अत्यन्त सुन्दर रूप में वास्तविकता में परिणत किया जा सके। सृष्टि को सर्वांगसुन्दर बनाने के लिए वह अनन्त काल तक परिश्रम करने के लिए तैयार हैं। महासरस्वती के प्रसाद से मनुष्य सभी कर्मों में अपूर्व दक्षता प्राप्त करता है, तथा सभी विषयों में आश्चर्यजनक सूक्ष्म बोध और पुंखानुपुंख ज्ञान प्राप्त करता है। अवश्य ही उनका प्रसाद प्राप्त करने के लिए हमारा संकल्प होना चाहिए अव्यभिचारी तथा हमारी इच्छा होनी चाहिए एकनिष्ठ, द्विधाहीन और आन्तरिक। वह मनुष्य के अत्यन्त निकट उतर आती हैं और असीम धैर्य के साथ उसकी प्रकृति के दिव्य रूपान्तर के काम में सहायता करती हैं। हमारे हज़ारों दोषों-त्रुटियों, हज़ारों असफलताओं के होने पर भी वह निराश या विमुख नहीं होतीं, हाथ पकड़ कर, सदा उत्साह देते हुए हमें जीवन की पूर्णता की ओर ले जाना ही उनका प्रधान लक्ष्य है।

हम पहले ही कह चुके हैं कि मां की असंख्य शक्तियां, रूप और विग्रह हैं। अवश्य ही विश्व का परिचालन करने में प्रकट रूप से जो शक्तियां मां की सहायता किया करती हैं उनमें महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती ही सब से प्रधान हैं।

अतिमानस महाशक्ति परन्तु इस शक्तिचतुष्टय के अतिरिक्त भी मां के अन्यान्य महारूप हैं। उनका अवतरण कराना अधिक कठिन है और अब तक पार्थिव जीवन के क्रमविकास में उन्होंने प्रकट रूप में कोई सहायता नहीं की है। किन्तु तो भी पूर्ण-योग के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अर्थात् अतिमानस विज्ञान को पार्थिव चेतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रतिष्ठित कर भागवत जीवन की रचना करने के लिये मां की उन सब विरल शक्तियों में से कुछ का आविर्भाव अत्यन्त आवश्यक है। उनमें से भी एक शक्ति की बात यहां विशेष रूप से कहने की ज़रूरत है; वह हैं मां के दुर्ज्ञेय और दुर्वार आनन्द की मूर्त्ति। वह आनन्द एक अपूर्व भागवत प्रेम से उत्पन्न हुआ है; विश्व की अन्यान्य शक्तियों का प्रच्छन्न आश्रयस्थल वही आनन्द है; और केवल वही आनन्द ज्योतिर्मय अतिमानस चेतना और निश्चेतन जड़ के मध्यवर्त्ती विपुल व्यवधान को दूर कर अतिमानस सिद्धि या अनुपम दिव्य जीवन की प्रतिष्ठा को संभव कर सकता है। वर्तमान समय में मनुष्य की प्रकृति इतनी क्षुद्र और तमसावृत हो रही है कि मां की बृहत्तम शक्ति को धारण करने में वह असमर्थ है। हमारा शरीर, प्राण और मन ये जब यथेष्ट रूपान्तरित होकर मां की चारों शक्तियों की स्वच्छन्द लीला के क्षेत्र बन जायेंगे तभी मां की बृहत्तर शक्तियां पृथ्वी पर उतरकर अतिमानस सिद्धि का मार्ग खोल देंगी। उस समय मां स्वयं अपने सभी विग्रहों को अपने अन्दर अपूर्व सामंजस्य के साथ एकत्रित कर अतिमानस महाशक्ति के रूप में आत्म-प्रकाश करेंगी तथा मानवीय प्रकृति के सभी स्तरों को अतिमानस ज्योति-प्रवाह से उद्भासित कर हमारे पार्थिव जीवन को अमृतमय बना देंगी। निःशेष आत्म-समर्पण के द्वारा इन अतिमानस महाशक्ति का आवाहन करना तथा उनके साथ सचेतन सहयोग करना ही अतिमानस-योग का प्राण है, यही उसका मूलमंत्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् मिथ्या ?

[कविवर पं० दीनानाथ जी भार्गव 'दिनेश']

मानव ने मिथ्या माना जग जहां शांति के झरने झरते।
और जहां की पुण्य पंक से सरस सुमन अरविन्द उभरते॥

जहां कर्म की सफल बेल में,
चितचाहा प्रतिफल फलता है।
जहां देवता होने के हित,
मानव नित प्रतिपल चलता है॥

सत्य खोजने प्राण पखेरू जिसमें डेरा डाल ठहरते।
मानव ने मिथ्या माना जग जहां शांति के झरने झरते॥

प्रभु की दिव्य विभूति जहां पर,
खुल कर खेल खेलती रहती।
गंगाजल सी निर्मल निष्कल,
मां की मृदुल भावना बहती॥

प्रेम सलिल में ओत प्रोत हो जिसमें पामर प्राणी तरते।
मानव ने मिथ्या माना जग जहां शांति के झरने झरते॥

जहां सांत्वना का कोमल कर,
अभय दान देता रहता है।
प्रमुदित जहां 'दिनेश' उदित हो,
जाग जाग! उठ! चल! कहता है॥

कर्म भूमि में नर नारायण बनता है कुछ करते करते।
मानव ने मिथ्या माना जग जहां शांति के झरने झरते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविज्ञान और योग

(शेष भाग)

(लेखक—डा० इन्द्रसेनजी)

ईश्वर की सत्ता

हमारी विवेचना लम्बी हो गई है और शायद अभी और लम्बी खिंच जाय। अतः हम क्षणभर के लिये अपने अबतक के विचार का सिंहावलोकन कर लें। हमने इस प्रश्न से प्रारम्भ किया था कि योग की समस्या कैसे पैदा होती है। हमने बताया था कि वर्तमान जीवन की अपूर्णता, इसके संघर्ष, कलह और कठिनाइयां एक अखण्ड और सु-समञ्जस जीवन की खोज को उत्तेजित करते हैं। इस प्रकार ही यौगिक अभीप्सा का उदय होता है। हमने विश्लेषणपूर्वक देखा था कि योग की यथार्थ प्रक्रिया सारतः पूर्व आसक्तियों के परित्याग तथा प्राप्तव्य उद्देश्य की अभीप्सा के दो पहलुओं से बनी है। तब हमने पुष्ट मनोवैज्ञानिक प्रमाण और साक्षी के द्वारा विशेष-यत्न-पूर्वक यह दिखाया था कि कैसे ध्यान का नियमन और एकाग्रता (जिसे पातंजल योग में 'संयम' नाम से पुकारा गया है) स्वतः ही योग के सब चमत्कार करने में समर्थ होते हैं।

अब हम योग के स्वरूप-निरूपण में अगला आवश्यक कदम ले सकते हैं। अब-तक हमारा विवेचन अनुभव-मूलक और मनोवैज्ञानिक रहा है। हमने आत्मा और पर-मात्मा के विचारों को जानबूझकर छोड़ दिया था। हमने कहा था कि आधुनिक मन इनकी सत्ता को मानने में कठिनाई अनुभव करता है। और मुझे इस मनोवृत्ति से सहानुभूति है क्योंकि संस्था-रूप धर्म अतीत दीर्घकाल तक परमात्मा के नाम के साथ खिलवाड़ करते रहे हैं और उसके नाम पर उन्होंने मनुष्य के प्रति गम्भीर अपराध तक किये हैं। परन्तु धर्म प्रबुद्ध आत्मा के जीवित-जागृत अनुभव के रूप में ही असली धर्म है और यह खेद-जनक है कि हम धर्म के पूंजीपतियों या संघटित धर्मों के अधिकारियों के इस दावे को स्वीकार कर लें कि वे ही ईश्वर के एकाधिकारी हैं। धर्म और ईश्वर के विरुद्ध वर्तमान घृणा वस्तुतः धार्मिक संस्थाओं के प्रति हमारा विद्रोह है। आन्तरिक अनुभवात्मक धर्म का सारभूत स्वरूप यह है कि उस परम पुरुष में जो कि हमारी अभीप्सा का प्रत्युत्तर देता है, विश्राम, शान्ति, आश्वासन और सुरक्षा को खोजना। अपने इस रूप में धर्म मनुष्य के लिये आवश्यक है और चाहे समय-समय पर मनुष्य की जिज्ञासा प्राकृतिक विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रणालिकाओं या सामाजिक पुनर्निर्माण की समस्याओं की ओर फिर जाय, परन्तु क्योंकि यह मानव-आत्मा के लिये आधारभूत वस्तु है अतः चरम सत्ता के विधान में सुरक्षा पाने की आवश्यकता बीच-बीच में लुप्तप्राय होकर भी अपने आप को अवश्य, पूर्वापेक्षया अधिक जोश के साथ, पुनः-पुनः प्रतिष्ठापित करती है। मानव-जाति के इतिहास में ऐसा अनेक बार हुआ है।

१६ वीं सदी विज्ञान और अज्ञेयतावाद की सदी थी। हेकल और अन्य विद्वानों ने 'जगत् की पहेली' को केवल प्रकृति के द्वारा हल कर डालने की विश्वासपूर्वक आशा की थी। परन्तु इसकी प्रतिक्रिया पहले से ही शुरू हो चुकी है और अब ब्रह्मांड की सत्ता के अन्तिम तत्त्व के तौर पर प्रकृति को निश्चित रूप से अपर्याप्त माना जाता है। निःसन्देह वर्तमान भौतिक-विज्ञान और जीवन-विज्ञान को, आदर्शवादी दर्शन का तो कहना ही क्या, सत्ता के मूल के तौर पर विश्वव्यापी चेतना स्पष्टतया अभिमत है या उनका इस ओर स्पष्ट झुकाव है। इस सम्बन्ध में प्रामाणिक व्यक्तियों के अपने कुछ शब्द विशेष रोचक होंगे। प्रोफेस्सर ऐड्गिटन (Eddington) कहते हैं, 'हमारे अनुभव में मन सर्वप्रथम और प्रत्यक्षतम वस्तु है। अन्य सब कुछ दूरवर्ती अनुमान है।' भौतिक विज्ञान की तथाकथित प्रकृति केवलमात्र एक संकेतों का संस्थान है। एक दूसरे अति प्रामाणिक विद्वान् प्लैंक (Planck) ने और भी स्पष्ट शब्दों में कहा है, 'मैं चेतना को आधारभूत मानता हूँ। प्रकृति को चेतना से निर्गत मानता हूँ। हम चेतना से परे नहीं जा सकते। प्रत्येक वस्तु जिसके बारे में हम बात करते हैं या जिसे हम सत् के तौर पर स्वीकार करते हैं चेतना की अपेक्षा रखती है।' श्री जेम्स जीन्स (Sir James Jeans) के अनुसार, 'यह विश्व एक गणितशास्त्रीय विचारक के मन का एक विचार है' और जो ये पदार्थ हमें विषयीभूत होते दृष्टिगोचर होते हैं उसका कारण है उनका 'किसी शाश्वत आत्मा के मन में रहना'। और सल्लिवान (Sullivan) अपनी पुस्तक 'प्रख्यात वैज्ञानिकों के साथ भेंट' (Interviews with Eminent Scientists) में आयंस्टीन (Einstein) के सम्बन्ध में विवरण देता हुआ कहता है: "ऐसा प्रतीत होता है कि नये विश्व में हमारी धार्मिक अन्तर्दृष्टि (insight) को उतना ही प्रामाणिक स्थान प्राप्त है जितना कि वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि को। निःसंदेह उनमें से सबसे बड़े निर्माता की राय में हमारी धार्मिक अन्तर्दृष्टि वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का स्रोत और पथप्रदर्शक है।" १६ वीं सदी में विज्ञान और धर्म में बड़ा तीक्ष्ण संघर्ष था। तब मन और चेतना विज्ञान की दृष्टि में निन्दा और द्वेष के पात्र थे। और आज ऊपर उद्धृत किये वचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी बदली हुई अवस्था को प्रकट करते हैं। प्रकृति एक संकेत और प्रतीति मात्र बन गई है; चेतना और मन वास्तविक सत्ताएं हैं। सचमुच, ज्ञान पाने की वैज्ञानिक प्रणाली को धार्मिक अन्तर्दृष्टि पर आश्रित समझा जाता है।

यहां हमारा इससे कोई संबन्ध नहीं कि आधुनिक भौतिक विज्ञान की दृष्टि में दार्शनिक सत्ता का पूरा चित्र क्या है, आया कि वह निरपेक्षवाद है या बहुत्ववाद या कोई और वाद। युक्ति का सार यह है कि आज विज्ञान भी उस विश्व-मानस की वास्तविकता को स्वीकार करता है जिसे कि धर्म ईश्वर कह कर पुकारता है।

आधुनिक जीवन-विज्ञान सृष्टि को सप्रयोजन मानता है क्योंकि डार्विन की ये धारणायें कि जीवन यन्त्रवत् व अबुद्धिपूर्व है, अधकचरी पाई गई हैं। अब यदि जीवन की वृद्धि और विकास को कोई 'प्रयोजन' शासित और नियन्त्रित करता है तो जिस चेतना का यह 'प्रयोजन' है उसकी सत्ता को स्वीकार करना पड़ता है। इस प्रकार एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक विज्ञान के आधार पर चरम मानस की सत्ता स्थापित होती है।

स्वयं विज्ञान की साक्षी और परिणाम एक समकालीन विचारशील व्यक्ति को इन वैज्ञानिक प्रगतियों के गवाह के तौर पर निश्चयपूर्वक ईश्वर-विश्वास की तरफ़ प्रेरित करेंगे। इन प्रगतियों के साथ साथ धार्मिक आवेग भी जिसकी कि परिभाषा हमने ऊपर की है अधिक प्रबल होता गया है। जोड (Joad) के अनुसार इस बात का प्रमाण यह है कि पिछले २५ वर्षों में गत संपूर्ण शताब्दी की अपेक्षा धार्मिक विषयों पर अधिक पुस्तकें लिखी गई हैं। तो भी इसका यह आशय नहीं है कि हम क्रियात्मकतया अधिक धार्मिक हो गये हैं। हां, इतना निःसंकोच कहा जा सकता है कि धार्मिक जिज्ञासा बढ़ रही और उत्कट हो रही है।

योग में ईश्वर की आवश्यकता

हमने योग-विषयक वर्णन शुद्ध रूप से अनुभव-मूलक और मनोवैज्ञानिक तरीके से शुरू किया था। परन्तु अब ईश्वर की सत्ता-विषयक उपर्युक्त समीक्षा के बाद, यौगिक प्रयत्न के साथ परमात्मा के संबन्ध पर विचार करना संभव है। पतञ्जलि की योग-पद्धति 'ईश्वर' को अपरिहार्य समझती है। वह 'ईश्वर' 'सनातन गुरु' है। उसकी सत्ता एक ऐसी अतिमानस शक्ति है जिसे कर्म-फल और क्लेश स्पर्श भी नहीं कर सकते। वह सर्वज्ञ और अनुपम है। उसके प्रति समर्पण से ही साधक समाधि का लाभ करता है। (देखो पतञ्जलि का योगदर्शन पा० १ सू० २३,२४,२५,२६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द के योग में वर्णित परमात्मा या देव (भगवान्) का स्वरूप योगाभ्यास के साथ अधिक पूर्णता से संबद्ध है। निःसंदेह व्यक्तित्व का रूपान्तर व्यक्ति के निज प्रयत्न से ही प्रारंभ होता और चलाया जाता है; परन्तु यह सदा परमात्मा के संकल्प के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना में ही आगे बढ़ता है। और ईश्वर या परम चैतन्य, जो अपनी परिपूर्णता में पूर्णता के अभीप्सु के लिये करुणामय होता है, उसके कार्य की पूर्ति के लिये तथा उसे पूर्ण पुरुष बनाने के लिये सहायक बनकर आता है। कृपा का सुप्रसिद्ध सिद्धान्त ठीक यही है। इस प्रकार अपूर्ण मानव-प्रयत्न के लिये भागवत-कृपा अनिवार्य है; और यह सर्वथा ठीक नहीं है कि साधक का अपना प्रयत्न कारण-कार्य के नियम से यौगिक परिणामों को पैदा कर देता है। बल्कि यह कहना अधिक ठीक हो सकता है कि जैसे एक माता अपने उस बच्चे के प्रयत्नों की सराहना में जो किसी काम को करने के लिये जी-तोड़ मेहनत करता है, उसकी सहायता करना चाहती और उसके प्रयत्न को सफल करना चाहती है, एवं परमेश्वर अपनी कृपा के प्रयोग से मनुष्य के पूर्णता की प्राप्ति के प्रयत्नों को कृतकृत्य करता है।

व्यक्तित्व के निर्माण में मनोवैज्ञानिक सहायता

इस निबन्ध का प्रयोजन योग के विषय की सामान्य मनोवैज्ञानिक भूमिका प्रस्तुत करना है। ऐसा करते हुए हमने यहां तक मुख्यतया यौगिक रूपान्तर के कार्य में काम आ सकनेवाली मनोवैज्ञानिक क्रिया की व्याख्या की है; तथा मनोवैज्ञानिक भाषा में आवेग और तर्कणा के उस मानसिक आधार की व्याख्या की है जो सामान्य मानव-जीवन के संघर्ष और विशृङ्खलता को तथा फिर योग के लक्ष्यभूत समस्वर जीवन के स्वरूप को जन्म देता है। हमने यह भी कहा है कि आधुनिक मनोविज्ञान में कुछ निश्चित प्रवृत्तियां हैं जिनका अध्ययन योग के जिज्ञासु के लिये सहायक उपक्रम का काम कर सकता है। अब हम इन्हीं प्रवृत्तियों की ओर आते हैं।

मनोविज्ञान की लोकप्रिय परिभाषा यह हो सकती है कि यह मन और उसकी क्रियाओं का अध्ययन है। स्वतः मानसिक क्रिया को उन्नत करना या मानव-प्रकृति का सुधार इसका साक्षात् लक्ष्य नहीं है। यह वास्तविकता का अध्ययन मात्र है, यह स्वाभाविक क्रिया के गुण-दोष का विवेचन करता है। परन्तु ऐसा करने में इसे कर्म के उन आधार-भूत स्रोतों को खोज निकालना होता है जिनका ज्ञान क्रियात्मक उपयोग में लाया जा सकता है। मैकडूगल ने अपने ग्रन्थ 'चरित्र और आचरण' (Character and the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Conduct of life) में जिसका उपनाम 'क्रियात्मक मनोविज्ञान' है, मनोविज्ञान के वर्णनात्मक विज्ञान को जीवन के क्रियात्मक पथ-प्रदर्शन के लिये विवेचन में यथार्थतः बदल डाला है। मनोविज्ञान का सावधानतापूर्ण अध्ययन मनुष्य को अपने मन की गतियों का निरीक्षक बना देगा और यह चीज़ स्वयं योगाभ्यास की प्रगति में सहायक है। इसके अतिरिक्त इस अध्ययन से उसे अपने मन की तथा सामान्य मन की क्रियाओं का कुछ वास्तविकतापूर्ण ज्ञान हो जायगा। इससे वह मनुष्य के साधारण प्रेरक भावों से परिचित हो सकता है। हमने कहा था कि योग से नये मूल्यांकनों की प्राप्ति करनी होती है जिसका वास्तविक अर्थ है नये प्रेरक भावों की प्राप्ति। और इसके लिये विद्यमान साधारण प्रेरक भावों की समझ अवश्य उपयोगी होगी; और इसमें सन्देह नहीं कि नये प्रेरक भावों के निर्माण के लिये तो यह आवश्यक होगी। इतने सामान्य मनोविज्ञान के साथ, व्यक्तित्व की सुधारणा जो इस विषय में नयी प्रबल प्रगति है योग के विद्यार्थी के लिये विशेष उपयोगी होनी संभव है। अन्तःस्रावी रसों (Endocrine secretions) का सिद्धान्त जो यह प्रतिपादित करता है कि ग्रैवेयक (Thyroid) उपग्रैवेयक (Parathyroid) ऐड्रीनल (Adrenal) और गोनड (Gonads) जैसी प्रणाली-रहित ग्रन्थियों के रस व्यक्तित्व के चरित्र पर पोषक प्रभाव डालते हैं, उस शारीरिक नियन्त्रण की उपयोगिता को स्पष्टतया पुष्ट करता है जिस पर पतञ्जलि बल देते हैं। सम्भव है कि आसन इन ग्रंथियों के रसों को उत्तेजित करने में कुछ प्रभाव रखते हों। ग्रन्थि-रसों के विषय में एक मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ (Woodworth) कहता है कि, 'मुख्य लैंगिक अंग, स्त्री का डिम्बकोष (Female ovary) और पुरुष का अण्डकोष (Male testes), जीवाणु-कोष्ठों (Germ cells) को तथा रज और वीर्य को पैदा करने के अतिरिक्त मनुष्य की वृद्धि और व्यवहार पर महत्त्वपूर्ण असर डालनेवाले हार्मोन्स (Hormones) को भी बनाते हैं। तथापि इन हार्मोन्स (Hormones) का ठीक-ठीक प्रभाव अभी तक पूर्णतः ज्ञात नहीं है।'

मनोविश्लेषण

किन्तु योग का उद्देश्यभूत रूपान्तर सर्वांगीण और पूर्ण है। सामान्य मनोविज्ञान व्यक्तित्व के यौगिक परिवर्तन के लिये पर्याप्त गहराई तक नहीं जाता। यहां मनोविज्ञान की सर्वप्रसिद्ध शाखा मनोविश्लेषण अधिक उपयुक्त है। हमने पहले भी इसकी ओर कुछ निर्देश किये हैं, पर अब हम वैयक्तिक उन्नति की विद्या और कला की दृष्टि से इसका अधिक पूर्ण निरूपण करने का यत्न करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) अवचेतना का खोलना

मनोविश्लेषण की सबसे बड़ी खोज है अवचेतन और उसकी क्रियाओं के नियम। अवचेतन का विचार पहले भी विदित था किन्तु मनोविश्लेषण यह सही दावा भर सकता है कि उसने मानव के साधारण तथा असाधारण व्यवहार में अवचेतन के प्रकट होने की कुटिल गतियों का सर्वप्रथम अनुभव-मूलक अध्ययन किया है। मनोविज्ञान की इस शाखा के आविष्कारक फ्रायड (Freud) का यह आग्रहपूर्वक कहना है कि अवचेतन सम्पूर्ण मानसिक जीवन का ९/१० भाग है। स्वयं यह विचार भी व्यक्तित्व के गम्भीर आलोडन के लिये एक बहुमूल्य सहायता है।

इसके बाद निग्रह का विचार एक और बड़ी देन है। यह विचार भी कि 'बचाव-प्रतिक्रिया' (Defence reaction) अवचेतन के कार्य का विचित्र ढंग है एक अमूल्य विचार है। इसके यथार्थ स्वरूप की हम थोड़ी-सी व्याख्या करते हैं। जिन कष्ट-प्रद कार्यों को हम अपने आन्तरिक जीवन में झेल चुके हैं उनसे विपरीत कार्यों की हमारे सचेतन व्यवहार में अधिकता 'बचाव-प्रतिक्रिया' कहलाती है। इसीके कारण सबको घृणा से देखनेवाला शुष्क तार्किक (cynic) अपने हृदय में अतिभावुक होता है और बहुत बल दिखलानेवाला लड़ाका (Bully) अन्दर से भीरु होता है। जो व्यक्ति आत्म-तुच्छता (inferiority) से ग्रस्त होते हैं वे प्रायः दर्प और अभिमान को बढ़-चढ़कर प्रकट करते हैं। बहिःक्षेपण (Projection) भी बचाव-प्रतिक्रिया का एक रूप है और इसमें मानसिक पदार्थ को मन के बाहर किसी स्थान पर स्थापित किया जाता है। एक मनुष्य जो स्वयं घमण्डी है सर्वत्र घमण्ड देखता है और उसकी निन्दा करता है। एक अन्य अवचेतन यन्त्रवत् क्रिया है तर्कोपपादन (Rationalisation), यह आचार और विश्वास की व्याख्या के लिये मन द्वारा ऐसी युक्तियों की रचना का नाम है जिनका प्रकृत आचार व विश्वास के मानसिक कारणों से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता।

(ख) दमन या रमण

इन सब यान्त्रिक क्रियाओं में किसी इच्छा या कामना का निग्रह अन्तर्निहित होता है और इनका विश्लेषण तथा इनके आधार में काम कर रहे निग्रहों की अन्वेषणा मनोविश्लेषकों का प्रधान विषय रहा है। मनोविश्लेषण का साहित्य पढ़ने से निग्रह और इसके हानिकर परिणामों के बारे में इतना व्यापक असर पड़ता है कि पाठक को मनोविश्लेषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सदा यही शिक्षा मिलती है कि जीवन में एकमात्र वर्जनीय वस्तु निग्रह है। परन्तु हम पूछेंगे, तो क्या 'स्वच्छन्द रहना' जीवन के लिये रामबाण है? यहां फ्रायड के अपने कुछ शब्द बहुत लोगों की आँखें खोलने वाले सिद्ध होंगे। अपनी मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित अपनी नयी प्रावेशिक व्याख्यानमाला में शिक्षा के मामले का स्पष्टीकरण करते हुए वह कहता है, "बच्चे को अपनी अन्धप्रेरणा को संयत करना सीखना चाहिये। अपने आवेगों का बे-रोकटोक अनुसरण करने के लिये उसे खुली छूट दे देना असम्भव है। अतः शिक्षा का प्रयोजन निषेध करना, टोकना, दबाना है...। किन्तु हमने विश्लेषण द्वारा यह मालूम किया है कि अन्धप्रेरणाओं का दमन स्नायु-रोगों के खतरे से भरा है...। अतः अन्धप्रेरणा को खुली क्रीड़ा करने देने और उसे निराश करने के कुएं और खाई के बीच का मार्ग शिक्षा को बनाना है।" और इस प्रकार 'हम किन समयों पर तथा किन विधियों से कितना रोक सकते हैं' यह मालूम करने से ही समस्या का हल निकलेगा। इसके अतिरिक्त बच्चों की शरीर-रचनात्मक प्रकृतियों के भेद का भी ख्याल रखना होगा।

साधक को भी योगाभ्यास में अपने आपको नयी मनोवृत्तियों और नये मूल्यांकनों में शिक्षित करना होता है। अतएव उपर्युक्त निर्देश उसके लिये पूरे के पूरे लागू होते हैं। धीमे-धीमे उसे भी अति रमण (over-indulgence) और अति निग्रह के बीच सावधानता पूर्वक मार्ग बनाते हुए अपने को उन्नत करना है।

(ग) ईमानदारी

मनोविश्लेषण मानसिक-विकार-विज्ञान के नये ढंग से सत्यहृदयता और ईमानदारी के नैतिक गुणों में हमारे विश्वास को पुनः दृढ़ करता है और ये योग की प्रगति के लिये अतीव आवश्यक हैं। सब मानसिक गड़बड़ों में निग्रह अर्थात् दबी हुई अतृप्त वासना छिपी रहती है। यह असन्तुष्ट वासना आत्म-वंचना की अनेक यान्त्रिक क्रियाओं के द्वारा व्याधि के लक्षण पैदा करती है। अब मनोविश्लेषणात्मक उपचार का स्वरूप यह है कि रोगी को स्वतन्त्र संसर्ग (Free Association) और स्वप्न-विश्लेषण (Dream Interpretation) की पारिभाषिक प्रक्रियाओं में से गुजारते हैं और मानसिक गड़बड़ के पीछे विद्यमान असली प्रेरक भावों को उससे स्पष्ट स्वीकार कराते हैं। यह चीज स्वयं इलाज कर देती है। क्या यह अपने प्रति सत्यहृदयता और ईमानदारी के महत्त्व का क्रियात्मक उदाहरण नहीं है? फ्रायड कहता है, 'मनोविश्लेषण का लक्ष्य है जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अचेतन भाग की खोज और इससे अधिक किसी चीज़ को वह प्राप्त भी नहीं कर सकता।' और उपचार का उद्देश्य यह होता है कि पारिभाषिक प्रक्रिया के द्वारा रोगी को अपनी आत्म-वंचनाओं की ओट में अपनी इच्छाओं को देखने और चेतना के स्तर पर उनके साथ मुकाबला करने में तथा अपने प्रति पूर्णतया सच्चा और ईमानदार रहने में समर्थ बनाया जाय। योगाभ्यास के लिये भी ठीक ये गुण—सच्चाई और ईमानदारी—अनिवार्य हैं और साधक को अवश्य ही इनमें पूर्ण हार्दिक विश्वास होता है। मनो-विश्लेषण द्वारा संगृहीत दृष्टान्त-रूप साक्षी इस विश्वास को और भी अधिक पुष्ट करती है।

फ्रायड

मनोविश्लेषण के हमारे इस विवेचन से बहुत से लोग श्रान्त हो गये होंगे और अधीरता के साथ पूछेंगे, 'पर लैङ्गिक मतवादों के बारे में आपका क्या वक्तव्य है? क्या लिङ्ग ही सब कुछ है? क्या आपको यह स्वीकार है कि सर्वोत्तम नैतिक या धार्मिक प्रेरक भाव भी अवश्यमेव केवल आच्छादित लैङ्गिक प्रेरक भाव (Sexual motive) ही होता है?' मुझे कहना होगा कि मानसिक रोगियों के थोड़े से वैयक्तिक अनुभव ने फ्रायड के सर्वलिङ्गवाद (Pan-sexualism) के विरुद्ध मेरे प्रतिरोध को बहुत हद तक ढहा दिया है, क्योंकि मैंने देखा कि प्रत्येक उदाहरण में गड़बड़ के अन्दर लिङ्ग का कुछ हाथ था। किन्तु कुछ मानसिक रोगियों को लेकर मैं व्याप्ति नहीं बना सकता और अतः मेरा विश्वास है कि फ्रायड अपने मतवाद के अन्य अनेक अंशों की भांति इस आधारभूत अंश में भी अतिव्याप्ति के दोष का भागी है। मेरा विश्वास है कि फ्रायड ने मानव-प्रकृति के संबन्ध में व्यापक मतवाद को अपना सीधा लक्ष्य नहीं बनाया था। उसका दृष्टिबिन्दु मानसिक रोग तथा उसके उपचार तक ही सीमित था। अतएव उसे अवचेतन और तद्गत पदार्थ या उसके अन्तर्गत निग्रहों में ही स्वभावतः व्यस्त रहना था। इस प्रकार उसने मन के जिन अद्भुत तथ्यों को ढूंढ निकाला उनका उस पर स्वभावतः ही बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने उनको मन के न्यूनाधिक पूर्ण चित्र का विशाल आकार दे दिया। परन्तु उसमें आदर्शवादी प्रवृत्ति थी ऐसे निर्देश भी मिलते हैं। हमने देखा है कि 'स्वच्छन्द जीवन' को वह उचित नहीं मानता। निग्रह को आवश्यक मानता है। अपने नये व्याख्यानों में 'व्यक्तित्व-रचना-विज्ञान' (Anatomy of Personality) पर लिखे एक अध्याय में वह वर्णन करता है कि व्यक्तित्व के तीन घटक हैं:—(१) अति-अहं (super-ego) (जो नैतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिबन्धों का बोधक है) (२) अहं (संघटित अपना-पन) और (३) ईद (उच्छृङ्खल वासनाएं)। अब अहं के विस्तार द्वारा अति–अहं और ईद के बीच बर्धमान समस्वरता को सिद्ध करने की प्रक्रिया का नाम व्यक्तित्व की उन्नति है। रोग-निवारक प्रयत्नों का उद्देश्य है "अहं को पुष्ट करना, अति-अहं से इसको और भी अधिक स्वाधीन कर देना, इसकी दृष्टि के क्षेत्र को बढ़ाना और इसके संघटन का इस प्रकार विस्तार करना कि यह ईद के नये भागों को अपने में ले सके। जहाँ ईद था वहाँ अहं होगा।" मानव की उन्नति की संभावनाओं का और भी अधिक स्पष्ट निर्देश तब मिलता है जब कि वह कहता है कि, "भविष्य के लिये हमारी सर्वश्रेष्ठ आशा यह है कि बुद्धि—वैज्ञानिक तर्कणा—को यथासमय मानव पर सर्वाधिकार कायम करना चाहिये। और तर्कणा का स्वरूप ही हमें गारंटी देता है कि यह मानव भावों (Human emotions) और उनसे निर्धारित अन्य सब चीज़ों को अपना-अपना उचित स्थान देने में चूकेगा नहीं।" परन्तु ये केवल संकेत हैं और मनोविश्लेषण का भावात्मक वाद, जैसा कि यह आज है, निःसंदेह मानव-प्रकृति का आंशिक वर्णन है। उदात्ती-करण (Sublimation) की प्रक्रिया जो योग के विद्यार्थियों के लिये इतनी आवश्यक है उसका फ्रायड ने बहुत ही कम ज़िक्र किया है।

इस विषय में श्रीअरविन्द की देन

फ्रायड ने मुख्यतया मनुष्य की पशु-प्राप्त दाय (Animal heritage) का ही अध्ययन किया है,—उसका, जो कि मनुष्य अपने विकास के अतीत काल में रहा है। परन्तु वह जो कुछ बन सकता है उसका अर्थात् उसके स्वभाव की संभावनाओं का फ्रायड ने संकेत मात्र किया है, यह उपरिवर्णित निर्देशों से पता चलता है। पर ठीक इसी पहलू में श्रीअरविन्द ने दिलचस्पी ली है और इसलिये यह कहना ग़लत न होगा कि वे फ्रायड के विचारों में आवश्यक पूरक को जोड़ते हैं। अतिचेतन अपनी उच्चतर संभाव्यशक्तियों (Potentialities) की सामग्री के साथ अवचेतन का परिपूरक बन कर मानव-प्रकृति का पूर्ण चित्र पेश करता है। अतिचेतन (super-conscious) का व्यक्तीकरण और रूपान्तर की क्रियात्मक विधि के स्वरूप का निरूपण ये श्रीअरविन्द की दो महान् देने हैं, जिनका मनोवैज्ञानिक मूल्य जानने में अभी हमें कुछ समय लगेगा। यह तथ्य है कि योग, अपने समग्र रूप में, पाश्चात्य मनोविश्लेषण को महत्त्वपूर्ण पाठ पढ़ा सकता है। कास्टर का यह कहना ठीक है कि, 'यद्यपि योग मूलतया पूर्वीय पद्धति है तो भी इसमें वह सूत्र है जिसकी पश्चिम को आवश्यकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि विश्लेषणात्मक पद्धति और सिद्धान्त को आधुनिक जीवन के पुनरुज्जीवक और पुनर्घटक साधन के तौर पर अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचना है (कास्टर, योग और पश्चिमीय मनोविज्ञान, Coster, 'Yoga and western Psychology' पृ० १०)।

चेतावनी

हमने ऊपर मनोविज्ञान का यथार्थतः पक्ष-पोषण किया है और नीचे मनोविज्ञान-विषयक कुछ ग्रन्थों की सूची भी दी है जिन्हें केवल उत्सुक यौगिक विद्यार्थी ही नहीं अपितु कोई भी शौक और लाभ के साथ पढ़ सकता है। अतः हम अन्त में सावधानता की एक टिप्पणी देना अपना कर्तव्य समझते हैं। संपूर्ण विज्ञान ही ज्ञान की एक वर्धमान राशि है। हमारे तथाकथित नियम भी बहुधा काम-चलाऊ स्थापनायें होती हैं और जहां वे आज आधारभूत माने जाते हैं वहां कल उन्हें हम बिना किसी संताप-अनुताप के तिलाञ्जलि दे सकते हैं। मनोविज्ञान एक बाल-विज्ञान है और अपनी वर्तमान दशा में भयानक वाद-विवादों का शिकार बना हुआ है। अतः पाठक को यह परामर्श देना उत्तम होगा कि वह किन्हीं भी सम्मतियों को अन्तिम न समझ ले और उन पर अनुचित तौर से उत्साह और जोश में न भर जाय।

स्वाध्याय के योग्य पुस्तकों की सूची :—

१. McDougall, Character and the Conduct of Life, A Practical Psychology for Every man. (Methuen & Co. London.)
२. K. M. Bowman, Towards Peace of Mind. (George Allen & Unwin.)
३. Thoulless, The control of Mind.
४. Coster, Yoga and Western Psychology. (Oxford University Press.)
५. Coster, Psycho-analysis for Normal People.
६. श्रीअरविन्दाश्रम पांडिचेरी से प्रकाशित ग्रंथों की सूची कवर के चौथे पृष्ठ पर दी है।
७. Aveling, Directing mental energy.
८. Gordon, The Neurotic Personality. (Kegan Paul.)
९. Gordon, Wholesome Personality.
१०. C. G. Jung, Modern Man in Search of a Soul.
११. C. G. Jung, Psychology and Religion.
१२. Wolfe, How to be Happy though Human. (Routledge.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनागसो अदितये स्याम

यह वेद-वचन वेद के एक प्रसिद्ध मंत्र का अन्तिम चरण है। यह वेदमंत्र चारों वेदों में, ऋक् में, यजुः में, साम में और अथर्व में आया है; अथर्ववेद में तो दो बार आया है। इन चारों मूल वेदों के अतिरिक्त यह मंत्र तैत्तिरीय संहिता में दो बार आया है तथा निरुक्त में भी व्याख्यात है। इससे यह स्पष्ट है कि यह मंत्र वैदिक वाङ्मय में कितना महत्त्वपूर्ण है। इस लेख में हम इस मंत्र के उपर्युक्त अन्तिम चरण के, जो हमारी इस पत्रिका का ध्येय मंत्र हो गया है, विचार तक ही अपने आपको सीमित रखेंगे। पहिले तीन चरणों पर या संपूर्ण मंत्र पर हम अगली बार ही विचार कर सकेंगे।

इस वेद-वचन का शब्दार्थ है—(अदितये) अदिति के लिये हम (अनागसः) निष्पाप (स्याम) होवें। अदिति के लिये, अदीना दिव्यमाता के लिये, देवजननी शक्ति के लिये हम निष्पाप, निरपराध, निर्मल, त्रुटिरहित, अपूर्णतारहित, छिद्रहीन बनें, होवें, रहें। अदिति के सामने हम निष्कलंक रहें। अदिति को—अदीनता, उपक्षय-हीनता, अखण्डता को – पाने के लिये हम सब प्रकार की कमियों से रहित बनें। उस अदिति अवस्था को प्राप्त करने के लिये या उस अदिति माता का बन जाने के लिये हमें निष्पाप, शुद्ध, विमल, दोषरहित, ज़रा सी भी विकलता से रहित होना चाहिये। ये सब भाव हैं जो कि इस वेदवचन का अर्थ समझ जाने पर इस वचन द्वारा पाठकों के अन्दर उठने चाहियें और उठने होंगे। पर ज़रा हम इस वेद-वचन के एक एक शब्द पर जुदा जुदा भी कुछ थोड़ा और अधिक विचार करें।

अदितये

'अदिति' इस प्राचीन वैदिक शब्द की व्याख्या हम कई प्रकार से कर सकते हैं। संस्कृत व्याकरण की धातुओं की दृष्टि से देखें तो 'दो अवखण्डने' या 'दीङ् उपक्षये' से दिति बना है। खण्ड खण्ड वाली या उपक्षययुक्त जो है वह दिति है, उससे दैत्य उत्पन्न हुवे हैं। खण्डितावस्था से रहित एवं उपक्षय तथा विनाश से रहित है अदिति। इसलिये निरुक्तकार यास्क मुनि ने 'अदिति द्यौरदितिरन्तरिक्षमदिति माता......' इत्यादि अदिति की महिमा प्रकट करने वाले वेदमंत्र को प्रस्तुत करते हुवे अदिति का अर्थ 'अदीना देवमाता' ऐसा किया है अर्थात् वह देवमाता जिसमें उपक्षय या अवखण्डन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनता नहीं है। वह अमर, अखण्ड, असीम की देवता है। सब पाप, बुराई खराबी, नीचे दर्जे के भाव, असुर वृत्तियां और असुरत्व दिति से उत्पन्न होते हैं; सीमितता, खण्डितावस्था, विनश्वरता, दीनता की उपज हैं। और सब पुण्य, अच्छाई, उत्तमता, ऊँची कोटि के भाव अर्थात् सब दैवी वृत्तियाँ और देवत्व अदिति से जन्मते हैं; असीमता, अखण्डता, सनातनता और अदीनता के गर्भ से उत्पन्न होते हैं। अथवा अदिति की व्युत्पत्ति दिति के निषेध में न करके स्वतंत्र 'अद्' धातु से मानी जा सकती है। व्याकरण की दृष्टि से व्युत्पत्ति किसी तरह की जाय 'अदिति' शब्द की व्याख्या में भेद नहीं पड़ता। अपने सर्वोच्च रूप में अदिति अनन्त, असीम आद्या सत्ता है जिस रूप में वह सब देवों की जननी है। पर साथ ही वह असीम अनन्त चेतना भी है जिस रूप में वह सब ज्ञान प्रकाशों को दुहने वाली "गौ" कहाती है। वैदिक निघण्टु में गोवाचक नामों में भी अदिति पढ़ा है, तथा वेद में 'गौ' रूप में अनेक जगह अदिति का सुन्दर वर्णन है। कई जगह चित्रा गौ, नाना प्रकार का प्रकाश देने वाली गौ कही गयी है। सो सब कुछ देने वाली 'गौ' रूप से भी हम अदिति की उपासना कर सकते हैं। फिर अदिति 'वाक्' है। 'वाक्' नामों में तथा 'पृथ्वी' के नामों में भी वैदिक निघण्टु में अदिति शब्द पढ़ा गया है। वाक् अर्थात् अभिव्यक्त करने वाली शक्ति अदिति है। ऋग्वेद के दशम मंडल में जो प्रख्यात आम्भृणी वाक् का सूक्त है जिसमें वह कहती है कि 'मैं ही रुद्र वसु आदित्यों के साथ चलती हूँ, मैं ही सब देवों को धारण करती हूँ इत्यादि......' वह सब जगत्संचालिका और जगत्प्रकाशिका अदिति माता ही कह रही है। और फिर अदिति के पृथ्वी होने का मतलब यह कि सब स्थूल अभिव्यक्ति तक की शक्ति भी वही दिव्य शक्ति है। इसलिये उपरिनिर्दिष्ट १-८९-१० ऋचा में ठीक ही कहा है कि 'द्यौ अदिति है, अन्तरिक्ष अदिति है, माता अदिति है, पिता पुत्र भी वही है, सब देव अदिति हैं, पंचजन अदिति है जो कुछ हुआ है और जो कुछ होगा वह सब अदिति है।' सो इस महामहिमामयी अदिति जगदम्बा के प्रति हम क्या करें, कैसे बर्तें ?

अनागसः

हम 'अनागस्' होवें। 'आगस्' शब्द का सामान्य संस्कृत में अर्थ है 'अपराध', 'दोष', या 'त्रुटि'। तो 'अन्-आगस्' का अर्थ हुआ अपराध न करने वाला, निर्दोष, त्रुटिरहित। यदि हम अनागस् होंगे तभी दिव्यमाता हमारे अन्दर अपना काम कर सकेगी। उनका कार्य हमारे अन्दर ठीक तरह से होने में रुकावट ये हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध प्रकार के आगस् ही होते हैं। इन्हें हमें अवश्य दूर करना होगा। वेद में 'आगस्' आदि पापवाचक शब्द उस अर्थ में ही प्रयुक्त नहीं किये जाते जिसमें हम नैतिक 'पाप' को समझते हैं। वैदिक ज्ञान के अनुसार मिथ्यात्व या मिथ्यागति के सिवाय पाप या 'आगस्' और कुछ चीज़ नहीं है। इसीलिये वैदिक परिपाटी में प्रत्येक पापवाचक शब्द (जैसे अघ, रपस्, अंहस्, कण्व आदि) स्वयमेव रोगवाचक भी माना जाता है। क्योंकि रोग भी शरीर में हुवा मिथ्यात्व या मिथ्यागति ही तो है। एवं हमारे मन में या प्राण में या शरीर में जो कुछ भी मिथ्यागति होती है वह उस-उस जगह का हमारा 'आगस्' है। हम जानते हैं कि अश्रद्धा, भ्रम, संशय, अज्ञान, निराशा ये सब मन की मिथ्या गतियाँ हैं; मन के 'आगस्' हैं। इनके होते हुए माता हमारे मन में अपना दिव्य कार्य कदापि नहीं कर सकती। इसी तरह राग द्वेष, काम क्रोध लोभ आदि प्राण की ज़बरदस्त मिथ्या गतियाँ हैं। जब तक हमारे प्राण इनसे शुद्ध नहीं हों, अनागस् नहीं हो जाँय तब तक माता कैसे हमारे प्राणों द्वारा अपना दिव्य कार्य कर सकती है। फिर इसी तरह शरीर को अनागस् बनाने के लिये हमें रोग, व्याधि, आलस्य, कुचेष्टा आदि को शरीर से बिलकुल निकाल देना होगा तभी हमारा शरीर माता के योग्य बनेगा। दूसरे शब्दों में सब बेसुरापन ही आगस् है। माता के दिव्य छन्द स्वर से जब हम ज़रा भी अपने मन में, प्राण से या शरीर से विपरीत स्वर निकालते हैं या अपने अदिव्य स्वर को ही चलते देना चाहते हैं, वहीं 'आगस्' हो जाता है। हम अशुद्ध, विकृत, बेसुरे हो जाते हैं। यदि हम सचमुच अदितिके उपासक हों, सचमुच माताके होना चाहते हों तब तो हमें यह अनुभव होना चाहिये कि सभी जगह और सभी कालों में माता हमारे सामने हैं और हम जहां ज़रा भी मनकी क्रियामें या प्राणों के व्यापारमें या शरीर की चेष्टामें कुछ भी विकृत स्वर निकालने लगें, मिथ्यागति करने लगें तो माता की स्मृति हमें सावधान कर दे, बचा ले। जो हो, यदि हम माताके सच्चे पुत्र बनना चाहते हैं तो यह ज़रूरी है कि हम अपने सब अंगों में सर्वथा शुद्ध, निर्दोष, निर्मल, त्रुटिहीन, विकलतारहित होवें, हो जांय।

स्याम

हो जांय। हम ऐसे हो जांय। ऐसे हो जाना, यही हमारा काम है। यदि हम अनागस् हो जांय—बल्कि ऐसे होनेका सच्चे भाव से यत्न ही करें—तो बाकी सब तो माता कर देगी। तो बस, सचमुच ऐसे होजाना, होजाने का सचमुच यत्न करना यही मनुष्यका भाग है, माताके पुत्रका काम है, उसका उद्योग है, पुरुषार्थ है। यह पुरुषार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम करें। इसके लिये हम, इस सत्य को जानने वाले हम, आज से ज्ञानपूर्वक यह संकल्प करें,—**हम अदितिके लिये अवश्य 'अनागस्' होंगे, सर्वथा शुद्ध और निर्दोष बनेंगे,** और आज से अटलरूप से इसी विश्वासमें रहें भी। क्या देखते नहीं कि, गहराई के अन्दर, इस पृथ्वी के सभी मानव प्राणी, चाहे वे इसे जानते हों या न जानते हों, अपनी गुहानिहित अन्तरात्माओं में अटल विश्वास के साथ, ऊर्ध्वमुखी पवित्र यज्ञाग्नि की तरह यही एक पवित्र अभीप्सा उठा रहे हैं, अदिति के लिये अनागस् होजाने की निरंतर प्रार्थना कर रहे हैं, मानों वैदिक पावन वाणीमें वे सतत जाप ही कर रहे हैं—**अनागसो अदितये स्याम।** तो हम ज्ञानपूर्वक ऐसा क्यों न करें ?

लेखकों का परिचय

श्री लीलावतीजी—

एक संभ्रान्त कुल की विदुषी देवी हैं। अभी तक नई देहली के एक कन्या-विद्यालय की प्रिंसिपल थीं। बी० ए० बी० टी० हैं। अब श्री अरविन्दाश्रम में अधिक रहने पर वह प्रिंसिपल-पद छोड़ा है। यह भी सूचित कर देना चाहिये कि आप श्री डा० इन्द्रसेनजी की धर्मपत्नी हैं। श्री अरविन्दाश्रम की आप लगभग स्थिर सदस्या हो चुकी हैं।

पं० दीनानाथजी भार्गव 'दिनेश'—

आप हिन्दी के उत्कृष्ट कवि और लेखक हैं। दिल्ली के प्रसिद्ध मासिक-पत्र 'मानवधर्म' के सम्पादक हैं। अखिल भारतीय रेडियो से गीता के सुप्रसिद्ध व्याख्याता हैं। आपने गीता का सरल, सुबोध और सरस हिन्दी-पद्य में प्रतिश्लोकी अनुवाद किया है जो 'श्रीहरिगीता' के नाम से प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृवाणी

यह पुस्तक छप रही है। शीघ्र प्रकाशित होगी। इसका एक अध्याय नमूने के तौर पर इस पत्रिका में ७ वें पृष्ठ पर दिया गया है। इसके लेख 'माताजी से वार्तालाप' नाम से 'वैदिक धर्म' में छपते रहे हैं। अब यह पुस्तकाकार छप रही है। मूल्य २)

जगन्नाथ का रथ

यह पुस्तक लगभग छपकर तैयार है। इसमें से 'स्वप्न' नामक लेख नमूने के तौर पर इस पत्रिका में दिया गया है। यह श्रीअरविंद के कुछ बंगला लेखों का अनुवाद है। मूल्य ॥)

उत्तरपाडा अभिभाषण

यह छप कर बिलकुल तैयार है। यह श्रीअरविंद का एक बहुत महत्त्व-पूर्ण भाषण है। मूल्य ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द की हिन्दी पुस्तकों की सूची

श्रीअरविन्द और उनका योग	...	मूल्य ॥)
योगप्रदीप	...	,, ॥)
इस जगत् की पहेली	...	,, ॥=)
माता	...	,, ॥)
योग के आधार	...	,, २)
हमारा योग और उसके उद्देश्य	...	,, ॥)
गीता-प्रबन्ध (प्रथम भाग)	...	,, ४)

इसके अतिरिक्त श्रीअरविन्द की अंग्रेज़ी, बंगला आदि भाषाओं की सब पुस्तकें भी यहाँ से मिल सकती हैं।

मिलने का पता:—

श्रीअरविन्द-निकेतन

एस० एन० संडरसन के साथ

डाकपेटी ८५

कनाट सर्कस

नयी देहली।

प्रकाशक और मुद्रक श्री डा० इन्द्रसेनजी मंत्री श्रीअरविन्द-निकेतन, द्वारा जमना प्रिंटिंग वर्क्स देहली में मुद्रित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
१६-८-४३

अदिति

अनागसो अदितये स्याम
—वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

सम्पादक

आचार्य अभयदेव जी विद्यालंकार

प्रकाशक

श्रीअरविन्द निकेतन

कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

मूल्य सवा रुपया

वर्ष-भर की चारों पुस्तिकाओं का मूल्य चार रुपया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५ अगस्त १६४३ के
श्रीअरविन्द-दर्शन
के उपलक्ष में
भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

मातृवचनामृत		
१. प्रार्थना व ध्यान	...	५
२. आध्यात्मिक जीवन में धर्म का स्थान	...	६
श्रीअरविन्द-वाणी		
१. श्रीअरविन्द के सूत्र-वचन		
(५) बन्धन		१२
२. कर्मों का आनन्द	श्रीअरविन्द	१६
विवर्तन की युग-संधियाँ	श्री नलिनीकान्त जी	२१
अभीप्सा	श्री अनिलवरण जी	३०
कलापूर्ण वस्तु ?	श्री जिनराजदास जी	३२
एक टेक	स्व० श्री पं० चमूपति जी	३३
प्रश्नोत्तरी	श्री नारायणप्रसाद जी	३४
श्रीअरविन्द—एक महान् योगी	श्री डा० इन्द्रसेन जी	३८
युद्ध का अन्त	श्री शुद्धानन्द जी	४८
प्यारे को पाना	...	५३
विकार और उद्धार	श्री पं० दीनानाथ जी 'दिनेश'	६२
गीता में अनासक्ति-योग	श्री अनिलवरण जी	६३
तीनों ओर	आचार्य अभयदेव जी	७०
श्रीअरविन्द निकेतन का उद्घाटन	,,	७६
लेखकों का परिचय	,,	८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

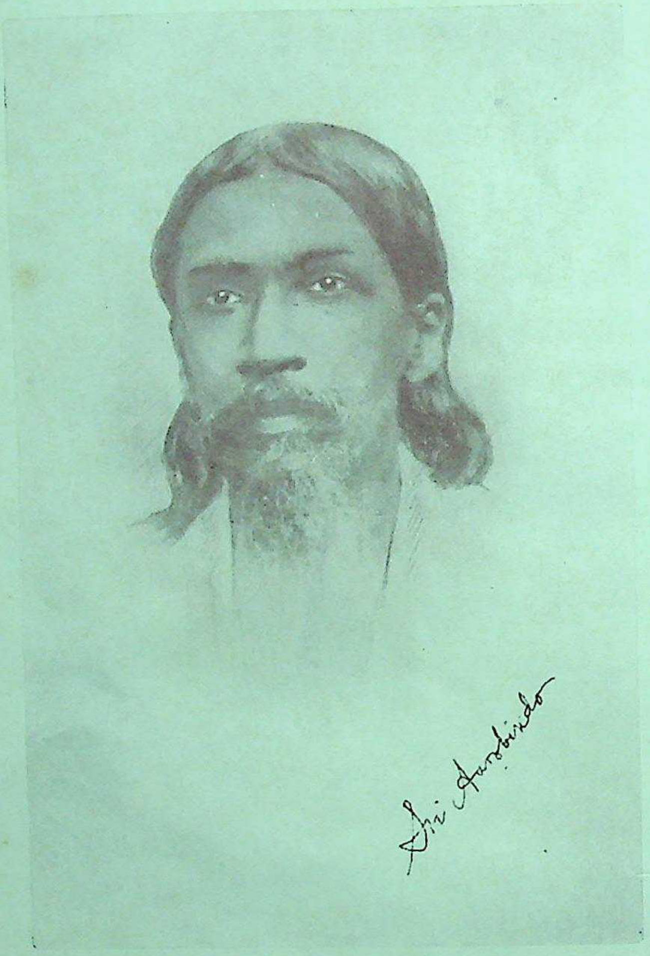

श्रीअरविन्द

इस १५ अगस्त को इनका ७१वाँ जन्म-दिवस है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृवचनामृत—

प्रार्थना व ध्यान

शान्ति, समस्त पृथ्वी पर शान्ति......।

हे भगवान् ! ऐसी कृपा कर कि सब लोग साधारण चेतना से बाहर निकलकर, सांसारिक वस्तुओं की आसक्ति से मुक्त होकर तेरी दिव्य उपस्थिति के ज्ञान में जागृत हों, तेरी परम चेतना के साथ अपनी चेतना को युक्त करें और इससे प्राप्त होनेवाली शान्ति के प्राचुर्य का आस्वादन करें।

हे प्रभु ! तू ही हमारी सत्ता का परम पति है, तेरा ही विधान हमारा विधान है ; हम अपनी सारी शक्ति के साथ यह अभीप्सा करते हैं कि हमारी चेतना तेरी शाश्वत चेतना के साथ तादात्म्य प्राप्त करे जिससे प्रत्येक वस्तु में और प्रत्येक क्षण हम तेरा ही महान् कार्य सम्पन्न कर सकें।

हे नाथ ! हमें आकस्मिक घटनाओं की चिन्ता से मुक्त कर, साधारण स्थूल दृष्टि से मुक्त कर, ऐसी कृपा कर कि अब हम केवल तेरी ही आंखों से देखें और केवल तेरी ही इच्छा से कार्य करें ; हमें अपने दिव्य प्रेम की सजीव ज्योति-शिखाओं में परिणत कर।

आदर के साथ, भक्ति के साथ, अपनी समस्त सत्ता का आनन्दपूर्ण आत्मोत्सर्ग करते हुए, हे प्रभु, मैं अपने-आपको न्योछावर कर रही हूं जिसमें तेरा विधान सिद्ध हो।

शान्ति, समस्त पृथ्वी पर शान्ति......।

१४ फरवरी १६१४ —मूल फ्रेंच से अनूदित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक जीवन में धर्म का स्थान

प्रश्न—धर्म का यथार्थ स्वरूप क्या है? क्या धर्म आध्यात्मिक जीवन के मार्ग में बाधक है?

उत्तर—धर्म मानवजाति के उच्चतर मन की चीज़ है। मनुष्य के उच्चतर मन की जो चेष्टा है, जिसके द्वारा वह अपनी शक्तिभर अपने से परेकी किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहता है, उस वस्तु को जिसे मानवजाति ईश्वर, परमात्मा, सत्य, श्रद्धा, ज्ञान या अनन्त, किसी प्रकार की निरपेक्ष सत्ता के नाम से पुकारती है, जहां तक मानव मन की पहुँच नहीं होने पर भी वह जहां पहुँचने की चेष्टा करता रहता है,—इस चेष्टा का नाम ही धर्म है। धर्म का जो मूल स्रोत है, उसमें वह भले ही दिव्य हो, किन्तु इसका जो प्रकट स्वरूप है, वह दिव्य नहीं है, बल्कि मानव ही है। वास्तव में हमें धर्म की जगह धर्मों की बात कहनी चाहिए, कारण मनुष्य के बनाये हुए धर्म अनेक हैं। इन विभिन्न धर्मों की रचना, जब कि ये एक ही मूल से उद्भूत न हुए हों तो भी, प्रायः एक ही प्रकार से हुई है। ईसाई धर्म की स्थापना किस प्रकार हुई, यह हमें ज्ञात है।

जो धर्म ईसाइयत के नाम से विख्यात है, निःसन्देह उसकी रचना ईसामसीह ने नहीं की थी, बल्कि कतिपय विद्वान् और अत्यन्त चतुर मनुष्यों ने मिलकर इस धर्म को इस रूप में, जिस रूप में आज यह हमारे सामने है, रच डाला है। जिस प्रकार इसकी रचना की गयी, उसमें कहीं भी दिव्यता का लेशमात्र तक नहीं था और जिस रूप में यह कार्य कर रहा है, उसमें भी दिव्यता का कोई नाम-निशान नहीं है। और फिर भी जिस बहाने या जिसे निमित्त बनाकर इस धर्म की स्थापना की गयी, वह असंदिग्ध रूप से कोई प्रकाश था, जो एक ऐसे पुरुष द्वारा आया था, जिसे दिव्य पुरुष कहा जा सकता है, ऐसा पुरुष जो किसी दूसरे लोक से यहाँ आया, तथा किसी उच्चतर भूमिका के ज्ञान और सत्य को इस पृथ्वी के लिये अपने साथ उतार लाया। वह आया और उसने अपने सत्य की प्रतिष्ठा के लिए कष्ट झेले, किन्तु ऐसे लोग विरले ही होंगे, जिन्होंने उसकी वाणी को ठीक-ठीक समझा हो और ऐसे लोग भी इने गिने ही हुए जिन्होंने उस सत्य को, जिसके लिये इस दिव्य पुरुष ने कष्ट झेले थे, पाने और उसपर आरूढ़ रहने की परवाह की।

गौतमबुद्ध संसार से अलग होकर एकान्त में चले गए, ध्यान लगाकर बैठे और संसार के कष्ट और दुःखों से, यह जो रोग और मृत्यु और इच्छा और पाप और क्षुधा है, उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब से छुटकारा पाने का एक मार्ग ढूँढ निकाला। उनको एक सत्य का दर्शन हुआ और उन्होंने इस बात की चेष्टा की कि वे इस सत्य को अपने इर्दगिर्द जमा हुए हुए अनुयायियों और शिष्यों को बता दें और दे दें। परन्तु उनके देह-त्याग करने से पहले उनके जीवन-काल में ही उनकी शिक्षा का तोड़मरोड़ किया जाना और विकृत किया जाना प्रारंभ हो गया था। और यह बाद में, बुद्ध भगवान् के प्रयाण के बाद ही हुआ कि बौद्धमत एक सुव्यवस्थित धर्म के रूप में जगत् के सामने आया, जिसकी स्थापना बुद्ध के कल्पित कथनों के आधार पर तथा उनके कथनों का जो स्वरूप दन्तकथाओं के रूप में प्रचारित हुआ था, उसके कल्पित अर्थ के आधार पर हुई। परन्तु शीघ्र ही, चूँकि उनके शिष्य तथा उनके शिष्यों के शिष्य, उनके गुरु की शिक्षा क्या थी, अथवा उनके उपदेशों का यथार्थ अर्थ क्या था, उसके सम्बन्ध में एकमत न हो सके, इसलिए मूल बौद्धधर्म की अनेक शाखा-प्रशाखाएं हो गयीं—हीनयान, महायान तथा सुदूरपूर्व एशिया के बौद्धपंथ आदि कई मत हो गए, जिनमें से प्रत्येक का यह दावा है कि, उनके मत में ही बुद्ध की मूल और निर्मल शिक्षा विद्यमान है।

ईसामसीह की शिक्षा की भी यही दशा हुई, इसको भी उपर्युक्त प्रकार से ही एक नियमबद्ध और संगठित धर्म का रूप दिया गया। बहुधा लोग यह कहा करते हैं कि, यदि ईसामसीह इस पृथ्वी पर फिर से लौटकर आवें और अपनी शिक्षा को उसके वर्तमान रूप में, लोगों ने जो रूप उसपर लाद दिया है उसमें, देखें, तो वे उसको पहचान भी न सकेंगे और यदि बुद्ध भगवान् फिर से यहां आवें और उनकी शिक्षा की जो दशा कर दी गई है, उसको देखें तो वे निरुत्साहित हो तुरन्त निर्वाण की ओर लौट जायंगे। सभी धर्मों की कथा इसी प्रकार की है। सभी धर्मों का जन्म किसी महान् जगद्गुरु के आविर्भाव को लेकर होता है। ये जगद्गुरु इस पृथ्वी पर आते हैं, सत्य को प्रकाशित करते हैं और स्वयं किसी भागवत सत्य के मूर्तिमान् अवतार होते हैं। परन्तु मनुष्य इस सत्य पर अपना ही कब्जा जमा लेते हैं, इस पर से वे एक रोजगार खड़ा कर लेते हैं और इसके द्वारा वे एक राजनीतिक संगठन-सा बना लेते हैं। ये लोग धर्म के साथ किसी शासनतंत्र को, किसी नीति को तथा कुछ कायदे-कानूनों को जोड़ देते हैं, जिनके अपने सिद्धांत और नियम, विधि और व्यवस्था, शास्त्रोक्त कर्म और उत्सव होते हैं, जिनका अनुसरण और पालन करना उस धर्म के अनुयायी के लिये फर्ज होता है। इनमें कोई हेर-फेर नहीं हो सकता और ये अनुल्लंघनीय होते हैं। रियासत की तरह इस में भी सच्चे भक्तों को पुरस्कार दिया जाता है और विद्रोह करनेवालों तथा उन्मार्गगामियों को, धर्मविरोधियों और धर्मत्यागियों को सजा।

इन नियमित रूप से स्थापित हुए हुए सभी धर्मों की ओर से जो पहली और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य बात सदा कही जाती है; वह यह है कि, 'यही धर्म सर्वोत्तम है, सत्य केवल इसी धर्म में है, बाकी के सभी धर्म या तो भ्रम में हैं या निम्न कोटि के हैं।' कारण इस प्रकार के सिद्धान्त को आधार बनाये बिना, ये व्यवस्थित विश्वासपरक धर्म खड़े ही नहीं हो सकते। यदि तुम्हारा इस बात में विश्वास न हो, यदि तुम इस बात की घोषणा न करो कि, वह अद्वितीय या उच्चतम सत्य तुम्हारे ही पास है, तो तुम दूसरों पर प्रभाव नहीं डाल सकोगे और अपने इर्द-गिर्द उनकी एक मंडली नहीं बना सकोगे।

इस प्रकार का भाव धार्मिक मन के लिये स्वाभाविक है, किन्तु इस तरह के भाव के कारण ही धर्म आध्यात्मिक जीवन के लिये बाधक हो जाता है। धर्म के सिद्धान्त और नियम मानवमन के बनाये हुए हैं और यदि तुम इनसे चिपके रहो तथा मनुष्य की जीवनचर्या के लिये इनमें जो व्यवस्था है उसके अन्दर अपने आपको बन्द कर रखो, तो तुम उस आत्मा के सत्य को, जो समस्त नियमों और सिद्धान्तों से परे है, जो विशाल है और महत् है, स्वतंत्र है, नहीं जानोगे, नहीं जान सकोगे। जब तुम किसी धार्मिक मतवाद में, केवल उसी को संसार का एकमात्र सत्य मानते हुए, रुक जाते हो और उसके साथ अपने आपको बांध लेते हो, तो तुम अपने अन्तरात्मा की उन्नति और विस्तार को रोक देते हो।

परन्तु धर्म को यदि तुम दूसरे ही दृष्टिकोण से देखो, तो यह जरूरी नहीं है कि, सभी मनुष्यों के लिये यह सदा बाधकरूप ही हो। यदि तुम धर्म को ऐसा समझो कि, यह मानव जाति की उच्चतर प्रवृत्तियों में से है, यदि उसके अन्दर तुम मनुष्य की अभीप्साओं को देख सको, पर साथ ही इस बात को भूल न जाओ कि, मनुष्य की बनायी हुई सभी चीजें आखिर अपूर्ण ही हैं, तो यह तुम्हें आध्यात्मिक जीवन तक पहुँचने में सहायकरूप ही सिद्ध होगा।

धर्म को गम्भीर और सच्ची लगन के साथ स्वीकार कर तुम उसके अन्दर यह खोजने का प्रयास कर सकते हो कि, उसमें सत्य क्या है, उसके अन्दर कौनसी अभीप्सा छिपी पड़ी है, मनुष्य के मन और मनुष्य के संगठन द्वारा भगवान् की कौनसी दिव्य प्रेरणा को वहां परिवर्तित और विकृत होना पड़ा है, और फिर यदि तुम उपयुक्त बौद्धिक दृष्टिकोण को बनाये रखकर आगे बढ़ो, तो अपने वर्तमान विकृत रूप में भी धर्म तुम्हारे मार्ग में कुछ प्रकाश ही डालेगा और तुम्हारे आध्यात्मिक प्रयास में कुछ-न-कुछ सहायता ही करेगा।

सभी धर्मों में ऐसे लोग हमें सदा मिलते हैं, जिनमें भावपूर्ण होने की बड़ी भारी क्षमता होती है और जो सच्ची और ज्वलंत अभीप्सा से ओत-प्रोत होते हैं। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी बुद्धि बहुत ही सरल होती है और वे ज्ञान द्वारा भगवान् तक पहुँचने की आवश्यकता को अनुभव नहीं करते। जिनकी प्रकृति इस प्रकार की है, उनके लिये धर्म का एक उपयोग है, इतना ही नहीं बल्कि उनके लिये यह एक आवश्यक वस्तु है, कारण मन्दिरों के उत्सवों आदि जैसी बाह्य प्रथाओं के द्वारा यह उनकी आन्तरिक आध्यात्मिक अभीप्सा को एक प्रकार का सहारा और मदद पहुँचाता है।

सभी धर्मों में कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्होंने अपने उच्च आध्यात्मिक जीवन का विकास किया है। परन्तु उनकी इस आध्यात्मिकता के विकास का कारण उनका धर्म नहीं है, बल्कि उन्होंने ही अपने धर्म में अपनी आध्यात्मिकता का समावेश किया है। ये लोग कहीं भी रहते, किसी भी सम्प्रदाय में पैदा हुए होते, वहां ही उनको उसी आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति हुई होती। वे जो कुछ भी हैं, उसको बनाया है, उनके अपने सामर्थ्य ने, उनकी अपनी अन्तःसत्ता की किसी शक्ति ने, न कि जिस धर्म को उन्होंने स्वीकार किया उस धर्म ने। अन्तरात्मा की यह शक्ति उनमें इतनी बलवान् है कि धर्म उनके लिये गुलामी या बंधन का कारण नहीं होता।

परन्तु चूंकि उनका मन बलवान, स्पष्ट और क्रियाशील नहीं होता, इसलिये उन्हें इस बात की आवश्यकता होती है कि वे ऐसा विश्वास करें कि, इस या उस संप्रदाय में ही निरपेक्ष सत्य है और बिना किसी विचलित कर देने वाली शंका या संदेह के वे अपने आपको उस पर न्यौछावर कर दें। सभी धर्मों में मैंने इस तरह के लोगों को पाया है, और इन लोगों की श्रद्धा को विचलित करना तो अपराध ही होगा। इस तरह के लोगों के लिये धर्म बाधक नहीं है। धर्म तो उनके लिये बाधक है, जिनमें आगे बढ़ने की क्षमता है, किन्तु वे लोग, जो और आगे नहीं बढ़ सकते, पर फिर भी आत्मा के मार्ग पर कुछ दूर तक चल सकते हैं, उनके लिये तो धर्म बहुधा सहायक ही होता है।

धर्म के कारण निकृष्टतम और उत्कृष्टतम, दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों को ही प्रोत्साहन मिला है। एक ओर यदि इसके नाम पर अत्यन्त खूंखार युद्ध लड़े गये हैं और अत्यन्त भयंकर सितम ढाये गये हैं, तो दूसरी ओर इसने धर्म-कार्य के निमित्त परम शौर्य और आत्म-बलिदान के भावों का भी पोषण किया है। मनुष्य के मन ने अपनी उच्चतम कर्मण्यताओं द्वारा जो कुछ प्राप्त किया है, दर्शनशास्त्र के समान ही धर्म भी उसकी सीमा बांधता है। यदि तुम धर्म के बाह्य रूप के गुलाम हो जाओ, तो वह एक अंतराय है, एक बंधन है, किन्तु इसके अन्दर जो सार है, उसका उपयोग करना यदि तुम सीख जाओ तो आध्यात्मिक भूमिका में ऊपर जा पहुंचने को यह तुम्हारे लिये कूदने-के-तख्ते का काम दे सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कोई किसी विशेष मत में विश्वास रखता है अथवा जिस किसी ने सत्य के कुछ अंश को प्राप्त किया है, वह ऐसा सोचने लगता है कि सत्य को, समग्र और पूर्ण सत्य को, केवल उसी ने पाया है। मानव स्वभाव ही ऐसा है। मानव प्राणियों को अपने पैर पर खड़े होने के लिये और अपने मार्ग पर चलने के लिये मिथ्यात्व की मिलावट आवश्यक-सी प्रतीत होती है, और यदि सत्य का दर्शन करने के लिये उन्हें एकाएक चक्षु दे दिया जाय, तो वे उस बोझ के नीचे कुचल जायेंगे।

प्रत्येक बार जब-जब भागवत सत्य एवं भागवत शक्ति का कुछ अंश पृथ्वी पर आविर्भूत होने के लिये अवतरित होता है, तब-तब पार्थिव वातावरण में कुछ परिवर्तन होता है। वे सभी जो ग्रहणशील हैं, इस अवतरण के फल-स्वरूप किसी दिव्य प्रेरणा की ओर उन्मुख हो जाते हैं, किसी स्पर्श को प्राप्त करते हैं, उनकी दिव्य दृष्टि के खुल जाने का एक हल्का सा प्रारम्भ हो जाता है। यदि उनमें इस बात की क्षमता हो कि जो कुछ वे प्राप्त करते हैं उसको यथार्थ रूप में धारण और अभिव्यक्त कर सकें, तो वे कहेंगे कि, "एक महान् शक्ति का अवतरण हुआ है, मैं उसके संस्पर्श में हूँ और उसके बारे में मैंने जो कुछ समझा है वह मैं तुमसे कहूँगा।" परन्तु अधिकांश लोग, उनके मन की अवस्था संकुचित होने के कारण ऐसा नहीं कर पाते। उन्हें एक प्रकाश मिलता है और वे उससे अभिभूत हो जाते हैं और सहसा चिल्ला उठते हैं कि, 'भागवत सत्य मेरे पास है, मैंने उसको समग्र और संपूर्ण रूप में पाया है।' आज इस पृथ्वी पर कम से कम दो दर्जन ईसामसीह हैं और शायद इतने ही बुद्ध भी हों। अकेले भारत में ही तुम जितने चाहो उतने अवतारों को पा सकते हो, छोटी छोटी विभूतियों का तो कहना ही क्या है? परन्तु इस प्रकार देखने से तो यह सब कुछ बेढंगा सा दिखाई पड़ेगा, लेकिन यदि तुम इसके पीछे जो सत्य है, उसको देखो तो आरम्भ में यह जितना मूर्खतापूर्ण दिखाई देता है, वैसा नहीं रहेगा, इसके अन्दर जो सत्य है वह यह है कि इस प्रकार मानव व्यक्तित्व को किसी दिव्य सत्ता, किसी दिव्य शक्ति का संस्पर्श मिलता है और वह अपनी शिक्षा और परम्परा के प्रभाव के कारण उसको बुद्ध, ईसामसीह या और किसी परिचित नाम से पुकारता है।

अब यह कहना बड़ा ही कठिन है कि, उस व्यक्ति के संस्पर्श में आने वाली सत्ता या शक्ति स्वयं बुद्ध या ईसामसीह ही थे, किन्तु यह भी कोई नहीं कह सकता कि इस सत्ता या शक्ति से प्राप्त होने वाली प्रेरणा का मूल वहां ही नहीं है जहां से ईसामसीह या बुद्ध को प्रेरणा मिलती थी। इन मानव-पात्रों में ऐसे ही किसी उद्गम से प्रेरणा आई हो, यह सर्वथा शक्य है। परन्तु यदि वे विनीत और सरल होते तो अपनी प्रेरणा के विषय में इतना ही कह कर संतोष मानते और इससे आगे नहीं बढ़ते, उन्होंने कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता कि, 'अमुक महान् आत्मा से मुझे यह प्रेरणा मिली है;' किन्तु इसकी जगह वे यह घोषणा कर बैठते हैं कि, 'मैं ही वह महान् आत्मा हूं।'

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानती थी, जो इस बात का दावा करता था कि वह खुद ईसामसीह और बुद्ध दोनों है। उसने कुछ प्राप्त किया था, किसी सत्य का अनुभव किया था, अपने में और दूसरों में भगवान् की उपस्थिति का दर्शन किया था। परन्तु उसके लिये यह अनुभव बहुत ही कड़ा था, उसमें इस सत्य को पचा सकने की ताकत नहीं थी। वह पागल-सा होगया और दूसरे ही दिन गलियों में यह कहता हुआ फिरने लगा कि उसके अन्दर ईसामसीह और बुद्ध दोनों एक हो गए हैं।......

सभी देशों का और सभी धर्मों का जन्म अनेकविध परम्पराओं और रूढ़ियों के समूह में से हुआ है। इन सभी में तुम्हें सन्त, शूरवीर, महान् और शक्तिशाली पुरुष मिलेंगे, साथ-ही-साथ क्षुद्र और दुष्ट पुरुष भी। तब तुम अनुभव करोगे कि, यह कहना हास्यास्पद है कि, "चूंकि मैं इस धर्म में पला हूं, इसलिये यही धर्म सच्चा है।"

......परन्तु जब कोई किसी धर्म की स्थापना करता है तो उसे बहुत से अनुयायियों की आवश्यकता होती है। किसी विशिष्ट धर्म की ताकत और महानता का नाप लोग उसके अनुयायियों की संख्या को देखकर ही लगाते हैं, यद्यपि असली महानता का चिह्न संख्या नहीं है। आध्यात्मिक सत्य की महानता का तो संख्या से कोई सम्बन्ध है ही नहीं।

मेरा एक नवीन धर्म के अधिपति से, जो उस धर्म के संस्थापक का पुत्र था, परिचय था। मैंने उसको एक बार यह कहते हुए सुना कि, उस अमुक धर्म की स्थापना में तो इतने सौ वर्ष लगे हैं और उस अमुक धर्म की स्थापना में इतने सौ, किंतु अभी पचास वर्ष के अन्दर ही उसके धर्म के अनुयायी चालीस लाख से भी अधिक हो गये हैं। सो 'आप देखती हैं,' उसने कहा 'हमारा धर्म कितना महान् है।'

धर्मों की महानता भले ही उनके अनुयायियों की संख्या के परिमाण में समझी जाय, किंतु सत्य का यदि एक भी अनुयायी न हो तो भी वह सत्य ही रहेगा।

......तुम्हारा धर्म, तुम्हारा देश, तुम्हारा परिवार तो एक ही है—स्वयं भगवान्।

—'मातृवाणी' से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द-वाणी--

श्रीअरविन्द के सूत्र-वचन

५---बन्धन

सारा संसार स्वतन्त्रता के लिये तरसता है, फिर भी प्रत्येक प्राणी को अपने बन्धन प्रिय होते हैं। यह हमारे स्वभाव का पहला अयुक्ताभास और एक न सुलझाई जा सकने वाली गुत्थी है।

मनुष्य जन्म के बन्धनों से प्रेम करता है इसलिये वह उसके साथ आने वाले मृत्यु के बन्धनों में पकड़ा जाता है। इन सब बन्धनों में रहता हुआ वह अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता के लिये और अपनी पूर्णत्व-प्राप्ति की सिद्धि के लिये अभीप्सा करता है।

मनुष्य शक्ति से प्रेम करता है, इसलिये वह दुर्बलताओं के वशवर्ती होता है। क्योंकि संसार शक्ति की लहरों का समुद्र है जो लहरें आपस में टकराती हैं और लगातार एक दूसरी पर उमड़ उमड़ कर आती हैं। जो एक लहर के शिखर की सवारी करना चाहता है उसे दूसरी सैकड़ों लहरों की थपेड़ों की मार से बेसुध होना ही होगा।

मनुष्य सुख से प्रेम करता है इसलिये उसे दुख-दर्द के जुए के नीचे आना पड़ता है। क्योंकि शुद्ध आनन्द जिसमें दुःख का मिश्रण नहीं केवल स्वतन्त्र और रागरहित आत्मा के लिये है। पर मनुष्य के अन्दर की जो वस्तु सुखों के पीछे भागती है वह दुःख उठाने वाली और आयास उत्पन्न करने वाली एक प्राणशक्ति है।

मनुष्य शांति का भूखा होता है पर साथ ही उसे व्याकुल मन और व्यथित हृदय के अनुभवों को लेने की तृष्णा भी लगी होती है। भोग उसके मन के लिये एक ज्वर है, शांति एक जड़ता और नीरसता है।

मनुष्य अपनी भौतिक सत्ता की सीमाओं से प्रेम करता है, पर साथ ही वह अपने अनन्त मन और अमर आत्मा की स्वतन्त्रता को भी लेना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के अन्दर कोई वस्तु ऐसी है जो इन विरोधों में एक अद्भुत आकर्षण पाती है। ये सब विरोध उसकी मानसिक सत्ता के लिये जीवन की कलामयता को बनाते हैं। वह वस्तु केवल अमृत ही नहीं है, किन्तु विष भी है जो उसकी रुचि और उत्सुकता को अपनी ओर आकृष्ट करती है।

× × ×

इन सब बातों में एक अभिप्राय है और इन सब विरोधों से निकलने का एक रास्ता है। प्रकृति के बनाये संयोग चाहे कितने ही पागलपन के लगते हों पर उसके प्रत्येक पागलपन में कोई नियम है और उसकी जटिल से जटिल उलझनों का भी कुछ न कुछ हल है।

मृत्यु एक प्रश्न है जिसे कि **प्रकृति** निरन्तर **जीवन** के सम्मुख रखती है और यह **प्रकृति** की **जीवन** को याददिहानी है कि उसने अभी तक अपने आप को पाया नहीं है।

यदि मृत्यु का घेरा न हो तो प्राणी सदा के लिये एक अपूर्ण जीवन की पद्धति में बंध जाय। मृत्यु के उसके पीछे लगे रहने से उसमें पूर्ण जीवन का भाव जागृत होता है और वह इसके साधनों और संभावनाओं को खोजता है।

निर्बलता भी वही परख और वही प्रश्न उन शक्तियों, सामर्थ्यों, वीर्यों और बड़प्पनों के आगे रखती है जिन पर कि हम गर्व करते हैं। शक्ति जीवन का खेल है, यह जीवन की मात्रा को प्रकट करती है और इसके आत्म-प्रकाशन के मूल्य का पता लगाती है। निर्बलता मृत्यु का खेल है जो जीवन का उसकी प्रत्येक गति में पीछा करती है और उसकी प्राप्त हुई शक्ति की सीमा के बांधने पर बल देती है।

पीड़ा और दुःख प्रकृति की ओर से आत्मा को इस बात की याद दिलाने के लिये आते हैं कि वह सुख जिसे वह भोगता है जीवन के असली आनन्द का एक हल्का सा संकेत-मात्र है। जीवन की प्रत्येक पीड़ा और यातना में उस आनन्दोल्लास की ज्वाला का रहस्य छिपा हुआ है जिसकी तुलना में हमारे बड़े से बड़े सुख धुँधली सी टिमटिमाहट मात्र हैं। यही रहस्य है जिसके कि कारण आत्मा का आकर्षण उन कठिन अग्नि-परीक्षाओं, यन्त्रणाओं और जीवन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारुण अनुभवों के प्रति भी होता है जिनसे कि हमारा स्नायविक मन बचना चाहता है और घृणा करता है।

हमारी क्रियाशील सत्ता में और इसके उपकरणों में जो एक बेचैनी सी है और शीघ्र ही थक जाने की प्रवृत्ति है वह प्रकृति की ओर से इस बात की सूचना है कि शान्ति ही हमारा वास्तविक आधार है और उत्तेजना आत्मा की एक बीमारी है। निरी शान्ति में जो अफलोत्पादकता है और एकरसता है वह इस बात का संकेत है कि उस स्थिर आधार पर क्रियाओं के खेल को ही वह हम से चाहती है। परमात्मा सदैव खेलता है पर कभी परेशान नहीं होता।

शरीर की सीमायें एक सांचा है, इनमें आत्मा और मन को अपने आप को भरना होता है और फिर तोड़ कर अपेक्षाकृत अधिकाधिक विस्तृत सीमाओं में इन्हें फिर फिर ढालते जाना होता है जब तक कि इस सान्त और उनकी अपनी अनन्तता के बीच में समन्वय का कोई सूत्र नहीं मिल जाता।

स्वतन्त्रता जीवन का, सीमित न किये जा सकने वाली अपनी एकता में विद्यमान जीवन का नियम है और सब प्रकृति का गुप्त स्वामी है; अधीनता जीवन में उस प्रेम का नियम है जो अनेकता में विद्यमान अपने ही अन्य रूपों के खेल में सेवा करने के लिये अपने आपको स्वेच्छया अर्पित कर देता है।

जब स्वतन्त्रता बन्धनों में काम करती है और अधीनता प्रेम का नहीं किन्तु शक्ति का नियम बन जाती है तब यह होता है कि वस्तुओं का सत्य स्वभाव विकृत और विरूप हो जाता है और जीवन के साथ आत्मा के व्यवहारों में अनृत का आधिपत्य हो जाता है।

प्रकृति इस विकृतता व विरूपता से प्रारम्भ करती है और इससे हो सकने वाले सभी संयोगों के साथ क्रीड़ा करती रहती है जब तक कि इसे ठीक अवस्था में ले आने का समय नहीं हो जाता। इसके पश्चात् वह इन सब संयोगों के आन्तरिक तत्त्व को प्रेम और स्वतन्त्रता के एक नये और समृद्ध सामंजस्य में एकत्रित कर देती है।

स्वतन्त्रता सीमा-बन्धन-रहित एकता द्वारा आती है, क्योंकि यही हमारा वास्तविक स्वरूप है। इस एकता के तत्त्व को हम अपने अन्दर प्राप्त कर सकते हैं तथा इसकी लीला को भी अन्य सबके साथ एकता स्थापित करके अनुभव कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। यह द्विविध अनुभूति प्राप्त करना ही प्रकृति में आत्मा का समग्र प्रयोजन है।

उस असीम एकता को अपने अन्दर अनुभव करके फिर अपने आपको संसार के लिये समर्पण कर देना यही नितान्त स्वतन्त्रता और अखंड साम्राज्य है।

असीम होकर, हम मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं क्योंकि जीवन तब हमारी अमर सत्ता की एक लीला बन जाता है। हम दुर्बलताओं के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं क्योंकि हम वह समग्र समुद्र बन जाते हैं जो अपनी लहरों की असंख्य टक्करों में आनन्द लेता है। हम दुःख और दर्द के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं क्योंकि हम सीख जाते हैं कि हम अपनी सत्ता को जिससे भी हमारा वास्ता पड़ता है उस सब के साथ किस तरह समस्वर रक्खें और सब वस्तुओं में सत्ता के आनंद की क्रिया और प्रतिक्रिया को देखें। हम सीमाओं से मुक्त हो जाते हैं क्योंकि शरीर अनन्त मन का एक खिलौना बन जाता है और अमर आत्मा के संकल्प के अनुसार आचरण करना सीख जाता है। हम स्नायविक मन के और हृदय के ज्वर से मुक्त हो जाते हैं फिर भी हम जड़ता में बंधे नहीं होते।

अमरता, एकता और स्वतन्त्रता हमारे अन्दर हैं और वहां वे इस प्रतीक्षा हैं कि हम उन्हें खोज निकालें। लेकिन प्रेम के आनन्द के लिये परमेश्वर हमारे अन्दर फिर भी अनेक हो कर रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मों का आनन्द

(लेखक—श्रीअरविन्द)

तेरे कर्मों में सदा ये तीन तत्त्व विद्यमान हैं—स्वामी, कार्य-कर्ता और यन्त्र। इन्हें अपने अन्दर ठीक प्रकार से लक्षित कर लेना और ठीक प्रकार से अपने में धारण करना ही कर्मों का तथा कर्मों के आनन्द का रहस्य है।

(१) यन्त्र-भाव

पहले तू **परमेश्वर** का यन्त्र होना और उसे **स्वामी** स्वीकार करना सीख। यन्त्र वह बाह्य वस्तु है जिसे तू 'अपना आप' समझता है। यह है एक मनोमय ढांचा, एक प्राणमय सञ्चालक-शक्ति, एक स्थूल आकार का यन्त्र, एक वस्तु जो नानाविध कमानियों, चक्रदन्तों, शिकञ्जों तथा अन्य कल-पुर्जों से भरपूर है। क्या इस बाह्य स्वरूप को तू कार्य-कर्ता या स्वामी समझता है? यह कदापि कार्य-कर्ता या स्वामी नहीं हो सकता। तू तो पहले इस अपने आप को यन्त्र स्वीकार कर—नम्रता के साथ, फिर भी अभिमान के साथ, भक्तिरत भाव से, शरणागत भाव से और आनन्द-पूर्ण होकर अपने को उसका एक यन्त्र स्वीकार कर।

इससे बढ़ कर अभिमान और गौरव की बात और दूसरी क्या हो सकती है कि कोई अपने **स्वामी** का एक परिपूर्ण यन्त्र हो।

यन्त्र बन कर तू सब से पहले सर्वथा, बिल्कुल पूरी तरह से आज्ञा पालन करना सीख। उसने कहां वार करना है यह तलवार तो कभी निश्चय नहीं करती, तीर यह नहीं कहता कि उसे किस लक्ष्य पर छोड़ा जाय, यन्त्र की कमानियां यह आग्रह नहीं करतीं कि उनके कार्य द्वारा अमुक वस्तु निर्माण की जाय। ये बातें तो **प्रकृति-देवी** (जो कार्य-कर्ता है) के अभिप्राय और उसकी कार्य-प्रणाली के द्वारा निश्चित होती हैं। सचेतन यन्त्र-रूप हुआ हुआ मनुष्य अपनी प्रकृति के शुद्ध और सच्चे **स्वधर्म** को जितना जितना जान लेगा और उसका ही पालन करना सीख लेगा उतनी ही जल्दी उससे निर्मित होने वाला कार्य पूर्ण और निर्दोष होकर तैयार होगा। प्राणमय प्रेरक बल यदि अपनी पसन्दगी से काम करेगा, भौतिक और मानसिक उपकरण यदि विद्रोह करेंगे तो इससे केवल काम बिगड़ेगा ही।

तू अपने आपको **परमेश्वर** के निश्वसित में बहने दे और अन्धेरी में उड़ने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूखे पत्ते की तरह हो जा। अपने आपको उसके हाथों में रख दे और योद्धा के हाथ की खड़कती हुई तलवार और धनुष से निकल निशाने की तरफ़ उड़ते हुए तीर की तरह हो जा। तेरा मन यन्त्र की कमानी की तरह और तेरी प्राणशक्ति ऐंजिन के डट्टे की तरह हरकत करें। तेरा कार्य ऐसा चले जैसे कूटता पीसता हुआ और जो अभीष्ट है वह आकार बनाता हुआ फौलादी यन्त्र ऊपर से पड़ता है। और तेरी वाणी ? मानो एरण के ऊपर बजते हथौड़े की धड़ाधड़, मानो कारख़ाने में काम करते ऐंजिन का आर्तक्रन्दन, मानो परमेश्वर की शक्ति को दिग्दिगन्तों में घोषित करते हुए नरसिंहे का निनाद। जिस किसी प्रकार का भी कार्य कर, पर एक यन्त्र के तौर पर कर और वह कार्य कर जो तेरे प्रकृति-धर्म के अनुसार स्वाभाविक हो और तेरे लिये नियत हो।

समरांगण की लीला में तलवार आनन्द पाती है, तीर अपनी उड़ान और सनसनाहट में मज़ा लेता है, पृथ्वी इस आकाश में अपना अन्धाधुन्ध चक्कर लगाते जाने में आनन्द-विभोर है, सूर्यनारायण अपने जगमगाते वैभव में तथा अपनी सनातन गति में सदा सम्राट् सदृश आनन्द का भोग कर रहा है। तो फिर, ओ परमेश्वर के आत्म-सचेतन यन्त्र ! तू भी अपने नियत कर्म करते जाने में मज़ा लूट।

तलवार अपने बनाए जाने की मांग नहीं करती, बन जाने पर वह उपयोगकर्ता को अपने किसी तरह उपयुक्त किये जाने में रुकावट नहीं पैदा करती, और जब वह टूट जाती है तो कोई विलाप नहीं करती। बनाए जाने में एक प्रकार का आनन्द है और उपयुक्त किये जाने में भी एक अन्य प्रकार का आनन्द है तथा म्यान में बन्द कर रख दिये जाने में और अन्त में तोड़कर फेंक दिये जाने में भी एक आनन्द है। उस सर्वत्र सम आनन्द को तू ढूँढ निकाल।

क्योंकि तूने यन्त्र को कार्यकर्ता और स्वामी समझने की भूल की है और क्योंकि तू अपनी इच्छा के अज्ञान के कारण अपनी निजी अवस्था की, अपने निजी लाभ की और अपनी निजी उपयोगिता की पसन्दगी करना चाहता है, इसीलिये तुझे दुःख और यातनाएं झेलनी होती हैं, तुझे बार बार लाल दहकती हुई भट्टी के नरक में तपना पड़ता है और बार बार ही नया जन्म लेना, नया आकार और स्वभाव धारण करना पड़ता है और यह तब तक चलता रहेगा जब तक कि तू अपना मनुष्योचित पाठ पूरा न कर लेगा।

और ये सब अपूर्णताएं हैं, क्योंकि ये तेरी अधूरी अपक्व प्रकृति में विद्यमान हैं। जब तू यन्त्र हो जाएगा तो देखेगा कि प्रकृतिदेवी कार्यकर्ता है, कार्य करने वाली है। और तू जानता है कि वह क्या कार्य कर रही है ? वह अपने इस अपक्व कच्चे मन, प्राण और स्थूल द्रव्य (अन्न) में से एक पूर्णतया सचेतन सत्ता को विकसित कर रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) कार्यकर्तृ-भाव

इसके बाद फिर दूसरा कदम उठा, अपने आपको **कार्यकर्ता** रूप से जान। तेरी प्रकृति कार्य करने वाली है यह समझ और तेरी निजी प्रकृति तथा **विश्व-प्रकृति** ये तू ही है, तेरा ही स्वरूप है यह समझ।

तेरा यह प्रकृतिस्थ स्वरूप न तो विशेषतया तेरा स्वकीय है और न तेरी निजी प्रकृति से परिमित है। तेरी प्रकृति ने ही यह सूर्य और सब सौर मण्डल, यह पृथ्वी और उसके सब प्राणी, तू तेरा और जो कुछ भी तू है और जो कुछ तू देखता है इस सबको रचा है। यह तेरा मित्र है और यही तेरा शत्रु है, तेरी माता है और तेरा भक्षण करने वाली है, तुझ से प्रेम करने वाली और तुझे पीड़ा पहुँचाने वाली है, तेरी आत्मा की बहिन है और बिलकुल अपरिचित पर-जन है, तेरा आनन्द है और यही तेरा शोक है, तेरा पाप है और यही तेरा पुण्य है, यह तेरा बल है और यही तेरी निर्बलता है, यह तेरा ज्ञान है और यही तेरा अज्ञान भी है। और फिर वह इनमें से कुछ भी नहीं है किन्तु कुछ ऐसी चीज़ है जिसे वर्णन करने का प्रयत्नमात्र या अधूरी छायामात्र उपर्युक्त बातें हैं। क्योंकि वह इन सबसे परे अपने दिव्य स्वरूप में मूलभूत आत्मज्ञान-रूप, अनन्त शक्ति-रूप और असंख्य गुण-रूप है।

परन्तु तुझ में प्रकृति की एक विशेष क्रिया, तेरी स्वकीय प्रकृति, तेरी एक वैयक्तिक शक्ति काम कर रही है। तू उसका अनुसरण कर और जैसे एक नदी बढ़ती जाती हुई समुद्र को जा पहुँचती है वैसे तू इसका अनुसरण करता हुआ इसके असीम आदिस्रोत और मूल स्थान को पहुँच जा।

इसलिये तू अपने शरीर को **स्थूल द्रव्य (अन्न-तत्त्व)** की एक गांठ समझ, अपने मन को विश्व-व्यापी **मन** में उठा एक बबूला तथा अपने जीवन को शाश्वत **प्राण**-सागर में पड़ी एक भंवर समझ। अपनी शक्ति को तू प्रत्येक अन्य प्राणी की शक्ति समझ, अपने ज्ञान को उस महाप्रकाश से आई हुई एक चमक समझ जो कि किसी मनुष्य का अपना नहीं है, अपने कर्मों को अपने लिये किये गए समझ। इस तरह तू अपने को पृथक् व्यक्ति समझने की ग़लती से छुटकारा पा जा।

जब यह हो जायगा तो तू अपनी व्यक्तिगत सत्ता के सत्य में, अपने वास्तविक व्यक्ति-स्वरूप में अपना मुक्त आनन्द प्राप्त करेगा; तब तुझे अपनी शक्ति में, अपने यश में, अपने सौन्दर्य में और अपने ज्ञान में आनन्द मिलेगा और इन सबके निषेध में भी तुझे आनन्द मिलेगा। क्योंकि यह सब कुछ उस **पुरुष** का नाटकीय वेष-धारण ही तो है, उस **आत्म-शिल्पी** की आत्ममूर्ति ही तो है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझे अपने आपको परिमित क्यों रखना चाहिये ? तू घायल करने वाली तलवार में भी अपने आपको अनुभव कर,. और आलिंगन करने वाले हाथ में भी, सूर्य की जाज्वल्यमान दीप्ति में और पृथ्वी के सतत नृत्य में, गरुड़ की लम्बी उड़ान में और कोयल के कोमल कूजित में, और उस सब में जो कुछ हो चुका है; उस सब में जो भी कुछ विद्यमान है और उस सब में जो कुछ आगे होना चाह रहा है तू अपने आपको अनुभव कर। क्योंकि तू अनन्त है और तेरे लिये यह सभी आनन्द सम्भव है।

कार्यकर्तृ-प्रकृति देवी जहाँ अपने कर्मों का आनन्द पाती है वहां वह अपने **प्रियतम** जिसके लिये वह काम करती है, का भी आनन्द पाती है। वह अपने आपको उसकी चेतना और उसकी शक्ति करके जानती है, उसका ज्ञान और उसका ज्ञान-निरोध, उसकी एकता और उसका आत्म-विभेद, उसकी अनन्तता और उसकी सत्ता का सान्त रूप करके जानती है। तू भी अपने आपको यह सब कुछ कर के जान और तू भी अपने **प्रियतम** का आनन्द पा।

ऐसे लोग हैं जो अपने को एक कारखाना या एक यंत्र या एक तैयार की हुई वस्तु कर के जानते हैं। पर वे **कार्य-कर्ता** को ही **स्वामी** समझ लेते हैं; यह भी भारी भूल है। जो लोग इस भूल में पड़ते हैं उनका प्रकृति की ऊंची, पवित्र और पूर्ण कार्यप्रणालियों तक पहुँचना असम्भव सा होता है।

यन्त्र एक पुरुष-विध आकृति में आयी हुई सीमित वस्तु है, कार्य-कर्ता एक पुरुष-जैसी प्रकृति से युक्त व्यापक वस्तु है। पर इन दोनों में से कोई भी **स्वामी** नहीं है क्योंकि इन दोनों में से कोई भी वास्तविक **पुरुष** नहीं है।

(३) स्वामि-भाव

अन्त में तू **स्वामी** को अपना आप कर के जान। किन्तु अपने उस दिव्य आत्मा को तू कोई आकार प्रदान मत कर, इसे किन्हीं गुणों द्वारा लक्षित करने का यत्न मत कर। अपनी सत्ता में **उसके** साथ एक हो जा, अपनी चेतना में **उसके** साथ संपर्क-युक्त हो, अपनी शक्ति में **उसका** आज्ञापालक रह, अपने आनन्द में **उसका** विषयी-भूत बन और **उस से** आश्लिष्ट हो, अपने प्राण, शरीर और मन में **उसे** सार्थक कर। तब तेरे अन्दर की उद्घाटित हुई एक चक्षु के सामने वह वास्तविक और एकमात्र **पुरुष** प्रकट हो जायगा जो तेरा अपना आप है तथा इसका निषेध-रूप है, जो और सब है तथा और सबसे अतिरिक्त है, तेरे कर्मों का **प्रेरयिता** और **भोक्ता** है, यन्त्र का और कार्य-कर्ता का **स्वामी** है। इस विश्व-नृत्य में धूमधाम के साथ रंगरलियां करने वाला **विलासी** तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने नाचते हुए पैरों से सब जगत् को रौंद डालने वाला काल है, पर साथ ही तेरे आत्मा की शान्त और भीतरी कोठरी में चुप, मौन-होकर अकेला तेरे साथ बैठने वाला भी वही है।

स्वामी का आनन्द प्राप्त हो गया तो फिर तेरे लिये कोई और वस्तु विजय करने की नहीं रही। क्योंकि वह तुझे **अपने आपको** ही दे देगा तथा सब वस्तुएँ देगा और सब प्राणी जो कुछ भी प्राप्त करते हैं, रखते हैं, करते हैं, भोगते हैं उस सबके तेरे निजी उचित हिस्से को देगा; और वह तुझे वह वस्तु भी देगा जिसके कि हिस्से नहीं किये जा सकते।

तू अपनी सत्ता में अपने आप को तथा अन्य सब को समा लेगा और तू वह हो जायगा जो न तो तू है और न अन्य सब। कर्मों की यह है पूर्णता-प्राप्ति और पराकाष्ठा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवर्तन की युग-संधियां

(ले०—श्री नलिनीकान्तजी)

आजकल प्रायः सब लोग इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि प्रकृति के अन्दर विवर्तन अर्थात् क्रम-विकास हो रहा है। यह विवर्तन या क्रम-विकास है क्या चीज़? थोड़े में और मोटे तौर पर इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि आजकल सृष्टि का जो रूप हम देख रहे हैं यह सदा से ही ऐसा नहीं है; अगर हम केवल पृथ्वी को ही देखें तो हम जितने ही अतीत की ओर जायेंगे उतना ही हम देखेंगे कि पृथ्वी का रूप, उसके निवासियों का आकार-प्रकार, क्रमशः बदलता जा रहा है; आज अवश्य ही हम पृथ्वी को मनुष्यों से भरा हुआ देख रहे हैं—अर्थात् कोटि-कोटि मनुष्य पृथ्वी पर आज वर्तमान हैं—परन्तु एक दिन ऐसा भी था—संभवतः कुछ लाख वर्ष पहले—जब मनुष्य-नामधारी किसी जीव का अस्तित्व ही नहीं था—थे अधिक से अधिक बनमानुस और नाना प्रकार के जंगली जीव-जंतु। और भी अतीत की ओर जायं तो देखेंगे कि जीव-जंतु के अन्दर भी हाथी, घोड़ा, सिंह, बाघ आदि कोई नहीं थे, आकाश में पांख वाले जीव तो कुछ-कुछ दिखाई देते थे, किन्तु माटी के ऊपर बड़े-बड़े विशाल-काय सरीसृप (पेट या छोटे-छोटे पैरों के बल चलने वाले जीव) मात्र थे। उससे भी पूर्व स्थल-भाग ही कम दिखाई देता था, स्थल के जीव बहुत ही कम थे—उस समय दिखाई देते थे सभी जलज जीव, मत्स्य, कूर्म या उनके भी पूर्वपुरुष। और भी अधिक अतीत की ओर जाने पर जीवों का कोई चिह्न भी नहीं मिलता, उस समय पृथ्वी केवल पेड़-पौदों, लता-गुल्मों से भरी दिखाई देती थी। उससे भी पूर्व पेड़-पौदे अर्थात् हरी सजीव चीजें बिलकुल ही नहीं थीं; था केवल जड़ पदार्थ, स्थूल भौतिक वस्तुओं का समारोह, क्रिया-प्रतिक्रिया।

इस काल-प्रवाह में एक स्तर के बाद दूसरे स्तर का, एक श्रेणी के बाद दूसरी श्रेणी का जो एक क्रमिक आविर्भाव हुआ है उसमें तीन सीमाएँ या संधि-स्थल बहुत ही स्पष्ट दिखाई देते हैं—एक मनुष्य और पशु के बीच, दूसरा पशु या जीव और उद्भिद् के बीच और तीसरा उद्भिद् और जड़ पदार्थ के बीच। विवर्तनवाद सबसे पहिले यह कहता है कि जड़ के बाद उद्भिद् उत्पन्न हुआ है, उद्भिद् के बाद जीव का जन्म हुआ है, नीचे के स्तर के जीवों या प्राणियों के बाद मनुष्य आविर्भूत हुआ है। इस सिद्धान्त के विषय में शायद अब कोई संदेह नहीं उठ सकता। परन्तु इसके अलावा विवर्तनवाद यह भी कहता है कि केवल जड़ के 'बाद' ही नहीं बल्कि जड़ 'से' ही प्राण या उद्भिद् उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है, उद्भिद् के बाद नहीं, उद्भिज्ज-सत्ता से ही जीव प्रकट हुआ है और इतर जीवों या जानवरों के केवल बाद नहीं बल्कि उन्हीं के एक पूर्वपुरुष के पेट से सर्व-प्रथम मनुष्य भूमिष्ठ हुआ है। इस दूसरे सिद्धान्त के विषय में सब लोग सब समय पूरी-पूरी सम्मति नहीं दे सकते और इसके लिये कारण भी है। विवर्तन-धारा को साधारण तौर पर पूरा-पूरा ग्रहण करने पर यह बात हमारे सामने उपस्थित होती है कि जड़ परिवर्तित होते-होते एक समय प्राण में परिणत हुआ—आक्सिजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन इत्यादि जड़ उपकरणों और उपादानों के अन्दर से उस समय शैवालजातीय आदि-उद्भिद् उत्पन्न हुआ; उद्भिद् (अवश्य ही आजकल का पूर्ण परिणत वट, अश्वत्थ आदि नहीं, उद्भिद् का कोई आदि-पुरुष, उसका कई-युग-व्यापी भ्रूणरूप) परिवर्तित होते-होते प्राणी में परिणत हुआ, इसी तरह फिर प्राणी या पशु भी परिवर्तित होते-होते मनुष्य में परिणत हुआ। अतएव अब प्रश्न यह है कि परिवर्तन की कोई ऐसी निरवच्छिन्न धारावाहिता वास्तव में दिखाई देती है या नहीं। मोटे तौर पर, संभव है, दिखाई देती हो, परन्तु खूब बारीकी से देखने पर नहीं दिखाई देती। वैज्ञानिक लोग ही यह कहते हैं कि परिवर्तन की धारा में, स्तर-स्तर पर, सचमुच में व्यवधान रह गया है। आरंभ में लोग कहा करते थे कि जिन संधियों या संयोगों का निदर्शन नहीं मिलता वे काल के प्रकोप से नष्ट हो गये हैं अथवा हो सकता है कि काफी खोज करने के बाद भविष्य में वे मिल भी जायं, परन्तु यह अंतिम आशा तो आज तक पूरी न हो सकी और पहले मत के विषय में भी यह प्रश्न खड़ा हो सकता है कि ठीक-ठीक संधिस्थल ही आखिर किस नियम से नष्ट हो गये? अवश्य ही बहुत-बहुत अन्वेषण-विश्लेषण-परीक्षण के बाद 'विलुप्त शृंखला' (missing link) के आस पास तक कुछ आविष्कार हुआ है परन्तु ठीक-ठीक चीज़ अभी तक नहीं मिल सकी है।

प्रश्न यह है कि क्या जड़ और उद्भिद् के बीच कोई ऐसी चीज़ है जो न पूर्णरूप से जड़ ही हो न उद्भिद् ही, जो कुछ तो जड़ हो और कुछ उद्भिद्? ऐसी कोई चीज़ दिखाई तो नहीं देती। जड़ में जब प्राण आविर्भूत हुआ तब दोनों के बीच एक व्यवधान उपस्थित हो गया। दोनों के बीच कोई क्रमिक सोपान नहीं दिखाई देता। उसी तरह जब उद्भिद् भी क्रमशः प्राणी के स्तर में उठा तब क्या कोई ऐसी वस्तु उत्पन्न हुई जिसमें उद्भिद् और प्राणी के धर्म एक साथ दिखाई देते हों, यहां भी वही एक उत्तर हमें मिलता है। प्राणी और मनुष्य के मध्यवर्ती जीव के विषय में भी हमारी समझ में दूसरा कोई उत्तर नहीं।

मनुष्य का जो सबसे पुराना नमूना अब तक मिला है और सबसे अन्त का जो बनमानुस मिला है उन दोनों के बीच कुछ सादृश्य ज़रूर है—शारीरिक गठन की दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ; परन्तु तो भी मनुष्य मनुष्य है और बनमानुस बनमानुस, भेद तो रह ही गया है। जिस वा-नरसे नर उत्पन्न हुआ है उसमें बुद्धि-शक्ति का अभाव तो है ही नहीं बल्कि बुद्धि-चातुरी में वह मनुष्य को दो-एक क्षेत्रों में हरा भी सकता है, फिर भी उसमें एक चीज़ नहीं है जिसके कारण वह पशु है और वही चीज़ होने के कारण मनुष्य मनुष्य है (उस चीज़ का यहां पर उल्लेख किया जा सकता है, वह है आत्मसंवित्—स्वयं अपने-आपको देखना)। इसी कारण वैज्ञानिकों ने बाध्य होकर मनुष्य को मूलतः एक पृथक् श्रेणी के अन्तर्गत रखा है (homosapiens, सज्ञान मनुष्य)—उसके समीप की जो श्रेणी है उसका नमूना है 'नेयांडारटल' मनुष्य ; उसकी भी गिनती बनमानुस में ही है।

यहां पर एक और कौतूहलजनक बात है। वैज्ञानिकों को यह पता नहीं लग सका है कि किस विशेष बनमानुस से मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। उनका कहना है कि एक ही वंश की धारा में, पिता-पुत्रानुक्रम की तरह, एक सीधी रेखा में, विवर्तन नहीं चलता। एक नये प्राणी का जन्म होना मानो एक निर्वाचन-प्रक्रिया है ; मूल एक श्रेणी के बीज से अनेक रूपभेद दिखायी देते हैं, फिर उनके भीतर से कोई एक नये का जन्मदाता होता है। परन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जो रूपभेद सबसे अधिक दूर होता है, जिसके साथ सादृश्य सबसे कम होता है ठीक उसीसे नये का जन्म होता है। बहुत से वैज्ञानिकों का यह कहना है कि मनुष्य के विषय में ठीक यही बात घटी है। अतएव यहां पशु और मनुष्य के संधि-स्थल में अन्तर बहुत अधिक पड़ गया है ; प्रकृति वास्तव में यहां पर छलांग मारकर आगे निकल गयी है।

इसके बाद अब इससे पूर्व के पशु या जीव और उद्भिद् के सन्धिस्थल को देखा जाय। पशु-स्तर का सबसे नीचे का प्राणी, जीव का सर्वप्रथम प्रकाश है जीवाणु या रोग-बीजाणु की जाति की एक चीज़—उद्भिज्जाणु के साथ उसका पार्थक्य है ही। एक आदि-जीव या उद्भिद् के अत्यन्त समीप की चीज़ है 'स्पंज'। बहुत दिनों तक 'स्पंज' को लोग उद्भिद् ही समझा करते थे। परन्तु और भी ध्यानपूर्वक परीक्षा करने के बाद मालूम हुआ है कि 'स्पंज' प्राणी ही है, उद्भिद् नहीं, उसका अंडा होता है, बच्चा भी होता है (larva), और यह सब प्राणी की ही विशेषता है।❀ हमारे देश का सांप का छाता (जिसे कालिदास ने 'शिलीन्ध्र' कहा है) 'स्पंज' की तरह ही मालूम होता है, शायद वह उसी जाति का हो, परन्तु वह उद्भिद् है। उद्भिद् के अन्त और प्राणी के आरम्भ—इन दो के बीच बहुत कुछ सादृश्य, ऐक्य होने पर भी एक व्यवधान रह ही गया है।

❀ इस विषय में यहां पर विशद विवरण देना संभव नहीं और इस विषय में मत भी अनेक हैं। तब हमारा प्रमाण है जे० ए० थामसन का 'बायोलाजी फार एवरी मैन' (Biology for every man)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम यदि और भी नीचे जाकर जड़ और प्राण के संयोग-स्थल को देखें तो यहां हमें वह वैषम्य और अनैक्य और भी अधिक स्पष्ट दिखायी देगा। प्राण का प्रथम रूप है जैवसार (protoplasm) ; और जड़, स्थूलभूत उस ओर बदलते-बदलते अन्त में जिस रूप को प्राप्त हुआ है वह है लेह (colloid) और श्वेतसार (albumenoid)। परन्तु लेह या श्वेतसार कब और कैसे जैवसार में रूपांतरित हो गया, इसका इतिहास बिलकुल ही नहीं पाया जाता।

इसीलिये आजकल का सिद्धान्त यह है कि साधारणतः प्रकृति एक-एक पग बढ़ाती हुई ही चलती सी मालूम होती है, परन्तु बीच-बीच में छलांगें भी मारती है। छोटी मोटी छलांगें तो प्रायः ही लिया करती है और इसी के फल से एक श्रेणी या जाति के अन्दर नये प्रकार की विशेष-विशेष विचित्रताएं उत्पन्न होती हैं। यहाँ तक कि इस प्रकार का भी मतवाद प्रचलित हुआ है कि प्रकृति की गति एक सीधी रेखा में बिलकुल ही नहीं चलती, पग-पग पर छलांग मारना या कूद-कूद कर चलना ही प्रकृति का स्वाभाविक स्वधर्म है। तब इन सब में तीन (या चार) छलांगें खूब बड़ी-बड़ी हुई हैं ऐसा मानना होगा जिनके फलस्वरूप केवल जाति का परिवर्तन नहीं हुआ है बल्कि एक-एक जगत् का रूपान्तर हुआ है, विवर्तन-धारा एक स्तर से दूसरे स्तर में ऊपर उठ गयी है। इस प्रकार जड़ के मूल गठन और गति के विषय में आजकल जो कण-समाहार-सिद्धान्त (atom theory) की प्रतिष्ठा हुई है उसी को प्राणशक्ति के मूल गठन और गति के विषय में भी लागू किया जाता है। खैर, जो हो, विवर्तन का आकस्मिक परिवर्तन और विपर्यय सर्वप्रथम उस समय दिखायी दिया जब जड़ प्राणवस्तु में परिणत हुआ, उसके बाद दूसरा विपर्यय उस समय घटित हुआ जब प्राणवस्तु मानसवस्तु में परिवर्तित हो गयी और तीसरा विपर्यय उस समय घटा जब मन बुद्धि में बदल गया—इस तरह पहले था धातु-पत्थर, उसके बाद हुआ पेड़-पौदा, उसके बाद जीव-जन्तु और सब से अन्त में उत्पन्न हुआ मनुष्य।

प्रकृति के अन्दर जो यह परिवर्तन हुआ है इसे शायद आज कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। तब यह समस्या रह ही जाती है कि आखिर किस उपाय से, किस पद्धति से यह परिवर्तन साधित हुआ है। विवर्तन के, कम से कम जैव विवर्तन के कारण या प्रेरणा के विषय में एक सिद्धान्त विशेषरूप से प्रस्थापित किया गया है और उसे नाम दिया गया है 'योग्यतम का उद्वर्तन'। इसका अर्थ यह है कि सृष्टि के अन्दर एक लड़ाई चल रही है—प्रत्येक सत्ता को प्रत्येक सत्ता के साथ, विशेष कर अपनी स्वजातीय सत्ता के साथ लड़ाई करनी पड़ती है। अपने से सम्बन्ध रखने वाले—जैसे सर्दी-गर्मी, जलवायु, आहार-विहार आदि—प्रयोजनों और मांगों को पूरी करने के उपयुक्त देहगत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्थागत व्यवस्था जिस पात्र में जितनी सुन्दर होती है और इन सब विषयों में अपने लिये यथायोग्य और यथेष्ट अधिकार प्राप्त करने के लिये दूसरों के साथ अवश्यंभावी प्रतियोगिता में जो जितना उत्तम अस्त्र-शस्त्र (नख, दांत, डंक, छलचातुरी इत्यादि) प्रयोग कर सकता है, वह और उसके वंशज जो इस अनुकूलता की रक्षा कर पाते हैं या उसे बढ़ा पाते हैं, वे ही इस जीवन-संग्राम में विजयी होकर बचे रहते हैं। परन्तु इस बात में संदेह है कि विवर्तन-पद्धति का यह सिद्धान्त विवर्तन के सारे रहस्य को, उसके अन्दर निहित सत्य को व्यक्त करता है या नहीं। सर्वप्रथम, जीवन में संग्राम तो है पर क्या इसी कारण संग्राम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ? सम्मिलन, साहचर्य भी तो समान मात्रा में ही दिखाई देता है। निम्नतर जीव-सृष्टि के स्तर में भी आजकल वैज्ञानिकों ने इस सत्य के अद्भुत-अद्भुत उदाहरण दिखलाये हैं। इसके अतिरिक्त क्या केवल 'योग्यतम' का ही 'उद्वर्तन' होता है, क्या सबसे बलिष्ठ, योग्य प्राणी ही बचा रहता है ? साधारण दृष्टि से क्या हम कितने ही अयोग्यों को बचा हुआ नहीं देखते ? वैज्ञानिक विवर्तनवाद की 'योग्यता' का अर्थ तो शारीरिक योग्यता, जीवन धारण करने की योग्यता ही न है ? कहा जाता है कि विवर्तन का अन्तिम स्तर है मनुष्य। तो क्या मनुष्य अपने आपको 'योग्यतम' सिद्ध कर सका है ? क्या वह केवल इसी कारण 'योग्यतम' हो सका है कि वह लड़ाई करने में सबसे अधिक बली और चतुर है ? क्या वह सभी नख-दंत-डंक वाले जीवों को छल-बल-कौशल से हराकर, भगाकर अपना एकछत्र राज्य स्थापित कर सका है ?

इसी कारण अनेक विचारकों का मत यह है कि मनुष्य की तथाकथित योग्यता उसकी आत्मसंतुष्टि के लिये एक धारणा या कल्पना मात्र है। बहुत से इतर प्राणियों में पारिपार्श्विक अवस्था के साथ सामंजस्य बनाये रखने की दृष्टि से, अन्य प्रतियोगियों के साथ संग्राम करने की दृष्टि से जितनी योग्यता है उतनी मनुष्य में है या नहीं इसमें सन्देह है। बहुतेरे कीड़े, बहुत से उद्भिद्—पृथ्वी पर सजीव सत्ता के आविर्भूत होने के साथ-साथ सुदूर अतीत में जो उत्पन्न हुए थे वे (अर्थात् उनके वंशधर)—आजतक प्रायः अपरिणत, अपरिवर्तित आदि-रूप में ही विद्यमान हैं, तो क्या मनुष्य के साथ-साथ वे भी 'योग्यतम' कहे जायंगे ? वास्तव में बात ठीक ऐसी नहीं है। विवर्तन का स्वरूप देखकर अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि सृष्टि के अन्दर एक क्रमिक ऊर्ध्वगामी गति चल रही है—वह योग्यता के हिसाब से नहीं चल रही है, बल्कि वह नवीनतर, उच्चतर, महत्तर तत्त्वों का आश्रय करके पार्थिव क्षेत्र में नवीनतर, उच्चतर, महत्तर संगठन करती हुई अग्रसर हो रही है। यह ठीक ऐसा ही है मानो एक सोपानावलि या सीढ़ी धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठी जा रही हो, परन्तु वह नीचे की सीढ़ी पर खड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर, उसी पर अवलम्बित होकर आगे बढ़ रही हो। इस तरह ऊपर उठने में एक नवीनतर, उच्चतर क्रम या पदवी तो दिखायी दी, प्रतिष्ठित हुई, किन्तु साथ ही उसने अपने अन्दर नीचे के क्रमों या पदवियों को भी ग्रहण किया, उन्हें एक परिवर्तित रूप प्रदान किया, उनका त्याग नहीं किया। जड़ से प्राण निकला, इस प्राणतत्त्व के सहारे प्राणी नामक एक नया संगठन हुआ, किन्तु वहां जड़ आधाररूप से विद्यमान है। जड़ के अन्दर प्राण अनुस्यूत है, जड़ ने वहां आकर एक नया धर्म, एक नई क्रिया पाई है। उसी तरह जब मन (या मन-बुद्धि) प्रस्फुटित हुआ तब उसके अन्दर प्राण और जड़ उन्नीत हुए, उन्होंने और भी एक नया ही धर्म, नई क्रिया प्राप्त की। इसी उदयक्रम ने मनुष्य-नामक जीव को गठित किया।

इस तरह हमने देख लिया कि विवर्तन का यथार्थ उद्देश्य योग्यतम का उद्वर्तन नहीं है—बल्कि उसका उद्देश्य है चेतना का विकास, चेतना का उच्च से उच्चतर संगठन। जड़ से लेकर मनुष्य तक जो एक क्रम परम्परा चली आई है उसके भीतर का सूत्र है यही चेतना। जड़ के अन्दर चेतना सुप्त है, प्राण की प्रथम अवस्था में—उद्भिद् में वह स्वप्नस्थ है, प्राण की दूसरी अवस्था में, जहां प्राण ने मन का स्पर्श पाया है अर्थात् प्राणी के अन्दर वह अर्द्धजागृत है, और मन-बुद्धि वाले मनुष्य की चेतना पूर्णजागृत है। बुद्धि, मन, प्राण और जड़ ये चारों चेतना की चतुर्विध अवस्थाएँ हैं, जैसे कठिन, तरल और धूमिल (और अंत में वैद्युतिक) इत्यादि जल की विभिन्न अवस्थाएँ हैं।

हमने ऊपर जो विवर्तन के विभिन्न संधिस्थलों में एक व्यवधान या संयोग का अभाव होने की बात कही है उसका अर्थ या व्याख्या भी अब हमें मिल सकेगी। बर्फ़ जब पानी में परिणत होती है तब दोनों के बीच कोई पुल नहीं होता, बर्फ़ नर्म होते-होते क्रमशः जल में नहीं परिणत होती; जो चीज़ कठिन होती है वह हठात् तरल बन जाती है। उसी तरह जब जल भाप बनता है तब भी हम एक आकस्मिक परिवर्तन देखते हैं, जल गर्म होते-होते एक ऐसी जगह या अवस्था में पहुंच जाता है (उस समय भी वह जल ही होता है) जहां वह हठात् भाप का रूप धारण कर लेता है, दोनों अवस्थाओं के बीच की कोई उभयनिष्ठ अवस्था नहीं होती। ठीक उसी तरह जड़ और उद्भिद् के बीच, उद्भिद् और प्राणी के बीच, प्राणी और मनुष्य के बीच एक-एक छेद, अन्तर रह गया है, प्रत्येक समय आकस्मिक परिवर्तन ही हुआ है।

आरम्भ में केवल जड़ था। जड़ के भीतर एक प्रकार की तापन या पाचन-क्रिया चल रही थी, और धीरे-धीरे उसकी तीव्रता और तीक्ष्णता एक समय एक ऐसी विशेष मात्रा में जा पहुँची जहां उसके भीतर से प्राण-स्पन्दन निकल पड़ा। प्राण-शक्ति या जीवनी-शक्ति जड़ के अन्दर ही प्रच्छन्न, लीन, सुप्त थी। एक प्रकार के मंथन, ऊर्ध्वगमन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के फल-स्वरूप वह प्रकट हो गई। तल-भाग से, नीचे से सुप्त चेतना के दबाव से जड़ का कोष फट पड़ा और प्राण मुक्त हो गया। चेतना ने अपने जड़मय रूप से निष्कृति पाकर सर्वप्रथम प्राणमय रूप धारण किया। जड़ के अन्दर निहित चेतना के दबाव से प्राण-शक्ति चारों ओर फैलने, बहने लगी और सैकड़ों, हजारों रूप ग्रहण करने लगी और स्थूल में उसका फल हुआ उद्‌भिद्-जगत्। उद्‌भिद् के अन्दर प्राणमय जड़ सक्रिय हुआ है; अपने आपको उसने नये-नये आकारों, नई-नई धाराओं में सृष्ट, गठित किया है। पीछे में जो अन्तःस्थ चेतना का दबाव है वह जैसे फैलने की प्रवृत्ति देता है वैसे ही ऊपर उठने के लिये भी प्रेरणा करता है। उसी ऊर्ध्वमुखी दबाव के फल से प्राणमय जड़ से एक दूसरी ही चेतना की मूर्ति उत्पन्न हुई, प्राणकोष के फट जाने से बाहर निकल पड़ी संज्ञा, संवेदना—अब हुआ प्राणी का आविर्भाव। इसी संज्ञा, संवेदना या आदि-मन का सहारा लेकर प्राण और जड़ ने एक नया रूप प्राप्त किया। इस आदि-मन में भी फिर परिमार्जन और परिवृद्धि की क्रिया चलने लगी—पीछे वर्तमान चेतना का दबाव निरंतर क्रिया करता रहता है, वह कभी स्थिर नहीं होता, स्थिर होने भी नहीं देता—; आदि-मन से फिर उत्पन्न हुई बुद्धि, आत्म-संवित्, उसके संस्पर्श से मन, प्राण और शरीर को जो स्वरूप प्राप्त हुआ उसी का नाम हुआ मनुष्य।

और भी प्रश्न अभी है, और भी रहस्य अभी बाकी है। यह कहा गया है कि चेतना सत्ता के सबसे नीचे के तल में सुप्त, गुप्त, लुप्तप्राय अवस्था में है, वहां से वह धीरे-धीरे, क्रमशः जागती हुई ऊपर उठती है और फिर आत्मोन्मीलन, आत्मप्रकाश प्रत्येक स्तर में अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है। अब प्रश्न यह है कि यह चेतना आयी कहां से? जगकर ऊपर उठने की प्रेरणा ही उसने कैसे पायी? रहस्य इसका यह है कि चेतना सर्वदा ही एक ऊपर की चीज़ है, उसका स्वरूप एक परमपद में वर्तमान है; उसी परमपद से, उसी ऊपर के स्तर से वह क्रमशः नीचे उतरी है, अपने को ढकती हुई आयी है, और अन्त में पूर्णरूप से अपने को ढक दिया है जहां उसी का नाम पड़ा है जड़। तब यह बात स्पष्ट हो गयी कि विवर्तन जिस क्रम से ऊपर की ओर उठ रहा है ठीक उसी क्रम से उससे पहले एक निवर्तन या अवतरण हो चुका है। चेतना की स्वाभाविक अवस्था या उसका निजी स्वरूप है पूर्णतम चेतना, जिसे हम अति-चेतना कह सकते हैं (क्योंकि वह मनुष्य की साधारण चेतना से परे है)। वह चेतना निम्नाभिमुखी हुई है—एक विचित्र बहुमुखी सृष्टि के लिये—जिसे ऋग्वेद ने 'नीचीनाः स्थुः' या गीता और उपनिषद् ने 'अवाक्‌शाखं' कहा है। इसी निम्नगामी पथ से चेतना अपने-आपको खंडित, स्वल्प, आच्छन्न करती हुई नीचे आई है—अति-चेतना एक समय में मानस-तत्त्व में परिणत हुई और तब मनोमय जगत् की सृष्टि हुई; फिर चेतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोमय तत्त्व से और भी अधिक आत्म-विस्मृत रजो-तामस हो गई और तब वह प्राणतत्त्व में परिणत हुई और उसने प्राणमय जगत् की सृष्टि की; उसके बाद चेतना ने जहां अपने-आपको एकदम खो दिया, वह पूर्ण तामस बन गई वहां जड़ का—जड़तत्त्व का और जड़ जगत् का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार चेतना के 'निवर्तन' की, क्रम-संकोचन की धारा नीचे उतरी है; इसके बाद विवर्तन की, क्रम-विकास की धारा आरम्भ हुई है। चूंकि चेतना इस प्रकार ऊपर से नीचे उतर आई है इसी कारण उसे फिर नीचे से ऊपर उठना पड़ रहा है।

ऊपर से जो चेतना नीचे उतर आयी है उसकी धारा प्रच्छन्न है, वह मानो पीछे की ओर है, एक अन्तर्लोक में है। जड़ जगत् जब प्रकट हुआ और जब वह विवर्तित होने लगा तब उसका लक्ष्य और प्रयास यह हुआ कि वह पीछे जो तत्त्व प्रच्छन्न है उसे क्रमशः बाहर जागृत करे, प्रकट करे—पहले जड़ के अन्दर, जड़ को प्रतिष्ठित करे, फिर उसके बाद उसी जड़ को मूल बुनियाद बनाकर एक के बाद एक तत्त्व को बाहर प्रकट करे, उसी जड़ के ऊपर प्रतिष्ठित और सज्जित करे। दूसरे शब्दों में निवर्तन के द्वारा पृथक्-पृथक् तत्त्वों का अवरोहण हुआ था, और विवर्तन की पद्धति है उन्हीं-उन्हीं तत्त्वों में, विपरीत दिशा से, पुनः आरोहण करना, अथवा उससे भी अधिक अच्छा यह कहना होगा कि जिन-जिन तत्त्वों में आरोहण किया गया हो उन सबमें एक साथ अधिष्ठित रहना और ऊर्ध्वतम के धर्म में सभी निम्नतर तत्त्वों को नियंत्रित और रूपान्तरित करना।

निवर्तन की धारा में जिन सब स्तरों या तत्त्वों की सृष्टि हुई थी उन सब की क्रिया को विवर्तन की धारा में अब हम समझ सकते हैं। नीचे की चेतना के दबाव से जड़ ऊर्ध्वमुखी हुआ प्राण की ओर (अन्य किसी ओर नहीं), क्योंकि प्राण-तत्त्व पहले से ही जड़ से ऊपर विद्यमान है और जड़ के अन्दर उतर कर प्रकट होने की चेष्टा कर रहा है। उसी तरह जब प्राण बाहर आकर उतर आया, जड़ को उसने अधिकृत किया तब उसकी गति हुई मन की ओर जाने की, क्योंकि प्राण के ऊपर मन पहले से ही विद्यमान है और मन भी नीचे उतरना और प्रकट होना चाहता है। अतएव विवर्तनगत रूपान्तर की प्रणाली यह हुई कि एक ओर नीचे के दबाव से, ऊर्ध्वगति के फल-स्वरूप चीज़ बदलती जा रही है और दूसरी ओर उस उस समय एक पूर्ण रूपान्तर, एक विपर्यय घटित होता जा रहा है जिस जिस समय ऊपर से एक तत्त्व उतरकर उस ऊर्ध्वोन्मुख वस्तु को आश्रय बनाता है। यहां पर यह ध्यान रखने की बात है कि नीचे के दबाव से वस्तु के अन्दर जो परिवर्तन आता है वह धीरे-धीरे होता है, धारावाहिक रूप से होता है; किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस क्षण ऊपर से कुछ उतर आता है उस क्षण धारावाहिकता भंग हो जाती है, उस समय जो कुछ होता है उसी को वैज्ञानिक लोग कहते हैं 'प्रकृति की छलांग'।

विवर्तन की युग-संधियों में जो एक व्यवधान दिखायी देता है वह अनिवार्य और स्वाभाविक है। क्योंकि विवर्तन के क्रम-परिवर्तन के अन्दर एक अवतरण भी हुआ करता है, इसी कारण तब परिवर्त्तन हठात् होता है। प्रकृति के अर्जित रूप-धर्म में जो नाना प्रकार से हेर-फेर होता रहता है वह होता है अन्तर की प्रेरणा से; किन्तु प्रकृति नये प्रकार का रूप, नयी श्रेणी का धर्म तभी प्राप्त करती है जब उसके अन्दर अवतीर्ण होता है ऊर्ध्वतर—नवीन रूप और नवीन धर्म का एक लोक।

अवश्य ही आध्यात्मिक सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा यह दिखाई देता है कि नीचे की ओर से जिस प्रकार अविरल एक चेष्टा चल रही है ऊर्ध्वमुखी परिवर्त्तन के लिये, उसी प्रकार ऊपर की ओर से भी निरंतर उतर रहा है एक दबाव—एक प्रभाव। ऋग्वेदीय ऋषि ने इसी गुह्य सत्य की ओर लक्ष्य करके संभवतः यह कहा है कि निम्न पकड़े हुए है ऊर्ध्व को और ऊर्ध्व पकड़े हुए है निम्न को—'अवः परेण पर एनावरेण' (१-१६४-१७)। इस तरह जब ऊपर से एक वस्तु-तत्त्व स्वरूप में उतर आता है, अवतीर्ण होता है तभी विवर्तन में एक प्रकार का युगान्तर और क्रमान्तर उपस्थित होता है।

अध्यात्म-दृष्टि वाले लोगों का कहना है कि वर्तमान समय में जगत, पृथ्वी फिर एक संधिक्षण में उपस्थित हुई है। मनोमय पुरुष ने मनुष्य में पूर्णता प्राप्त की है, मन के शिखर पर मनुष्य चढ़ गया है, उसका आग्रह, उसकी अभीप्सा किसी ऊर्ध्वतर, बृहत्तर सत्य की ओर है। इसी कारण अब वह समय आ गया है जब मन से ऊपर विद्यमान अति-मानस तत्त्व—विज्ञान-तत्त्व—अवतरित होगा, इस बार मनुष्य के ही रूपान्तर के द्वारा—अथवा अन्य किसी उपाय से; और पृथ्वी पर उत्पन्न होगा मनुष्य से भी अधिक पूर्ण एक जीव—अतिमानस या चिन्मय जीव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभीप्सा

(लेखक—श्री अनिलवरण जी)

अभीप्सा ही हमारी एकमात्र तपस्या है, वही एकमात्र अग्नि है जिसे हमें सब समय और सब परिस्थितियों में अपने हृदय में प्रज्वलित बनाये रखना होगा। हमें अन्य कोई अग्नि जलाने की जरूरत नहीं, दूसरी कोई तपस्या या कृच्छ्र साधना करने की आवश्यकता नहीं।

अगर हमारे मार्ग में अनुल्लंघनीय कठिनाइयां बाधा दें, अगर अज्ञान-अंधकार की शक्तियां हमें चारों ओर से घेर लें और हमें अपनी भयानक माया के द्वारा विमोहित करें तो उस समय हमें केवल अपने हृदय की इस आग को तत्परता के साथ सुरक्षित रखना चाहिये, और बस, फिर सारी बाधाएं विलीन हो जायेंगी, सारी विरोधी शक्तियां, चाहे जितनी भी प्रचंड क्यों न हों, परास्त हो जायेंगी।

अगर हम अत्यंत नीचे भी गिर जायें और सारी आशा निर्मूल हुई सी मालूम हो; अगर हमें कोई सहायता देने वाला न हो, हमें प्रसन्न करने वाला न हो, हमें रास्ता दिखाने वाला न हो, अगर हम सब कुछ खो चुके हों और सब के द्वारा परित्यक्त हो गये हों, फिर भी यदि हम निरंतर, सचाई के साथ अपनी अभीप्सा को बनाये रखें तो अवश्य ही हमें ऊपर से (अर्थात् भगवान् से) सहायता प्राप्त होगी और हम अत्यंत नीची अवस्था से भी ऊपर उठ जायंगे।

अगर अवसाद और तमस् हमें अभिभूत कर लें, और हम कुछ भी उन्नति न कर सकें, अगर अंधकार हमारे ऊपर चारों ओर से आक्रमण करे और हम अपना रास्ता न देख सकें, फिर भी अगर हम अपनी अभीप्सा को जीती-जागती बनाये रखें और सच्चे हृदय से ऊपर, भागवती शक्ति की ओर ताकें तो तुरंत हमारे अन्दर ताज़ी शक्ति नया उत्साह भर जायगा और हम अपने सामने अपने मार्ग को साफ़-साफ़ देखने लगेंगे।

हमारे अन्दर जो कुछ सब से उत्तम है उसे अभीप्सा जागृत करेगी, हमारी सभी शक्तियों को वह एकत्र कर उन्हें ऊर्ध्वमुखी बनावेगी, हमारी प्रकृति के अन्दर विद्यमान सभी भेद और विरोध केवल एक उद्देश्य और एक भक्ति के अन्दर विलीन हो जायंगे और ऊपर से भगवत्-कृपा और दिव्य प्रेम नीचे उतर आयेंगे। अभीप्सा हमारे अन्दर दिव्य प्रेम को लायेगी और वह प्रेम हमें विजय प्रदान करेगा।

× × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे मां ! मुझे एक ऐसी ज्योति-शिखा बना दे जो सदा तेरी ओर जलती रहे, मेरे अन्तरात्मा को अपने प्रेम के अन्दर घुलमिल जाने दे ; यही एकमात्र उपाय है जिससे मैं तेरे दिव्य जीवन के अन्दर नया जन्म ग्रहण कर सकूंगा।

नाना प्रकार के विचार और भाव बाहर से आकर सदा मेरे मन में घुसने की चेष्टा करते हैं और मेरी अभीप्सा की ज्योति को स्थिर नहीं रहने देते ; हे मां ! ऐसा आशीर्वाद दे कि मैं दृढ़तापूर्वक ऐसे सभी बाधक विचारों को बाहर निकाल फेंकूँ और अपने मन को पूर्णरूप से शुद्ध और स्वच्छ बनाये रखूँ।

प्राणमय लोक से आने वाली कामनाएँ और आसक्तियाँ सदा मेरी ज्योति को तमसाच्छन्न करने और बुझा देने की चेष्टा करती हैं ; मां ! ऐसा आशीर्वाद दे कि मैं ऐसी सभी नीच कामनाओं और आसक्तियों को पूरी दृढ़ता के साथ त्याग दूं और अपने हृदय को पूर्ण स्वच्छ और शुद्ध बनाये रखूँ।

मेरी अभीप्सा की ज्योति को दुर्बल बनाने के लिये मेरे शरीर पर सब प्रकार के आक्रमण किये जाते हैं ; हे मां ! ऐसा आशीर्वाद दे कि मैं ऐसे सभी प्रयासों को विफल बना दूं और अपने शरीर को तेरी पूजा के लिये स्वस्थ और बलिष्ठ बनाये रखूँ।

हे मां ! ऐसी कृपा कर कि मेरी ज्योति असीम श्रद्धा-विश्वास के द्वारा पुष्ट हो और अक्षय शान्ति और स्थिरता मेरी सारी सत्ता में छा जाय। तेरे आशीर्वाद से, हे भगवती माता ! मैं नित्य-निरंतर दिव्य जीवन में उन्नत होता रहूँगा।

× × × ×

मेरी आन्तर सत्ता ने पुराने जगत् को पीछे छोड़ दिया है और जीवन के पुराने तरीकों का त्याग कर दिया है ; किन्तु मेरी बाह्य प्रकृति में अभी तक पुराने जीवन के प्रति आकर्षण बना ही हुआ है और इस कारण मेरे अन्दर पुराने विचार और पुरानी कामनाएं बार-बार उठा करती हैं। हे मां ! यदि तू मेरी सत्ता को पूर्णरूप से अधिकृत न कर ले और मेरी सत्ता के अन्दर ओत-प्रोत न हो जा तो भला मैं कैसे इन सब से एकदम मुक्त हो सकता हूँ ?

ज्योंही पुराने विचार और भाव मेरे मन में घुसेंगे त्योंही, हे मां ! मैं तुझे पुकारूंगा और तुझे मेरे मन में अपने सत्य का प्रकाश भर देना होगा।

ज्योंही मेरे अन्दर कामनाएं-वासनाएं, कुप्रवृत्तियां जागृत होंगी त्योंही, मां, मैं तेरा आवाहन करूंगा, और तुझे मेरे हृदय को अजेय माधुर्य और आनन्द से भर देना होगा।

ज्योंही मेरे अन्दर अज्ञानमयी और विकृत क्रियाएं दिखाई देंगी, त्योंही, हे माता, मैं तेरी ओर उन्मुख हूँगा और तुझे मेरे प्राणों को अपने सामंजस्य और कृपा से भर देना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे मां ! मैं अपनी सारी अपूर्णताओं और अज्ञान-अंधकार में सदा-सर्वदा एकमात्र तेरी ओर दृष्टि लगाये रहूंगा और यह आशा बनाये रखूंगा, यह अभीप्सा प्रज्वलित रखूँगा कि वह दिन बहुत शीघ्र आयेगा जब तू पूर्णरूप से मेरी सत्ता पर अपना अधिकार जमा लेगी और मुझे दिव्यत्वं प्रदान करेगी।

कलापूर्ण वस्तु ?

(ले०—श्री जिनराजदास)

जब कोई यहां-नीचे की-वस्तु अर्पित की जा सकती है वहां-ऊपर की-वस्तु की स्तुति में

तो वह कलापूर्ण होती है।

जब कोई पृथ्वी की भौतिक वस्तु ऊपर एक मूलरूप आदर्श की ओर अदृश्य पङ्खों पर तैरने के लिये तैयार सी दिखाई देती है

तो वह कलापूर्ण होती है।

जब ज्ञानेन्द्रियों में से किसी एक के भी सामने आई हुई कोई वस्तु हमें न केवल परमेश्वर की किन्तु मनुष्य की भी बात कहती है

तो वह कलापूर्ण होती है।

जब किसी वस्तु में या घटना में उसका पुण्य प्रारम्भ उसके अन्त के भी दिखला देने वाला होता है

तो वह कलापूर्ण होती है।

(इण्डियन थियासोफिस्ट से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक टेक

(स्व० श्री पं० चमूपति जी एम० ए०)

तुम प्रभु मेरी एक टेक हो—
एक तुम्हीं मुझमें अनेक हो ॥

छोड़ रहे हों सब बान्धवगण,
मैं हूं और तुम्हारा सुमरण।
अविरत चिन्तन अविरत पूजन,
हो अनन्य जब टेक एक हो ॥
तुम प्रभु! मेरी एक टेक हो –

सुखमें दुखमें तुम्हीं पास हो,
हूँ निराश क्यों? एक आस हो।
विश्वरास, जब तुम्हीं रास हो,
तुम्हीं न मुझसे विमुख नेक हो॥
तुम प्रभु! मेरी एक टेक हो—

मैं तुमसे मुख कभी न मोड़ूँ,
स्वार्थ तजूं सन्मार्ग न छोड़ूँ।
सबसे तोड़ूं, तुम से जोड़ूँ,
बस इतना मुझ में विवेक हो ॥
तुम प्रभु! मेरी एक टेक हो—

कटु हो मृदु हो स्पर्श तुम्हारा,
मेरा क्या? उत्कर्ष तुम्हारा।
है निर्दोष विमर्श तुम्हारा,
जो तुम कर दो वही नेक हो ॥
तुम प्रभु! मेरी एक टेक हो—

मस्त तुम्हारा है स्वरूप क्या?
अहो रूप यह है सुरूप क्या?
है अद्भुत क्या औ अनूप क्या?
सुख-स्वरूप सुखातिरेक हो ॥
तुम प्रभु मेरी एक टेक हो—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नोत्तरी

(लेखक—श्री नारायणप्रसाद जी)

(१)

भगवान् किसे अपनाते हैं ?

जो उन्हें अपनाता है।

संसार में सबसे कठिन क्या है ?

ऊपर उठना, चढ़ना, ऊर्ध्वगति करना।

मनुष्य को नीचे के स्तर में बांध कर किसने रक्खा है ?

वासना ने और अहंकार ने।

उसके ऊपर उठने में सबसे अधिक सहायक क्या है ?

अभीप्सा और भगवत्-कृपा।

भगवान् की कृपा, कहते हैं, वर्षा की तरह सब जगह बरस रही है तो फिर हम उसे पाते क्यों नहीं ?

इसलिये कि हम उसके प्रति खुले हुए नहीं या हम में ग्रहणशक्ति नहीं।

भगवान् की कृपा से क्या होता है ?

पूछो 'क्या नहीं होता है ?'।

भगवान् किसे वरते हैं ?

जिसे वे कसौटी पर कसने पर खरा पाते हैं।

भगवान् किसे नहीं भूल सकते ?

जिसने उनके भरोसे अपने आप को छोड़ दिया है, जो शरणागत हो गया है।

(२)

साधक को प्रसन्नतापूर्वक क्या स्वीकार करना चाहिये ?

जो कुछ भी भगवान् की ओर से आ जाय।

उसे सबसे अधिक किस बात के लिये यत्नवान् रहना चाहिये ?

इस बात के लिये कि साधना की जिस चोटी पर वह चढ़ चुका है उससे तिल भर भी वह पीछे न हटे।

साधक को क्या नहीं करना चाहिये ?

न तो जल्दबाजी और न ही उकताना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या करना चाहिये ?
अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अपनी अभीप्सा को पवित्र यज्ञाग्नि की तरह सदा निरन्तर प्रज्वलित रखना।
साधक को किससे बचना चाहिये ?
एक तरफ़ राजसिक अत्युत्साह से दूसरी तरफ़ तामसिक निरुत्साह से।
साधक को अपना सर्वस्व देकर बदले में क्या मांगना चाहिये ?
शरणागति में उत्तरोत्तर वृद्धि और ग्रहण-शक्ति।
साधक के लिये सबसे घातक क्या है ?
गुरु से अपने दोष और दुर्बलताओं को छिपाना।
साधक को सतत किस बात की आवश्यकता है ?
सदा जागते रहने की।
उसे अपने अन्दर किसे नहीं आने देना चाहिये ?
निराशा और उदासी को।
साधक को किस बात से जरा भी घबराने की जरूरत नहीं ?
उतराव-चढ़ाव से। क्योंकि उतराव-चढ़ाव या ऊंच-नीच का आना तो साधना में अत्यन्त स्वाभाविक है।
अपने शत्रुओं से युद्ध करने के लिये साधक का सबसे बड़ा शस्त्र क्या है ?
संकल्प-शक्ति।
साधक को बिगाड़ने वाली चीज क्या है ?
दिखावे की आदत।
साधना में खतरा कहां है ?
जहां कपट है।

(३)

मन क्या चाहता है ?
प्राण को अपने साथ घसीट ले जाना।
प्राण क्या चाहता है ?
मन पर भी प्रभुत्व जमाना।
शरीर क्या चाहता है ?
मन और प्राण को अपने दबाव में रखना।
इनमें विजयी कौन होता है ?
जब जो बलवान् होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस खींचातानी में मनुष्य कब तक पड़ा रहता है ?

जब तक वह इनमें एकता की स्थापना नहीं कर लेता।

इनमें एकता कैसे लाई जा सकती है ?

साधना के द्वारा—इन प्रतिद्वन्द्वी भागों में एकता लाने के लिये ही तो साधना की जाती है।

शान्ति का मोती कहां रहता है ?

साधना की सीपी में।

मन के शान्त और सर्वतोभावेन भगवन्मुखी होने से क्या होता है ?

अन्दर का वह दरवाजा खुलता है जिससे दिव्य शक्ति, दिव्य प्रकाश आदि प्रवेश करता है।

ध्यान में सबसे बड़ा बाधक क्या है ?

विषय-भोगों की स्मृति।

साधक को ध्यान में बैठने से पूर्व क्या करना चाहिये ?

पहिले अपनी पुकार उठानी चाहिये।

ध्यान या साधना में उसे क्या करना होता है ?

माता की शक्ति उतर आने पर उसके हाथ अपने आपको छोड़ देना।

सब से पहिले किस बात का यत्न करना चाहिये ?

शान्ति को पाने के लिये और शान्ति की स्थापना के लिये।

मन माने ही नहीं तो क्या करना चाहिये ?

उस पर ज़ोर-जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये, न झल्लाना चाहिये, बल्कि एक हठी बालक को जैसे मीठे प्रेम के शब्दों में समझाया जाता है वैसे मनको समझाना चाहिये और उसे उसकी भूल सुझा देनी चाहिये।

(४)

हमारी आंखें कौन खोलता है ?

आन्तर चक्षु, गुरु; और बाह्यचक्षु, हमारा निन्दक।

सच्चा गुरु क्या करता है ?

शिष्य में परमेश्वर की ज्योति उतर सके, इसका उसे अधिकारी बनाने का यत्न करता है।

गुरु का उपदेश अपना प्रभाव कब दिखाता है ?

जब मन शुद्ध, शान्त और निर्मल होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग में कौन नहीं प्रवेश कर सकता ?
जो एकरस जीवन से डरता है।
मनुष्य शान्ति कब पाता है ?
जब वह वासनाओं को पोसना छोड़ देता है।
मन की दौड़धूप कब तक चलती है ?
अध्यात्म-रस का चस्का जब तक उसे नहीं लग जाता।
सामाजिक काम-काज करते हुए भी स्थिर शान्ति कैसे रह सकती है ?
सब भूतों में अपनी आत्मा का अनुभव कर लेने से।
एक आत्मा लाखों में जीवरूप से विभक्त होने पर भी पूर्ण कैसे बना रहता है ?
जैसे एक चिराग से लाखों चिराग जला लेने पर भी उसकी शक्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।
पाप क्या है ?
जो भगवान् से दूर हटावे।
पुण्य क्या है ?
जो भगवान् के निकट पहुंचावे।
सदा बेहतर क्या है ?
कोरे कहने से करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द—एक महान् योगी

(ले०—श्री डा० इन्द्रसेन जी)

श्रीअरविन्द का नाम—विशेषतः उनका पुराना नाम 'अरविन्द घोष' अति विख्यात है। परन्तु वह रहस्य से इतना आच्छादित है कि उसके विषय में और अधिक तथा ठीक-ठीक जानने की उत्सुकता बड़ी तीव्र हो जाती है। "सुनते हैं कि श्रीअरविन्द वर्ष भर में केवल एक या दो वार ही अपने कमरे से बाहर निकलते हैं और उस समय भी कुछ बोलते-चालते नहीं। क्या वे मौन साधे हुए हैं ? क्या वे हमेशा समाधि में रहते हैं ? वे महान् योगी तो हैं ही, तो अवश्य उनमें अनेक असाधारण शक्तियां होंगी। क्या वे ऐसा कर सकते हैं ? क्या वे वैसा कर सकते हैं ?"

ये हैं भाव श्रीअरविन्द के संबंध में वर्तमान पीढ़ी के सर्वसाधारण मनुष्य के। कभी कभी पुरानी पीढ़ी के कुछ ऐसे वृद्ध व्यक्तियों से भी हमारी भेंट हो जाती है जो श्रद्धा व उत्साहपूर्वक उन्हें महान् स्वदेशी आन्दोलन के राष्ट्रीय नायक के रूप में पहिचानते और स्मरण करते हैं तथा अभिमान के साथ कहते हैं कि वे उनके 'वन्दे मातरम्' के ग्राहक थे और उसमें वे उनके लिखे उद्बोधक लेखों को बड़ी उत्सुकता के साथ पढ़ा करते थे।

परन्तु...परन्तु फिर वे सार्वजनिक जीवन से एकाएक अन्तर्धान हो गये—ऐसा वे बड़े खेद के साथ स्मरण करते हैं, साथ ही यह भी कि फिर बड़े लंबे अर्से तक उनका नाम तक सुनाई नहीं दिया। 'सुनते हैं कि वे अब एक महान् योगी हो गये हैं' मानो उन्हें फिर से प्राप्त करते हुए वे कहते हैं। और सुना जाता है कि सुदूर दक्षिण की ओर पांडिचेरी में उनका एक आश्रम है। उनका आध्यात्मिक प्रभाव और शक्ति ऐसी है कि जो लोग भी आश्रम में जाते हैं और उस वायुमण्डल में कुछ देर ही रहते हैं तो वे मन की गहरी शान्ति और निर्मलता को अनुभव करते हैं। लोग अपनी मानसिक कठिनाइयों और संघर्षों को लेकर उनके पास पहुंचते हैं और वहां वे सब स्वयमेव हल हो जाते हैं। 'उन दिनों भी,' श्रीअरविन्द के वे वृद्ध मित्र याद करते हुए कहते हैं 'वे योग की बातें किया करते थे'। ऐसा प्रतीत होता है कि योग उनके मन में उस समय भी था। 'पर समझ नहीं पड़ता कि' वे आश्चर्य से कहते हैं 'श्रीअरविन्द इन सारे तीस बरसों में करते क्या रहे हैं और वे तथा उनके शिष्य अब आश्रम में क्या करते हैं।'

उस अतीत स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में लिखी एक प्रसिद्ध चिट्ठी में श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने लिखा था, 'मुझ में तीन पागलपन हैं। उनमें से एक है भगवान् को पाना, जो भगवान् कि, यदि वह है, तो अवश्य ही हमें प्राप्य, उपलभ्य भी होना चाहिये'। यह था उनकी जैव सत्ता में विद्यमान, गहराई में पहुंचा हुआ उनका दार्शनिक और यौगिक अनुराग जिसने कि, अब स्पष्ट प्रतीत होता है, उनके जीवन के असली ध्येय और कार्य का आगे निर्धारण करने वाला बनना था। इससे पहले १९०८-९ के बीच जब वे अलीपुर जेल में अभियोगाधीन बन्दी के रूप में थे उनको एक नया बोध प्राप्त हुआ था जिससे उन्हें यह दीख गया था कि योग में जीवन की समस्या को हल करने की क्षमता है। उन्हें तब योग के लिये और जीवन की पूर्णता के आदर्श के लिये अत्यन्त शक्तिशाली और सर्वथा अदम्य पुकार सुनाई दी। राजनीति और देश की स्वाधीनता के जिन कार्यों में वे अब तक व्यस्त थे वे उस समय उन्हें अपेक्षाकृत गौण प्रतीत होने लगे। स्वयं मानव जीवन की महान् समस्या उनके सामने बड़े उग्र रूप में आई। उन्होंने अनुभव किया कि यदि इसका हल हो जाय तो अन्य सब समस्याएं जो हमारी वर्तमान मानव प्रकृति के ही सीधे सादे परिणाम-रूप हैं वे भी अवश्य ही स्वयमेव हल हो जायंगी। परिवार, समाज, देश तथा धर्म तक के दावों तथा इनके प्रति दृढ़ भक्ति को भी लांघ कर भारतीय संस्कृति, 'आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्' संस्कृत की इस सुप्रसिद्ध सूक्ति के अनुसार, आध्यात्मिक जीवन के ध्येय की सर्वोत्कृष्टता को जो स्वीकार करती है सो उचित ही है। वही चेतना श्रीअरविन्द में उस समय जागृत हुई और उन्होंने यह स्पष्ट देखा कि आत्मिक राज्य की गवेषणा उनके जीवन का सच्चा ध्येय है। अब उन्होंने अपनी नई जिम्मेवारी की मांगों के अनुसार पांडिचेरी के एक शान्त कोने में विश्राम लेकर अपने आपको सच्चाई और श्रद्धा के साथ इस ध्येय के प्रति समर्पित कर दिया।

और तब से वे वहां क्या करते रहे हैं? उनके महान् दार्शनिक ग्रन्थ 'The Life Divine' के पहले दो वाक्य स्वयं ही इसका उत्तर देते हैं। इनमें वे कहते हैं, "अपने प्रबुद्ध विचारों में मनुष्य सबसे पहले से जिस कार्य में लगा है मनुष्य की वह प्राचीनतम कार्य-व्याप्ति और, जैसा कि प्रतीत होता है, उसकी वह अनिवार्य और चरम कार्य-व्याप्ति—क्योंकि संदेहवाद के लंबे से लंबे काल के बाद भी यह जीवित बची रहती है और प्रत्येक निर्वासन के बाद फिर लौट आती है—साथ ही वह सर्वोच्च वस्तु भी है जिसे कि उसका विचार चिन्तन में ला सकता है। यह अपने आपको प्रकट करती है देवाधिदेव के पता लगाने के रूप में, परिपूर्णता-प्राप्ति के आवेग के रूप में, विशुद्ध सत्य तथा अमिश्रित आनन्द की खोज के रूप में, छिपी हुई अमरता के संवेदन के रूप में।" संपूर्ण इतिहास के इन उच्चतम मानव आदर्शों पर श्रीअरविन्द का ध्यान प्रारंभ से जमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था और इन्हें अपने वास्तविक अनुभव में लाकर उत्तरोत्तर साक्षात्कार करना इन पिछले वर्षों में उनका कार्य रहा है। जब से उनको जीवन के उच्चतर और गंभीरतर अर्थ के प्रति वह अवश्यम्भवितव्य जागृति हुई तब से ही उनके अविभक्त मन की खोज का विषय वह "ज्ञान का प्राचीनतम सूत्र" रहा है जोकि साथ ही "चरमतम सूत्र भी सिद्ध होता दीखता है," जो **"परमेश्वर, प्रकाश, मुक्ति और अमरता"** के शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है। निःसंदेह जिस कार्य का उन्होंने बीड़ा उठाया है वह किसी भी अन्य कार्य की अपेक्षा जिसमें कि मनुष्य लग सकता है बहुत ही अधिक कठिन है। इसके कष्ट-क्लेश और परीक्षायें इतनी अधिक सूक्ष्म हैं कि साधारण मनुष्यों की स्थूल कसौटी उन्हें पहिचान नहीं सकती। एक भारतीय लोकोक्ति का यह कहना ठीक है कि जो मन पर विजय पा लेता है वह संसार-विजेता की अपेक्षा भी बड़ा है।

परन्तु क्या श्रीअरविन्द, उन्होंने जो महान् कार्य अपने हाथ में लिया था उसमें सफल हुए हैं? अब, इस प्रश्न का जवाब कौन देगा? मैं तो नहीं दे सकता। मैं तो निश्चित तौर पर इतना ही कह सकता हूँ कि उसी प्रकार के साक्षात्कार की खोज में लगे हुए लोग उनके पास सहायता और पथप्रदर्शन के लिए जाते हैं और यह सुनकर हमारे आश्चर्य तथा हर्ष की सीमा नहीं रहती कि उनकी छत्रच्छाया में साधना करते हुए उन्हें जो सफलता मिलती है उस पर वे अत्यन्त संतोष प्रकट करते हैं। वे आपको यह बतायेंगे कि उनमें समस्वरता, शान्ति, प्रकाश और प्रेम का भाव उत्तरोत्तर प्रतिष्ठित हो रहा है। वे आश्रम में १० या १५ वर्ष बिता देने पर पूर्ण संतोष अनुभव करते हैं। शायद यह जानकर आप भौंचक्के रह जायं कि उनका लक्ष्य अत्यन्त यथार्थवादी रूप में भगवान् को पूर्णतया प्राप्त करना है। उनका उद्देश्य है परिमित सुख, ज्ञान व शक्ति वाली मानव चेतना को अमित ज्ञान, शक्ति और आनन्द वाली पूर्ण भागवत चेतना में रूपान्तरित करना।

प्रश्न होता है: यह परमार्थ—परम श्रेय, साक्षात् पूर्णत्व—कैसे साधित किया जा सकता है? ऐसा करने की विधि का प्रतिपादन, मेरे विचार में, श्रीअरविन्द का अद्वितीय उपकार है—विशेषतया आधुनिक मनुष्य के लिये। योग एक प्राचीन वस्तु है परन्तु इसकी सत्यता को आधुनिक ढंग से प्रमाणित किये जाने की तथा इसकी पुनः व्याख्या किये जाने की आवश्यकता थी। श्रीअरविन्द ने हठयोग, राजयोग, तंत्रयोग तथा अन्य विविध योग-पद्धतियों का बृहत् परीक्षण करके उसके द्वारा योग की एक सर्वसंग्राहिका पद्धति को विकसित किया है जिसे उन्होंने सर्वांग-योग (Integral yoga) या 'पूर्ण-योग' नाम से पुकारा है। वर्तमान युग को उनकी यह एक महान् देन है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक सत्य के जिज्ञासुओं द्वारा यह इतनी अधिक बहुमूल्य करके आदृत की गई है।

यहां उस पद्धति का यथार्थ वर्णन कर सकना अशक्य है और उन के तत्त्वज्ञान (दर्शन) का मोटे तौर पर प्रतिपादन मात्र भी हम यहां नहीं कर सकेंगे। पर यह मुझे स्वीकार करना चाहिये कि इस पद्धति की यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परिपक्वता और उत्कृष्टता ही है जिसने मुझे इसका अध्ययन करने पर मन्त्रमुग्ध कर लिया और मुझे तुरन्त इसका अनुयायी बना दिया। इस योगपद्धति की जो युक्ति है उसकी कुंजी 'सर्वांगीण (Integral)' शब्द में है। हठयोग मानव व्यक्तित्व का अभीष्ट रूपान्तर करने के लिये शरीर को साधन बनाता है, राजयोग मुख्यतया मन को और एकाग्रता के अभ्यास को। परन्तु सर्वांगीण योग (Integral yoga) इस बात पर बल देता है कि संपूर्ण व्यक्तित्व ही काम करे, जानने, अनुभव करने और संकल्प करने के सब व्यापार द्वारा संपूर्ण व्यक्तित्व ही काम करे। और इससे जो परिणाम उद्दिष्ट होता है वह भी यह है कि संपूर्ण व्यक्तित्व का ही अपने साधारण नियमित व्यापारों में एक कार्यक्षम रूपान्तर हो जाय। सब प्रकार के व्यष्टिगत भेदों के लिये इस पद्धति में अत्यधिक स्थान है। किसी भी प्रवृत्ति का निग्रह किया जाना इसमें सह्य नहीं है। इस पद्धति के अनुसार निग्रह कोई इलाज नहीं है। इस योग का वास्तविक मनोवैज्ञानिक अभ्यास-नियम यह है : प्रकृति की कुत्सित चेष्टा जैसे घृणा, ईर्ष्या इत्यादि का परित्याग और इनसे आन्तरिक, मानसिक संबन्ध का विच्छेद कर देना, तथा प्रकृति की शुभ चेष्टा जैसे कि शुभेच्छा और दूसरों के प्रति प्रेम के लिये अभीप्सा करना और उच्चतर चेतना के प्रति अपने को ऐसे खोल देना कि मानो उसे आमन्त्रित कर उसके स्वागत-सत्कार के लिये हम बाहु पसारे प्रतीक्षा कर रहे हों।

पुरानी आदतों को छोड़ने और नई को डालने के लिए आधुनिक मनोविज्ञान अनेकविध विधियों को प्रस्तुत करता है। जहाँ तक उन की पहुंच है वहाँ तक वे निःसंदेह अच्छी हैं। परन्तु इस यौगिक प्रणाली का मेरा अनुभव इतना सुन्दर और उत्साहवर्धक है कि मैं प्रत्येक युवक लड़के और लड़की से निवेदन करूंगा कि वे अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिये इस विधि का सचमुच प्रयोग करने की ओर ध्यान दें। चरित्र-गठन मुख्यतया युवकों की समस्या है और मुझे निश्चय है कि इस प्रणाली से उन्हें बड़ा संतोष मिलेगा। पूरी सत्यहृदयता इस प्रणाली की मांग है। किसी चीज को प्राप्त करने की या छोड़ने की तुम्हें हृदय से अभिकांक्षा करनी चाहिये। उचित वस्तु के लिये तीव्र अभीप्सा—कुत्सित चेष्टा का, उसके फिर फिर लौटने पर प्रत्येक बार उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परित्याग, और रूपान्तर के लिये उच्चतर चेतना का अपने अन्दर बार बार आवाहन, यह है जो कि, चुपके से परन्तु अवश्य ही तुम्हारे अन्दर तुम्हारे बिना कुछ और किये चमत्कार उपस्थित कर देगा।

युवकों के अन्दर जवानी में जो कुछ नई हलचलें उठा करती हैं उनका जब उन्हें पता लगता है तो वे बहुधा भयभीत हो जाते हैं। वे उनके लिये चिन्तातुर हो जाते हैं, उनके बारे में बहुत सोचते हैं और उद्विग्न रहने लगते हैं। यह सब कुछ मामले को सुधारने का ग़लत ढंग है। काम में लगे रहने को एक अच्छा बाहरी धन्धा, सामाजिक क्रीड़ाएं, सादी ख़ुराक और जीवन-यापन का सर्वसामान्य, साहसपूर्ण ढंग—ये सब सहायक सिद्ध होंगे। परन्तु आवेग का ज्यों ही यह उठे परित्याग करो, यह परित्याग दृढ़ता और आग्रह के साथ लगातार करो, शान्ति, प्रकाश और पवित्रता की निर्मल चेतना के लिये अभीप्सा करते हुए ऐसा करो। जब हम किसी वस्तु को चाहते हैं और उसे प्राप्त नहीं कर पाते तो उसका मनोवैज्ञानिक कारण यह होता है कि हम आधे मन से उसकी तलाश करते हैं; शेष आधा मन विपरीत वस्तु की लालसा करता रहता है।

आवेगाधीन होना संपूर्ण मानव जीवन की ही वास्तविक समस्या है, और अधिक तीव्र रूप में यौवनकाल की। हमारे अन्दर की विशेष प्रवृत्तियों के क्षणिक उभार मुख्य शक्ति के द्वारा हम पर अपना एकमात्र नियंत्रण स्थापित करना चाहते हैं। यही मनुष्य में पाशविक खिंचाव है। उन प्रवृत्तियों के प्रभाव के ही अधीन हो हम जल्दी में काम कर बैठते हैं और पीछे फ़ुर्सत के समय पछताते हैं। आचार की समस्या यह है कि उन प्रवृत्तियों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाय कि वे विद्रोहपूर्वक उपद्रव करने के बजाय आत्म-पथप्रदर्शन के अधीन सामंजस्य के साथ क्रिया करने लगें। जब इसमें सफलता पूरी तरह से प्राप्त हो जाती है तो मनुष्य, पशु को पीछे छोड़कर, निश्चयात्मक तौर पर दिव्य हो जाता है अर्थात् स्थिर, शान्त, अखण्ड और कर्मकुशल बन जाता है। उपरिवर्णित योगप्रणाली ठीक वह विधि है जिससे कि इस प्रकार का महान् परिणाम प्राप्त किया जाता है।

यहां हम ज़रा श्रीअरविन्द के अपने शब्दों में ही उन के योग के कुछ पहलुओं का मनन कर लें:—

'योग की प्रक्रिया यह है कि मानव आत्मा को चेतना की उस अहम्मन्य अवस्था से जो वस्तुओं की बाह्य प्रतीतियों और उनके आकर्षणों में ग्रस्त रहती है, पराङ्मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके उस उच्चतर अवस्था की ओर अभिमुख कर दे जिसमें कि परात्पर और विराट् ईश्वर अपने आपको व्यक्तिमय सांचे में उँडेल सकें और उसे रूपान्तरित कर सकें।'

('Arya' के एक लेख से)

'मन में समझने और संकल्प करने का दबाव तथा हृदय में भगवान् के प्रति भावना भरी उमंग ये दोनों योग के सबसे पहले क्रियाजनक हैं।' (योग के आधार पृष्ठ १६)

'असली इलाज शान्ति है। कठिन परिश्रम में लगकर मन को दूसरी ओर फेरे रखने से केवल अस्थायी आराम ही मिलेगा।' (पृष्ठ २५)

'जितना ही अधिक तुम यह अनुभव कर सकोगे कि मिथ्यापन तुम्हारा अपना अंश नहीं है और यह तुम्हारे पास बाहर से आया है, उतना ही अधिक इसका त्याग करना तथा इसे अस्वीकार करना तुम्हारे लिये सुगम हो जायगा।' (पृष्ठ २५)

'अपनी कमज़ोरियों और कुप्रवृत्तियों को पहचानना और उनसे निवृत्त होना यही मुक्ति की ओर जाने का मार्ग है।' (पृष्ठ २८)

'बाह्य अवस्थाओं की अपेक्षा एक आध्यात्मिक वातावरण अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि कोई इसे प्राप्त कर सके और साथ ही अपने श्वास लेने के लिये वहां अपना निज़ी आध्यात्मिक वायुमंडल उत्पन्न कर सके और उसमें रह सके तो यह उन्नति के लिये ठीक अवस्था होगी।' (पृष्ठ ३३)

'अभीप्सा तीव्रता के साथ करो, पर बिना अधीर हुए।' (पृष्ठ ४२)

'श्रद्धा, भगवान् पर भरोसा, भागवत शक्ति के प्रति आत्म-समर्पण और आत्मदान ये आवश्यक और अपरिहार्य हैं। परन्तु ईश्वर पर भरोसा करने के बहाने आलस्य और दुर्बलता को नहीं आने देना चाहिये........इस श्रद्धा और भरोसे के साथ साथ अनथक अभीप्सा और भागवत सत्य के मार्ग में आने वाली रुकावटों का निरन्तर त्याग, ये भी चलते रहने चाहियें।' (पृष्ठ ५५)

'इस योग की इसके अतिरिक्त और कोई पद्धति नहीं कि साधक अपनी समस्त वृत्तियों को एकाग्र करे, ध्यान करे, अधिक उपयुक्त यह है कि यह ध्यान वह हृदय में करे और वहां माता (भगवान् का क्रियाशील स्वरूप) की उपस्थिति और शक्ति का आवाहन करे कि वह उसकी सत्ता को अपने हाथ में ले लें और अपनी शक्ति के प्रयोग द्वारा उसकी चेतना को रूपान्तरित कर दें।' (पृष्ठ ५६)

'प्रत्येक सच्ची अभीप्सा अपना परिणाम लाती है।' (पृष्ठ ६२)

'योग में तो आन्तर विजय के द्वारा ही बाह्य विजय हुआ करती है।' (पृष्ठ ६५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अब जिन अज्ञानमय क्रियाओं का तुम्हें भान हो रहा है उनका दृढ़ता के साथ त्याग करना होगा और अपने मन और प्राण को भागवत शक्ति के कार्य के लिये एक शान्त और शुद्ध क्षेत्र बना देना होगा।' (पृष्ठ ७०)

'योग साधन करने का अर्थ ही यह है कि साधना करने वाला समस्त आसक्तियों पर विजय पाने तथा केवल भगवान् की ओर ही अभिमुख होने का संकल्प रखता है।' (पृष्ठ ७५)

'इस योग का सारा सिद्धान्त ही यह है कि आते हुए भागवत प्रभाव के लिये साधक अपने आपको उद्घाटित करे।' (पृ० ७५)

'यह अभीप्सा करे कि दूसरी कोई भी शक्ति न तो उस पर प्रभाव डाल सके और न उसका नेतृत्व कर सके।' (पृ०८०)

'न उतावली हो न आलस्य, न राजसिक अति-उत्कंठा हो न तामसिक निरुत्साह—बल्कि एक धीर और लगातार पर शान्त आवाहन तथा क्रिया होनी चाहिये।' (पृ० ८६)

'हर प्रकार के अतिरंजित आत्महीनता के भाव से अपने आपको मुक्त करो और पाप, कठिनाई अथवा विफलता के ख़याल से उदास हो जाने की अपनी आदत को छोड़ दो। इन विचारों से वस्तुतः कोई लाभ नहीं होता, बल्कि ये भयानक विघ्न हैं और प्रगति में बाधा डालते हैं। ये बातें धार्मिक मनोवृत्ति की हैं, यौगिक मनोवृत्ति से इनका कुछ सम्बन्ध नहीं है। योगी को चाहिये कि वह प्रकृति के इन समस्त दोषों को निम्न-प्रकृति की प्रवृत्तियां समझे जो सभी को समान रूप से सताती हैं और इनका, भागवत शक्ति में पूर्ण विश्वास रखते हुए, स्थिरता, दृढ़ता और निरन्तरता-पूर्वक त्याग करे—पर दुर्बलता या उदासी अथवा बेपरवाही के साथ नहीं और उत्तेजना या अधीरता अथवा उग्रता के साथ भी नहीं।' (पृ० १०४)

'आत्म-हत्या कर लेने से समस्या हल नहीं होती, यह बिलकुल बेमतलब है, वह सरासर भूल करता है जो यह सोचता है कि इससे उसको शान्ति मिलेगी। इससे तो वह केवल अपनी कठिनाइयों को मरणोत्तर स्थिति की अवस्था में, जो यहां से भी अधिक बुरी है, अपने साथ ले जायगा, और इन्हें फिर दूसरे जीवन में पृथ्वी पर साथ ले आवेगा।' (पृ० १४१)

'इच्छा का त्याग तत्त्वतः तृष्णा या लालसा के भाव का त्याग है। इसको एक विजातीय वस्तु के तौर पर, जिसका कि अपने सत्य स्वरूप या आन्तरिक प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं, अपनी चेतना से ही बाहर निकाल फेंकना है।' (पृ० १४२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जब मनुष्य सत्य चेतना में रहता है तभी वह इच्छाओं को अपने से बाहर अनुभव करता है।' (पृ० १५३)

'हृत्पुरुष (हमारी सच्ची आन्तर सत्ता) कोई मांग या इच्छा नहीं करता, यह तो अभीप्सा करता है।' (पृ० १५४)

'इच्छा से सर्वथा छुटकारा पा लेने में देर लगती है। किन्तु यदि एक बार भी इसे अपनी प्रकृति में से निकाल बाहर कर सको और यह अनुभव कर सको कि एक शक्ति है जो बाहर से आती है और प्राण और शरीर को अपने पंजे में लेना चाहती है तो तुम्हें इस आक्रमणकारी के चंगुल से छुटकारा पाना सहज हो जायगा।' (पृ० १५७)

'यदि तुम योग करना चाहते हो तो तुमको सभी बातों में, चाहे वे छोटी हों या बड़ी, अधिकाधिक यौगिक भाव धारण करना चाहिये। हमारे मार्ग में यह यौगिक भाव विषयों का ज़बरदस्ती निग्रह करके नहीं, किन्तु इनके सम्बन्ध में अनासक्ति और समता रख कर धारण किया जाता है।' (पृ० १६२)

'इस बात की प्रतीति होना कि अमुक वस्तु रसनेन्द्रिय के लिये सुखकर है कोई बुरी बात नहीं है, पर उस वस्तु के लिये कामना या विह्वलता नहीं होनी चाहिये, उसके प्राप्त होने पर न तो हर्षोल्लास होना चाहिये और न उसकी अप्राप्ति से किसी प्रकार की अप्रसन्नता या खेद।' (पृ० १६२)

'आहार-तत्त्व को जीवन में उसके लिये उपयुक्त स्थान देकर उसे एक कोने में रख दो।' (पृ० १६४)

'इसका उचित मात्रा में (न अत्यधिक न अत्यल्प) सेवन करो; इसके लिये न तो लालसा हो न अरुचि, बल्कि तुम्हारा यह भाव रहे कि शरीर की रक्षा के लिये माता का दिया हुआ यह एक साधन है।' (पृ० १६५)

'कामावेग का प्राण और शरीर पर जो आक्रमण होता है इससे साधक को एकदम अलग रहना होगा—कारण, जब तक वह कामावेग को नहीं जीत लेता तब तक उसके शरीर में भागवत चेतना और भागवत आनन्द का संस्थापन नहीं हो सकता।' (पृ० १७३)

'मैंने यह पाया है कि काम शक्ति पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लेने को लक्ष्य बनाना साधना के लिये अत्यन्त आवश्यक है।' (पृ०१८५)

'यह ठीक है कि काम का बाह्य क्रिया में तो निग्रह किया जाय पर दूसरी तरह से उसमें लिप्त रहा जाय तो इससे शारीरिक उपद्रव और दिमाग़ी कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं...यदि इस पर प्रभुत्व स्थापन करने और इसका संयम करने के लिये सच्चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक प्रयत्न किया जाता है तो मैं नहीं समझता कि कामवासना के इस संयम से कभी हानि होती है।' (पृ० १८७)

'अब रहा इस प्रभुत्व के स्थापन करने की पद्धति के सम्बन्ध में सो यह केवल शारीरिक संयम के द्वारा ही नहीं हो सकता—अनासक्ति और परित्याग की सम्मिलित प्रक्रिया द्वारा यह किया जाता है।' (पृ० १८८)

'इसका (कामवासना का) पूर्ण त्याग करो परन्तु वह इससे संघर्ष करके नहीं, बल्कि इससे अपना सम्बन्ध विच्छेद करके, अपने आपको इससे अनासक्त करके और इसको अपनी स्वीकृति देने से इन्कार करके।' (पृ० १६०)

'कामुकता एक विकार अथवा अधोगति है जो प्रेम के आधिपत्य की स्थापना में रुकावट डालती है।' (पृ० १६७)

उपर्युक्त उद्धरण जो कुछ विस्तार से दिये गये हैं श्रीअरविन्द की योग-सम्बन्धी शिक्षाओं का रसास्वादन कराने के लिये पर्याप्त होंगे। परन्तु लेख को समाप्त करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सच्ची शिक्षापद्धति के आधार के संबंध में हम उनके विचार का निर्देश कर दें क्योंकि न केवल योग के विद्यार्थियों के लिए अपितु प्रत्येक विद्यार्थी के लिये उसका अत्यन्त महत्त्व है। अपनी छोटी सी कृति "The Brain of India (भारत का मस्तिष्क)" में वे कहते हैं कि आजकल न केवल भारतवर्ष में अपितु सर्वत्र ही आधुनिक शिक्षा का प्रधान लक्ष्य सूचनायें दे देना या ज्ञातव्य समझी जाने वाली बातें बता देना है। "परन्तु" वे विवेचन करते हैं कि "इन सूचनाओं का मिलना या ज्ञातव्य बातों का पता होना बुद्धि की, ज्ञान की नींव का काम नहीं दे सकता। यह केवल उस सामग्री का एक अंश बन सकता है जिससे कि ज्ञाता ज्ञान का निष्पादन करता है।" "उन (स्मृति, कल्पना तथा अन्य मानसिक शक्तियों) के द्वारा जिस भवन का निर्माण किया जाना है उसकी नींव तो केवल बल और शक्ति के कोष का संचय करने से पड़ सकती है।" पर यह शक्ति कहाँ से आयेगी? इसका उत्तर जो वे देते हैं वह है "प्राचीन आर्य जानते थे कि मनुष्य विश्व से पृथक् नहीं है परन्तु विश्व का केवल एक सजातीय अंश है।" इस समस्त विश्व में अनन्त शक्ति व्याप्त है और अतएव शिक्षण का वास्तविक लक्ष्य यह होना चाहिये कि वह प्रत्येक मानव व्यक्ति में एक उपयुक्त आधार, पात्र या उपकरण तैयार कर उसकी विघ्न-बाधाओं को हटा दे जिससे वह विश्वव्यापी शक्ति में से पोषण प्राप्त कर सके।

क्रियात्मक तौर पर ब्रह्मचर्य उन मुख्य प्रक्रियाओं में से एक था जिन से कि यह विश्वव्यापी शक्ति प्राप्त की जाती थी। श्रीअरविन्द ब्रह्मचर्य पर पूरा पूरा बल देते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसे शिक्षासंबन्धी वह मुख्य रहस्य मानते हैं जो कि प्राचीन आर्यों ने प्राप्त किया था। योरोपियन जड़वाद (या भौतिकवाद) आधार और स्रोत में घपला कर देता है। परन्तु श्रीअरविन्द स्पष्ट कहते हैं "जीवन और शक्ति का स्रोत भौतिक नहीं, आत्मिक है। किन्तु वह आधार या नींव जिस पर कि जीवन और शक्ति स्थित हैं और काम करते हैं भौतिक है।" "भौतिक को आत्मिक तक उठा ले जाना ब्रह्मचर्य है।" "सब वासनाएं, कामवासना या इच्छा आदि, शक्ति को स्थूल रूप में या उदात्तीकृत सूक्ष्म रूप में बाहर निकाल कर नाश कर देती हैं।" "कार्य में अनैतिकता इसे स्थूल रूप में बाहर फेंकती है और विचार में अनैतिकता सूक्ष्म रूप में।"

"दूसरी ओर सब प्रकार का आत्म-संयम रेतस् की शक्ति को संरक्षित रखता है और संरक्षण सदा साथ में वृद्धि को भी लाने वाला होता है।" "इस से यह परिणाम निकलता है कि हम ब्रह्मचर्य के द्वारा 'तपस्' 'तेजस्' 'विद्युत्' और 'ओजस्' के भण्डार को जितना अधिक बढ़ा सकें उतना ही हम अपने आपको संपूर्ण शक्ति से भरपूर कर सकेंगे, शरीर, हृदय, मन और आत्मा के कार्यों को करने के लिये शक्ति से भरपूर हो सकेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध का अन्त

(ले०—स्वामी शुद्धानन्द जी भारती)

आज़कल का सबसे प्रधान विषय है युद्ध। सज्जन हो या दुर्जन, कोई भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं है। हमारे भोजन, पानी और यहां तक कि सांस लेने की हवा तक पर इसका असर पड़ा है। पूरब और पच्छिम, उत्तर और दक्खिन, नीचे और ऊपर, पृथ्वी और समुद्र सर्वत्र नर-रक्त की नदी बह रही है। इतना बहुमूल्य मानव शरीर, जो प्रकृति के युग-युगान्तर के क्रमविवर्तन का फल है, आज सामूहिक रूप में विध्वंस किया जा रहा है। वर्षों की मेहनत मिनटों में तहस-नहस हो रही है। प्रकांड-प्रकांड जहाज़, विशालकाय टैंक, बड़े-बड़े हवाई जहाज़ बनाये जा रहे हैं और टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं। जिस सोने और चांदी को वर्षों व्यवसाय-वाणिज्य, उद्योग-धंधा करके मनुष्य ने इकट्ठा किया है वह चिता के धूएँ की तरह न मालूम कहां गायब हो रहा है। आज मनुष्य सर्वत्र त्राहि त्राहि पुकार रहा है, नारकीय धूएँ के घोर अंधकार में वह शुद्ध वायु का सांस लेने के लिये छटपटा रहा है।

आज मानो सदाचार, धर्म, न्याय और उनकी ज्योतिर्मयी शक्तियां मानव-मन के घेरे से एकदम विलुप्त होगयी हैं। जापान की **तृष्णात्मक** महत्त्वाकांक्षा प्राचीन चीन को बेतरह सता रही है। रक्त पिपासु नाज़ी-दल अपनी कठोर सत्यानाशी चक्की के नीचे निरपराध देशों को पीस रहा है। दूसरी तरफ़ से इन पर भी प्रहार किये जा रहे हैं। हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस युद्ध के कारण हमारा धर्मप्राण भारत भी आज किस किस प्रकार दुःख पा रहा है।

आज मनुष्य इस तरह हृदयहीन पागल क्यों हो रहा है, जंगली पशुओं की तरह खून के लिये क्यों लालायित हो रहा है? इस प्रकार शक्ति, द्रव्य और बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ नष्ट करने का क्या कारण है? क्या इस रक्त-स्नान को बंद करने का कोई उपाय नहीं है? आइये, इन बुराइयों की जड़ का पता लगावें और उस पर आघात करें।

(२)

मनुष्य, देवता और पशु के ठीक बीच का प्राणी है। वह एक पशु है जो अपनी पशुता से ऊपर उठ रहा है, वह एक देवता है जो भविष्य में अपने देवत्व को प्राप्त करने जा रहा है। उसके अन्दर दो प्रकार की शक्तियां वर्तमान हैं अच्छी और बुरी जिन्हें सुर और असुर, देव और दानव या ईश्वर और शैतान कोई भी नाम दिया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य-जीवन इन्हीं दो शक्तियों का सनातन युद्ध है और यह युद्ध अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। मनुष्य के अन्दर जो 'देव' है वह मूलतः भगवान् है, शुद्ध, आनंदमय, शान्तिमय है। वह सर्वदा मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाता है। किन्तु मनुष्य के अन्दर जो शैतान या असुर है वह उसे अहंकार और महत्त्वाकांक्षा के निम्न स्तर की ओर खींचा करता है। जीवन मानो इन्हीं दोनों शक्तियों की परस्पर खींचातानी है। बुरी शक्तियां हमारी सत्ता के प्राणमय और मनोमय भाग में उत्पन्न होती हैं। सब प्रकार की बुरी कामनाएं, वासनाएं, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, दुश्चिन्ताएं इत्यादि प्राणिक अहंकार और मानसिक अज्ञान से उत्पन्न होती हैं। जब तक मनुष्य अपनी सत्ता के इन निम्नतर भागों का दास बना हुआ है तब तक वह न तो स्वयं शान्ति पा सकता है और न अपने आसपास ही शान्ति को रहने दे सकता है। प्रकृति ने अपना सारा आश्चर्यमय भंडार मनुष्य को इसलिये दिया है कि वह अपने सामूहिक जीवन को समृद्धिशाली बनावे। उसने उसे देश और काल को जीतने के लिये बिजली की शक्तियां दी हैं। परन्तु मनुष्य ने प्रकृति की शक्तियों का उपयोग किया है अपने स्वार्थ की वृद्धि के लिये, महत्त्वाकांक्षापूर्ण प्रतियोगिता और सत्यानाशी युद्ध चलाने के लिये। उसके अन्दर विराजमान आत्मा ने उसे तीक्ष्ण बुद्धि दी है जिसमें वह प्रकृति की शक्तियों को महान् कार्यों में व्यवहृत करे। उसने उसे मन और शरीर का ज्ञान दिया है; भौतिक तत्त्वों का विज्ञान—गणित, पदार्थविज्ञान, रसायनशास्त्र, यंत्रविज्ञान इत्यादि—सिखाया है; उसने उसे प्रकृति के उन खजानों का पता दिया है जो खानों में छिपे पड़े थे जैसे, कोयला, लोहा, तांबा, पैट्रोल, मैगनेट इत्यादि। परन्तु मनुष्य ने जीवनसम्बन्धी प्रश्नों को हल करने और अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये समय बचाने के लिये इन दोनों का कोई सदुपयोग न कर इनका दुरुपयोग ही किया है और अपने विचार और जीवन को असुर का कारखाना बना डाला है। वास्तव में टैंक और टारपेडो की उत्पत्ति जर्मनी या अमेरिका के कारखानों में नहीं होती। वर्तमान या भूतकाल में युद्ध के जितने भी संहारकारी अस्त्र-शस्त्र बने हैं वे सब मनुष्य के अन्दर विद्यमान मनोमय असुर की ही सृष्टि हैं और वे प्राणिक आकांक्षा को तृप्त करने के लिये ही तैयार किये गये हैं। युद्धके कारण न तो चर्चिल ही हैं न हिटलर। मनुष्य के अशुद्ध प्राणों की जो पागल आकांक्षा है वही इस भयानक खेल को खेल रही है। कोई भी प्रचारकार्य, युद्ध या संधि मनुष्य के इस अगणित भयावह दृश्य उत्पन्न करनेवाले युद्धोन्माद को दूर नहीं कर सकती। अगर आसुरिक शक्तियों के इस विनाशकारी युद्ध के फलस्वरूप सभी वैज्ञानिक और विमान-चालक पृथ्वी से विलुप्त भी हो जायँ तो भी युद्ध का अन्त न होगा; यह फिर से धीरे-धीरे मनुष्य के प्राणिक अहंकार और मानसिक बर्बरता के अन्दर से उत्पन्न होगा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक महत्त्वाकांक्षी सत्ता के अन्दर एक बूँद भी रक्त बाकी रहेगा तब तक वह ऐसे ही दुष्कर्म किया करेगी। यह समझना एक निस्सार स्वप्न है कि किसी राजनीतिक कौशल या धार्मिक प्रचार के द्वारा संसार में कभी शान्ति स्थापित होगी। हिटलर और टोजो, स्टालिन और चर्चिल या रूजवेल्ट तो केवल नाम और रूप हैं; ये न तो पहले थे और न बाद में ही रहेंगे। जो कुछ भी आज युद्ध का साज-सरंजाम है वह सब द्रुतगामी काल के चक्राकार प्रवाह में कल ही विलुप्त हो जायगा, महत्त्वाकांक्षा की आतिशबाज़ी की राख भर बाकी रह जायगी। इस जगत् में कुछ भी स्थायी नहीं है, भाग्य की निम्नगामी धारा में सब कुछ बह जाता है। जिस आतंक की आज सृष्टि हुई है, आखिर उसका अन्त होगा ही। परन्तु मनुष्य के अन्दर जो प्राणमय दानव है, उसके अन्दर जो मानसिक अज्ञान है, प्रेम और घृणा, अच्छे और बुरे का जो द्वन्द्व-भाव है, वह फिर उसके अन्दर महत्त्वाकांक्षा को जगायेगा, फिर उसे वही दुःखान्त नाटक खेलने के लिये प्रवृत्त करेगा।

(३)

अतएव इसकी दवा वहीं है जहां इसका कारण है। शान्ति वहीं है जहां युद्ध उत्पन्न होता है। सब कुछ अन्दर से ही आता है। मनुष्य के अन्दर जो कुछ भला या बुरा है उसके लिये सबसे पहले उसमें विचार उठता है, तब शब्द और उसके बाद क्रिया होती है। जब मनुष्य का अन्तःकरण अशुद्ध होता है और उसके प्राण अहंकारमयी आकांक्षा से भरे हुए होते हैं तब उसके विचार, शब्द और कर्म उस सत्यानाशी आकांक्षा से दूषित हो जाते हैं। मनुष्य के अन्दर का यही वह शैतान या अहंमान है जो उसे एक बुराई से दूसरी बुराई की ओर, एक युद्ध से दूसरे युद्ध की ओर, एक स्वार्थ से दूसरे स्वार्थ की ओर ले जाया करता है। आह! कितने ही निर्दोष राष्ट्र प्राणमय मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा रूपी चक्की के नीचे पीसे जा चुके हैं! यही प्राणमय दानव एक राष्ट्र के मन-प्राण के अन्दर प्रवेश कर उसके द्वारा दूसरे राष्ट्र पर अत्याचार कराता है। ऐसे कितने ही देश इस राक्षसी शक्ति के द्वारा पददलित और लांछित हुए हैं जिन्होंने कभी अपनी तलवार को दूसरे देश के रक्त से अपवित्र नहीं किया।

(४)

अतएव संसार में यदि कभी स्थायी शान्ति आये, अगर मनुष्य मनुष्य में परस्पर सद्भाव और सुसंगति स्थापित हो तो इसके लिये सबसे पहले उसके अन्तःकरण का सर्वाङ्ग परिवर्तन होना ज़रूरी है। इसे हम और भी स्पष्ट रूप में समझने की चेष्टा करें।

हमारी सत्ता के दो भाग हैं—जड़ और चेतन, प्रकृति और पुरुष। शरीर, प्राण और मन हमारे जड़ भाग के अन्तर्गत हैं और जीव या अन्तरात्मा हमारा चेतन भाग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दोनों के बीच में है उच्चतर बुद्धि, या विज्ञानतत्त्व या परा-बुद्धि, जो हमारी सत्ता के इन दोनों तत्त्वों को जोड़ती है। मनुष्य को इस मध्यवर्ती पराबुद्धि को पाने की चेष्टा करनी चाहिये और ऐसा जीवन यापन करने का प्रयास करना चाहिये जिसमें हमारा आत्मा पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो रहा हो, जिसमें हमारी आध्यात्मिक सत्ता जड़मय सत्ता के अन्दर तक ओतप्रोत हो रही हो। आत्मा सम्पूर्ण शान्ति, आनन्द, सत्य, चैतन्य है। जड़ तीनों गुणों और द्वन्द्व-विकारों का संमिश्रण है। जो मनुष्य केवल जड़मय चेतना में निवास करता है वह अवश्य ही चार्वाक या कम-से-कम नीत्शे का अतिमानव बन जाता है और वह अस्त्र-शस्त्र तथा युद्ध-सामग्री बनाने में ही अपना सारा जीवन नष्ट कर देता है। वह सदा ही अपने पड़ोसी को द्वेष और घृणा की दृष्टि से देखता है। उसकी स्वार्थ भरी भूख खर्च का कोई ख्याल न कर अपनी ही उन्नति के लिये नाना प्रकार के हथियारों का आविष्कार करती है और फिर वह एक घर से दूसरे घर में, एक शहर से दूसरे शहर में, एक देश से दूसरे देश में कूदता-फांदता चला जाता है। उसकी अहंकार-मयी वाणी दूसरे देशों को मूक बनाती है, उनकी मातृभाषा को, उनकी बहुमूल्य परंपरा को नष्ट करती है और अपने स्वार्थ भरे बेलगाम फ़र्मान जारी करती है। हम प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी मनुष्य के अन्दर एक ही प्रकार की दमन, अत्याचार और अहम्मन्यता की क्रिया देखते हैं। इस बुराई का प्रधान कारण यही है कि मन-प्राण-शरीरस्थ मनुष्य कभी अपने पड़ोसी को आमने-सामने नहीं देख सकता, 'मैं, अकेला मैं, अकेला मेरा' यही उसकी वक्र भृकुटी पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा होता है, वह कभी दूसरे आदमी की उन्नति को नहीं सह सकता। क्योंकि उसको यह ज्ञान ही नहीं है कि दूसरा या तीसरा आदमी भी वही एक आत्मा है जिसने एक ही तत्त्व से बने कई शरीरों को धारण किया है, अन्तर केवल नाम और रूप में ही है। ज्योंही मनुष्य एक बार यह अनुभव कर लेगा कि दूसरे मनुष्य में भी एक ही आत्मा मूर्त्तिमान् हो रहा है त्योंही उसके विचारों में सुसंगति आ जायेगी, उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जायगा। मनुष्य को अपने शरीर, प्राण और मन के परे उठना चाहिये और शुद्ध पराबुद्धि में निवास करना चाहिये और उसके बाद उस आत्मा को, विशुद्ध आत्मा को जो वह है, प्राप्त करना चाहिये। एक बार यदि आत्मा का स्पर्श मिल जाय तो फिर सभी मानसिक कष्टों का, प्राणिक विक्षोभों का अन्त हो जाता है। स्थायी शान्ति की प्राप्ति हो जाती है। फिर मनुष्य चिरकाल के लिये आनन्दमय हो जाता है। क्योंकि वह आत्मा अपने स्वभाव में सत्-चित्-आनन्द है। जब मनुष्य इस अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब वह सब को आत्मवत् देखता है ; उसके अन्दर बड़प्पन के अहंकार का या राजनीतिक उग्रता का लेश भी नहीं रह जाता। वह अपने अन्दर सारे जगत् को देखता है और सारे जगत् में अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप को देखता है। इसी विश्व-चेतना को लक्ष्य करके उपनिषद् में यह कहा गया है कि "जो सबके अन्दर अपने को देखता है और अपने अन्दर सबको देखता है वह भला किससे भय करे ?"

(५)

इस परम सत्य के सबसे बड़े प्रामाणिक ग्रन्थ हैं वेद। वेदों में ऋषियों द्वारा प्राप्त सत्य-वाणियों का संग्रह है। वे शाश्वत सत्य के ग्रन्थ हैं। संसार में ऐसी कोई पुस्तक नहीं है जो जीवन की इन दो शक्तियों के युद्ध का वर्णन वैसे ही स्पष्ट रूप में करती हो जैसे कि वेदों ने किया है। इन सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों का मुख्य विषय यही है कि अन्धकारमयी विरोधिनी शक्तियों के ऊपर, वल और वृत्र के ऊपर भागवती शक्तियों की विजय कैसे हो।

भगवान् सच्चिदानन्द हैं। वह शरीर, प्राण, मन तथा इससे ऊपर के ज्ञानमय और आनन्दमय लोकों में परिव्याप्त हैं। वह प्रबुद्ध विचारों के प्रेरक हैं। वह हमारी सत्ता में विद्यमान प्रज्वलित सज्ज्योति हैं। वह पुरुष हैं, शुद्धात्मा हैं। मनुष्य अपने अन्दर की इस सत्य-ज्योति को न जानने के कारण तथा अहंकारमयी प्रवृत्तियों से अंध हो जाने के कारण अपने प्राणों में निवास करता है, असुर के अधीन रहता है। उसके अतृप्त प्राणों की अंधेरी गुफाओं में से विरोधी शक्तियां बाहर निकल आती हैं और उसके जीवन को अस्तव्यस्त करदेती हैं। एक दिन वह जीवन का पर्यवेक्षण करता है; सत्य की एक किरण उसके अन्दर प्रवेश करती है। उसी क्षण विशुद्ध सत्ता के अधिष्ठाता इन्द्र-देवता सामने आते हैं; भागवती शक्ति अग्नि प्रकट होती है; बृहस्पति सृजनकारी मंत्र प्रदान करते हैं; अश्विन, इन्द्र अर्थात् बुद्धि के रथ को जोतते हैं; स्नायवीय शक्तियां अर्थात् मरुत रथ को खींचते हैं; वरुण, मित्र, अर्यमन और भागवती शक्तियों की एक विशाल सेना रथ का अनुगमन करती है। तब माता अदिति हंसती हुई आती हैं; वह देवताओं की महाजननी हैं। वह भागवत सेना को आशीर्वाद करती हैं। तब इन्द्र का विजयी रथ रवाना होता है। इन्द्र के नेतृत्व में भगवान् के, प्रकाश के पुत्र अंधकार की शक्तियों को परास्त करते हैं, सारे जगत् में शान्ति का जयघोष करते हैं और अमृतत्व का रसास्वादन करते हैं। यही वेदों का प्रधान सत्य है और यही वह सत्य है जिसकी हमें आज आवश्यकता है। आज पृथ्वी पर असुरों ने मनुष्यों को जिस अकथनीय विपत्ति में डाल रखा है उसे दूर करने का एक मात्र उपाय यही है कि आसुरिक शक्तियों के ऊपर भगवान् की विजय हो।

और यही उपाय है जिससे कि ऐसे युद्धों का सदा के लिये अन्त हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे को पाना

[सन्त महात्मा की दृष्टि सदा सत्यस्वरूप श्रीभगवान् पर आबद्ध रहती है और इस कारण वे जो कुछ कहते व लिखते हैं उस द्वारा सदा सत्य ही प्रकाशित होता है और वह साधारण जीवों के लिये मार्गदर्शन का काम करता है। इसी भाव से यह एक महात्मा का पत्र हम नीचे दे रहे हैं जिससे कि जिन्हें व्यक्तिगत रूप से यह पत्र लिखा गया है उनके अतिरिक्त अन्य प्रेमी पाठकों को भी इसका लाभ प्राप्त हो सके। पत्र पाने वाले भक्त भाई ने ही औरों के लाभ के लिये हमें यह पत्र प्रकाशनार्थ दिया है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। यह पत्र बंगला भाषा में काश्मीर से ता० ७ जून १९४० का लिखा हुआ है। —सं० अ०]

मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मुझे पाना, मेरे पास रहना और मेरी सेवा करना तुम लोगों को कितना प्रिय है। × × × (पत्र लिखने वाले महात्मा का अपना नाम) एक प्राणहीन जड़ पदार्थ नहीं है। वह प्रेममय की पूजा करता है, प्रेम को सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति समझता है। वह कभी प्रेम की अवहेलना नहीं कर सकता। विश्वास करो, उसका प्राण तुम लोगों के हाथों बिक चुका है। किसी के भी कल्याण के लिये, आनन्द के लिये जिस किसी भी समय वह अपना प्राण दे सकता है। तुम लोग जानते ही हो कि वह जगज्जीव को किस दृष्टि से देखता है, कितना प्यार करता है। मनुष्य उसकी दृष्टि में उसके प्रियतम का ही जीवन्त विग्रह है, जीव की सेवा ही उसकी दृष्टि में शिव की सेवा है। वह दूसरी कोई साधना नहीं जानता। उसने सोचा था, जीव की सेवा में ही वह अपना सारा जीवन बिता देगा। परन्तु शरीर ने उस कार्य में बाधा डाल दी। वह शरीर की उपेक्षा करके भी जीव की सेवा करता, परन्तु उसके गुरुदेव के आदेश तथा मित्रों के अनुरोध ने उसकी सेवा की भावना को कुछ पलट दिया है। फिर भी वह सबको सुखी करने की चेष्टा करता है; सबको सारे अन्तःकरण से आशीर्वाद करता है। उसने अपनी छात्रावस्था में ही भगवान् से कहा था, " 'येन वा भवति सुखजातम्' — जिसमें तुम्हें सुख हो वही तुम करना। मुझे बाध्य होकर स्वीकार करना पड़ा है कि तुम मंगलमय हो। जो कुछ शुभ है, जो कुछ आनन्दप्रद है—वह किये बिना तुम नहीं रह सकते ; इसलिये तुमसे अब मुझे कुछ भी प्रार्थना करनी नहीं है। मेरा जीवन तुम्हारे चरणों में उत्सर्ग हो चुका है।" तो अब उनकी इच्छा पूरी करने के सिवा दूसरा कोई काम करना मेरे लिये उचित नहीं। इसी कारण यह पद — 'पूर्णा भवत्वनुदिनं मयि ते शुभेच्छा'—मुझे बहुत अच्छा लगता है। जब तक मैं उनकी इच्छा नहीं जान पाता तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक सबका मत पूछता हूँ, सबसे परामर्श करता हूं। परन्तु जब उनकी इच्छा का अनुभव हो जाता है तब फ़िर मैं दूसरे किसी के मत के अनुसार नहीं चल पाता।

तद्ध्यानतोऽन्यत् न च चिंतयानि, तत्कर्मतो वा करवाणि नान्यत्—

'उनके ध्यान को छोड़कर अन्य कोई चिन्तन मेरे मन में आना उचित नहीं, उनके काम के सिवा अन्य कोई काम करना मुझे उचित नहीं'। इस अवस्था को प्राप्त करने में अभी देर होने पर भी उसके लिये चेष्टा करना मेरे लिये उचित है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह बहुत जल्द मुझे अपने मन के मुताबिक बना लेंगे। इससे तुम लोगों का भी अधिक कल्याण हो सकता है। परमात्मा सबसे अधिक प्रिय आत्मा हैं, सबके भीतर के आत्मा हैं—वह सर्वव्यापी हैं। जो परमात्मा को प्यार करता है वह सबको प्यार किये बिना रह नहीं सकता। अगर वह सबके भीतर अपने आत्मा को न देखे तो वह कुछ भी नहीं देख पाता। उसके लिये तो सबके भीतर उन्हीं का ध्यान, दर्शन और सेवा करना ही प्रधान साधना है।

जगत् है या नहीं, भगवान् हैं या नहीं—यह विचार या अनुभव सापेक्ष है। 'मैं हूं'—इसमें किसी को भी सन्देह नहीं होता, ऐसा कोई नहीं कहता कि मैं नहीं हूं। इसी 'मैं' को खोजते-खोजते एक दिन उनकी कृपा से मैंने वास्तविक 'मैं' का थोड़ासा परिचय पाया था। सब उपाधियों से परे उस पक्के 'मैं' का, उस सर्वव्यापी 'मैं' का कुछ अनुभव मुझे मिला था। उस परम 'मैं' ने, उस चरम आत्मा ने, उस परमात्मा ने उसी दिन से मुझे पागल बना दिया है। अपने भीतर और बाहर सर्वत्र मानो केवल उन्हीं को ढूंढता फिरता हूँ। वह मेरे परम प्रिय हैं इसलिये उन्हें प्यार किये बिना मैं नहीं रह सकता। जिसके भीतर मैं जितने अंश में उन्हें पाता हूँ उतने ही अंश में मैं उसे प्यार भी करता हूँ। सच्चे प्रेम का रहस्य उसी दिन उन्होंने मानो मुझे समझा दिया था। मनुष्य अपने आत्मीय स्वजनों को प्यार करता है, परन्तु यह विचार कर नहीं देखता कि उसका आत्मीय है कौन? आत्मीय का अर्थ है आत्मा-सम्बन्धी। जिसके भीतर मैं अपने आत्मा को जितना अनुभव करता हूँ उतना ही वह मेरा आत्मीय है। हम लोग आत्मा के सिवा अन्य किसी को नहीं प्यार करते। इसी कारण आत्मा को परम प्रेमास्पद कहा जाता है। स्थूल या सूक्ष्म में प्रियजन को समीप पाकर हमें आनन्द होता है। हम लोग भूल से ऐसा समझते हैं कि उसी व्यक्तिविशेष ने हमें आनन्द दिया है। सीता राम के पास जा रही हैं, राम के आनन्द की सीमा नहीं। समीप जाकर ज्योंही वह राम के गले में हाथ डालती हैं त्योंही राम समाधि-मग्न हो जाते हैं। सीता के चले जाने पर भी रामचन्द्र की समाधि नहीं टूटती। कुछ देर बाद सीता फलमूल ले आती हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्र का ध्यान भंग करती हैं। रामचन्द्र यह सुनकर अवाक् हो जाते हैं कि सीता चली गयी थीं। फिर सीता से वे कहते हैं—"सीता! मैं तुम्हें नहीं प्यार करता, मैं केवल अपने-आपको प्यार करता हूँ। यदि तुम आनन्द का कारण होती तो तुम्हारे चले जाने पर वह आनन्द भी नहीं रहता—"तत्सत्त्वे तत्सत्त्वता तदसत्त्वे तदसत्त्वता तदेव तस्य कारणम्"। अगर तुम्हारे पास रहने से आनन्द रहे, अगर तुम्हारे पास न रहने से आनन्द न रहे तभी ऐसा कह सकता हूँ कि तुम मेरे आनन्द का कारण हो। आग पास में रहनें से शरीर गरम होता है, वही आग जब दूसरी जगह चली जाती है तब शरीर गरम नहीं रहता, इसी कारण तो कहा जाता है कि आग गरम होने का कारण है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, मन उसी आनन्द का भोक्ता है। मेरा मन तुम्हारे पास, मुझसे दूर था, तुम जब पास में आयी तब मन भी तुम्हारे साथ ही मेरे पास आया, मन को आत्मा के सान्निध्य से आनन्द मिला। अत्यन्त निकट आने पर वह मन आत्मानन्द में इतना विभोर हो गया, आत्मा में इतना लीन हो गया कि जब तुम चली गयी तब उसे इसकी खबर भी न रही। अतएव मेरी आनन्दानुभूति का कारण है मन का आत्म-सान्निध्य प्राप्त करना।"

इसीलिये वेदान्त विषयानन्द को आत्मानन्द का ही अध्यास मानता है। तुम लोग प्यार करते हो अपने आत्मा को और भूल से समझते यह हो कि तुम लोग प्यार करते हो मुझे—मेरे इस शरीर और मन को। तुम लोगों की इस भूल को दूर कर देना मेरा कर्तव्य है। तुम लोग अपने आत्मा को प्यार करते हो, आत्मा को खोजते हो, आत्मा को सुखी करने की चेष्टा करते हो; परन्तु यह जानते नहीं कि आत्मा कौन है, कहाँ है, वह कैसे सुखी होता है। सम्भवतः तुम लोग मेरे अन्दर अपने आत्मा को, तुम लोग जिसे प्यार करते हो उसे, जो कुछ तुम लोगों का इष्ट, अभीप्सित आदर्श है उसको, बहुत कुछ पाते हो, इसी कारण समझते हो कि मुझे प्यार करते हो। तुम लोग जिसको वास्तव में प्यार करते हो उसीके पास तुम लोगों को ले जाने के लिये मैं व्यस्त हो रहा हूं, चेष्टा कर रहा हूँ। बीज फटकर पेड़ होना चाहता है, पूर्ण परिणत, फल-फूल से सुशोभित एक वृक्ष में परिणत होना ही बीज की सार्थकता है। उसी तरह तुम लोगों का भी पूर्ण परिणति प्राप्त करना ही तुम लोगों के जीवन की सार्थकता है। जिसके भीतर तुम लोग अपनी उस पूर्ण परिणत अवस्था (fulfilment) का जितना सा आदर्श देखते हो उतना ही तुम लोग उसकी ओर आकृष्ट होते हो, उतना ही उसे प्यार करते हो, उतना ही उसकी तरह बनने की चेष्टा करते हो। हम लोग आदर्श मनुष्य को प्यार कर, भक्ति कर आदर्श जीवन प्राप्त करते हैं, 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'। इसीलिये तुम लोग मुझे प्यार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हो, मेरे पास आने की चेष्टा करते हो, मेरे समान होने से सुखी होते हो। विश्वास करो कि मैं भी तुम लोगों को सुखी करने के लिए इच्छुक हूं। परन्तु इस एक शरीर को भला मैं कितने आदमियों को दे सकता हूं ? इस वृद्ध, जराजीर्ण शरीर को कितनी जगह ले जा सकता हूँ ? इस शरीर को भला तुम लोग कितने दिन तक अपने पास रख सकते हो ? शरीर के मोह को दूर करना भी भगवान् का एक उद्देश्य है और इसी कारण यह मेरा भी काम है। कभी कभी प्रियजनों को जो भगवान् हमसे दूर ले जाते हैं उसके अन्दर भी भगवान् का एक मंगलमय उद्देश्य मुझे दिखायी देता है। वह हमारे मन को भीतर की ओर ले जाना चाहते हैं, धीरे-धीरे आत्मा के पास पहुंचाकर हमारे जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं, हमको पूर्णानन्द में डुबाये रखना चाहते हैं। वह प्रेममय भला यह कैसे सह सकते हैं कि हम केवल स्थूल शरीर को ही लेकर भूले रहें, इतना धोखा खायें ? इस श्लोक को स्मरण करो—

संगमविरहविकल्पेन संगमः विरहोऽपि तस्य।
संगमे एकरूपता विरहे तन्मयं जगत्॥

हमारा प्रियजन जब हमारे पास होता है तब हमारा सारा प्राण उसके स्थूल शरीर की ओर लगा रहता है; जब वह हम से दूर चला जाता है तब हमारा मन उसके गुणों को स्मरण करता हुआ उसके सूक्ष्म भावों की ओर जाने की चेष्टा करता है। अगर हमारा मन उसके आत्मा तक चला जाय तब आत्मा के सर्वव्यापी होने के कारण वह जगत् के सभी पदार्थों में अपने प्रियजन का आस्वादन करता है, उस समय जगत् तन्मय (प्रियजनमय) हो जाता है, मन भी तन्मयता प्राप्त करता है। उसी समय वास्तविक प्रेम सार्थक होता है।

तुम लोग यह अच्छी तरह याद रखना कि किसी को भी केवल स्थूल में पाना चार आना मात्र पाना है, सूक्ष्म में पाना आठ आना है, कारण में पाना बारह आना है, केवल आत्मा में ही पाना सोलह आना पाना है। उस समय पाना अविराम पाना है, उस पाने की सीमा नहीं। उसी पाने में प्रियजन को भी पाया जाता है, आत्मा और परमात्मा को भी पाया जाता है। तुम लोग ऐसी चेष्टा करो जिसमें अपने प्रियजन को थोड़ा अधिक पा सको। उस समय तुम लोग देखोगे कि तुम लोगों का जो प्रिय है वही तुम लोगों का 'परम श्रेयः' बन गया है। तुम लोगों का पाना, तुम लोगों का प्रेम भगवत्प्राप्ति में, भगवत्-प्रेम में परिणत हो कर सार्थक हो गया है। तुम्हीं लोग इस बात के साक्षी हो कि दूर रह कर अधिक पाया जाता है, सुन्दर रूप में पाया जाता है। इस बात को थोड़ा सोच विचार कर देखो कि जिसे तुम लोग पाना चाहते हो उसे किस तरह पूर्ण रूप से पा सकते हो। अगर मैं पांच आदमियों का समष्टि होऊं तो मेरे भीतर के पांचों आदमियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पाये बिना क्या मुझे अच्छी तरह पाया जा सकता है ? मेरे भीतर साधारणतः है एक शरीर, एक प्राण, एक मन, एक बुद्धि, एक अहंकार, एक आत्मा। इसके साथ ही यह भी सदा याद रखना चाहिये कि पाने का मतलब है जानना और होना। जब तक किसी को अच्छी तरह जाना नहीं जाता, उसमें तन्मय नहीं हुआ जाता तब तक उसे अच्छी तरह पाया भी नहीं जा सकता। स्थूल शरीर को पाना बड़ा आसान है, क्या तुम लोग केवल उसी को पाना चाहते हो ? उसमें अगर प्राण न हो तब तो उसे मुंह में आग डाल कर विदा कर देना होगा। उसके बाद प्राणयुक्त शरीर को भी यदि पा लो तो उसे भी कितने दिन पकड़ कर रख सकते हो ? प्राण को पाना उतना सहज नहीं है। किसी के प्राण को पाने के लिये उसके प्राण को जानना होगा; उसका प्राण कितना उदार है, उसका प्राण सबको कितना प्यार करता है, सबके सुख के लिये कितनी चेष्टा करता है— यह सब अच्छी तरह जानना होगा; उसी की तरह सोचना, काम करना सीख कर अपने प्राण को उसके प्राण-जैसा बनाना होगा। जिसका प्राण जीव के दुःख के प्रति उदासीन हो वह उसके प्राण को हृदयंगम नहीं कर सकता जो जीव के दुःख से कातर हो उठता है। किसी आदर्श पुरुष के मन को पाने के लिये यह जानना होगा कि उनका मन कितना द्वन्द्वातीत, कामना-वासना-आसक्ति से रहित, निर्मम, निरहंकार, शुद्ध, शांत, 'सर्वभूत-हिते रतः' है, उनका ध्यान करके उनके मन के जैसा अपने मन को तैयार किये बिना उनके मन को ज़रा भी नहीं पाया जा सकता। उनकी बुद्धि को पाने के लिये यह अनुभव करना होगा कि उनकी बुद्धि कैसी संकल्प-विकल्प-रहित, निश्चयात्मिका है, किस प्रकार सच्चे सार पदार्थ का निश्चय कर वह उसमें कैसे तन्मय रहती है, अन्य भावों से रहित होती है, और फिर अपनी बुद्धि को वैसी ही बनाने की चेष्टा करनी होगी। उनके अहंकार को पाने के लिये यह जानना चाहिये कि उन्होंने किस प्रकार अपने व्यक्तिगत तामसिक अहंभाव का त्याग कर, अपने को भगवान् का अंश या प्रतिबिम्ब समझ कर, उसी भाव में आत्म निवेदन कर, उनका (भगवान् का) हो कर दास भाव से उन्हीं की सेवा में, उनके प्रिय कार्य को करने में अपने आप को नियुक्त कर रखा है और इस तत्त्व को ठीक ठीक समझ कर उन्हीं की भांति 'दासोऽहम्'-भाव प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। उनकी आत्मा को अगर पाना हो तो उसे तभी पा सकते हो जब तुम पूर्ण रूप से उन्हीं के साथ तन्मयता प्राप्त कर अपने आत्मा के नित्य, सर्वगत, शुद्ध, बुद्ध, अपाप-विद्ध, आनन्दरूपममृतं, शांतं, शिवमद्वैतम् तत्त्व का आस्वादन करोगे। याद रखो तभी उन्हें पूर्ण रूप से पाया जा सकता है।

जो लोग चिट्ठी में 'प्राणाधिक' 'मैं तुम्हारा हूँ' इत्यादि बातें पढ़ कर भुलावे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ जाते हैं, प्रतारित होते हैं, उनकी बात अलग है। बिना दिये पाया नहीं जा सकता। यह भगवान् का विधान है। अपनी समस्त कामना, वासना, आसक्ति, सुखस्पृहा, प्रतिष्ठा, मोह आदि का विसर्जन कर उन्हीं में तन्मयता लाभ किये बिना, 'तन्निष्ठ तत्परायण' हुए बिना किसी को भी नहीं पाया जा सकता। विचार करके देखो कि वृन्दावन की गोपियों ने कब और किस प्रकार से श्रीकृष्ण को पाया था। वे भगवान् को पाने का रास्ता जीव को दिखा गई हैं। तन्मनस्का, तदालापा, तद्विचेष्टा, तदात्मिका होने से जब देह, गेह की स्मृति तक चली गयी थी तभी उन्होंने अपने अभीप्सिततम प्राणाराम को पाया था। उनका वह पाना ऐसा पाना था कि उस पाने के वर्णन मात्र से शुकदेव मतवाले हो गये थे, चैतन्यदेव ध्यान में समाहित हो गये थे। याद रखना आत्मा तक पाये बिना कुछ भी पाना नहीं होता। अगर किसी को भी पाने की साध हो तो पाने के लिये साधना आरम्भ करो। अपने आपको जितना पाओगे उससे अधिक किसी को भी नहीं पा सकते। तुम लोग स्वयं अपने भीतर घुसने की चेष्टा करो, अपने प्रियजन को भी अपने भीतर घुसने में सहायता करो। अपने को जितना पाओगे, प्रियजन को भी ठीक उतना ही पा सकोगे, उससे अधिक ज़रा भी नहीं। जो अपने आपको जितना सा पाना सीखा है वह किसी भी साधु महात्मा के पास जा कर उन्हें उतना ही पा सकता है। अवश्य ही जिसने अपने आपको अधिक मात्रा में पाया है उसके सान्निध्य में जाने से अपने को प्राप्त करने में बहुत आसानी होती है। किसी 'जगदीश वसु' के पास जाकर विज्ञान पढ़ सकना आसान है। पर जब तक 'जगदीश वसु' के ज्ञान का कोई एक तत्त्व जानकर, उस तत्त्व को हृदयंगम कर अपना नहीं बना लिया जाता तब तक उनको उस विषय में ज़रा भी नहीं पाया जा सकता।

तो स्थूलतः समीप रहकर पाने में जिस तरह एक सुविधा है उसी तरह एक असुविधा भी है, एक महान् विपत्ति भी है। मनुष्य के अन्दर से अहंभाव की प्रतिष्ठा करने का मोह जल्दी नहीं जाता। वह अपने जानने के लिये जितना व्यस्त होता है उससे अधिक दूसरे को जानकर प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये व्यस्त होता है। थोड़ा सा पाकर ही स्वयं जो कुछ पाया है उसे दूसरों को जनाने के लिये व्यग्र हो उठता है। इसीलिये पूर्णरूप से पाने से पहले, अहंकार दूर होने से पहले अपने पाने की बात किसी से भी नहीं कहनी चाहिये। मंत्ररहस्यसिद्धि को मातृजारवत् छिपा कर रखना चाहिये। प्रकाश के नीचे जो अंधकार होता है, महापुरुषों के सन्तान और भक्त जो बहुत बार वंचित होते हैं, पीछे पड़ जाते हैं, इसका कारण भी यही दिखायी देता है। पास रहने की, सेवा करने की वासना बहुत बार इतनी प्रबल हो उठती है कि उस समय अन्य साधना की बात, उपदेश की बात याद ही नहीं रहती। समीप रहकर सावधान होने की अपेक्षा बहुत बार दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह कर सावधान होना आसान होता है। इसीलिये जो लोग सचमुच में अपना मंगल चाहते हैं वे कुछ दिन समीप रहकर, कुछ देख-सुन-समझ लेते हैं और फिर उसके बाद कुछ दिन दूर रहकर साधना के द्वारा उस विषय में सिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। जितना सा देखा है, उपदेश सुना है, उतनी सी तन्मयता प्राप्त करने की, उतना सा लाभ उठाने की चेष्टा करते हैं। उसके बाद फिर कुछ दिन और समीप रहकर कुछ जानने, पाने और होने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार करने के कारण पाना भी स्वाभाविक होता है, प्रतिष्ठा का मोह भी नहीं जगने पाता, दूसरा कोई भी धोखा नहीं खाता। मनुष्य में अपने सुख की इच्छा, अधिक खाने, जल्दी-जल्दी खाने की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि अपनी हज़म करने की शक्ति की ओर वह उस समय एक बार भी नहीं देखता, यहां तक कि उपदेशों को भी ठीक-ठीक नहीं समझ पाता। उस समय अन्तर्यामी भगवान् बड़ी चतुराई के साथ उसे ठीक रास्ते पर आने के लिये बाध्य करते हैं। भगवान् में प्रेम की अधिकता होने के कारण वह किसी पर ज़ोर करना पसन्द नहीं करते। हम लोग अपने-आप ठीक रास्ते पर चलने, उनको सुखी करने की चेष्टा नहीं करते। वह जितना देना चाहते हैं उसके करोड़ भागों में से एक भाग भी हम लेना नहीं जानते। वह चूँकि मां हैं, इसलिये कुपथ्य देकर सन्तान का अनिष्ट करना नहीं चाहते। तुम लोग चाहते हो, मैं भी कहता हूँ, ख़ूब पाओ, पूर्ण होओ, थोड़े से तृप्त मत होओ, पर उसे हज़म करो।

इस प्रकार कई विषयों में उपदेश और दृष्टान्त के द्वारा तुम लोगों को शिक्षा देने की यथेष्ट चेष्टा की गयी है। परन्तु जितनी शिक्षा की जरूरत थी क्या उतनी शिक्षा हुई है ? मुझे पाने की, मेरा संग प्राप्त करने की यदि इच्छा हो तो तुम लोग यह समझने की चेष्टा करो कि कौन-कौन से भाव मुझे प्रिय हैं। उनमें से दो-तीन को विशेष रूप से ग्रहण कर उनके अनुसार जीवन बनाने की चेष्टा करो। मैं कैसे चलता हूं, क्या पसन्द करता हूँ विशेषतः युवावस्था में मैं किस प्रकार चला करता था उसे थोड़ा और भी अधिक प्राण देकर अच्छी तरह समझने की चेष्टा करो। अपने संस्कार और अभिप्राय का त्याग कर देखना और समझना होगा, अन्यथा भूल होना ही स्वाभाविक है। ख़ूब शान्त होकर विचार करो और देखो कि तुम लोग मुझसे क्या चाहते हो। यदि कोई सांसारिक चीज़, किसी प्रकार की प्रतिष्ठा चाहो तो उसे मेरे पास नहीं पा सकते। यदि अन्य सभी अभिलाषाओं को छोड़कर अपना कल्याण चाहो, शांति चाहो, भगवान् को चाहो तब यथासम्भव सहायता पा सकते हो। तब खड़ा होना होगा अपनी इच्छा से अपने पैरों, क्योंकि मैं किसी को भी अपनी इच्छा के अधीन गुलाम बनाकर रखने के लिये बाध्य नहीं। मैं स्वाधीनता पसंद करता हूँ और इसी कारण सबको स्वाधीनता देना, स्वाधीन देखना भी पसंद करता हूँ। याद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना, मेरी स्वाधीनता उच्छृङ्खलता नहीं है। 'स्व' के, परमात्मा के, भगवत्-विधान के अधीन होने का नाम स्वाधीनता है—मेरे भगवान् सर्वव्यापी, सर्वभूतान्तरात्मा हैं—अतएव सबके भीतर उनका ध्यान करना, दर्शन करना, सेवा करना ही मेरी साधना है। जिस तरह इस शरीर के अन्दर से उनको प्रस्फुटित करके व्यक्त करने की चेष्टा मैं करता हूँ उसी तरह सब शरीरों के भीतर से उनको प्रस्फुटित कर व्यक्त किए बिना मेरा काम नहीं चल सकता। हम सब उसी एक के देश से आए हैं सब को एक देखने के लिए, एक करने के लिए। यह शरीर अब उतना काम नहीं कर सकता—तुम लोग मुझे थोड़ी सहायता करो। उठो, जागो, श्रेष्ठ को पाकर श्रेष्ठ बनो। तुम लोग वीर बनो—कापुरुषता, हतोत्साह हो जाना मैं सहन नहीं कर सकता। मेरे भीतर के इस तेजोमय भाव के लिये ही मेरे नरेनदा (तुम लोगों के स्वामी विवेकानन्द) मुझे इतना स्नेह करते थे। अमृत की संतानों को अमर बनाना होगा। स्वयं अमर हुए बिना किसी को भी अमर नहीं बनाया जा सकता। किसी की बात मैं नहीं भूलता, किसी को भी मैं दूर रखना नहीं चाहता, किसी को भी अग्राह्य बनाने, पर समझने का मैं अभ्यासी नहीं। सबको उन्नत करना होगा, शांति देनी होगी, एक करना होगा। किसी वैष्णव कवि ने कहा है—

"पैर पकड़ कर भी नाम उच्चारण कराओ, कोई वंचित न रह जाय।"

विश्वास रखो, मेरे लिये अदेय कुछ भी नहीं, लेना सीखते ही, हजम करना सीखते ही पा जाओगे। कितना मैं बकता हूं, कितना अनुरोध करता हूँ, उसके अन्दर मेरे प्राण की ओर दृष्टि उठाकर देखना। इधर कई वर्षों से तुम लोगों को निम्नलिखित कुछ बातें सिखाने की चेष्टा कर रहा हूँ, मैं इसमें कितना सफल हो सका हूँ यह तुम लोग ही विचार करके देखना—(१) घोर आसक्त व्यक्ति जिस तरह सब चीज़ों को यत्न के साथ रखता है, मन लगाकर सब काम करता है, उसी तरह हमें भी पूर्ण अनासक्त हो कर सब चीज़ों को यत्नपूर्वक रखना चाहिये, सब काम करना चाहिये; तुम लोग जानते हो कि मेरी पुस्तकें, सभी चीज़ें किस प्रकार सुरक्षित रहती हैं, परन्तु साथ ही शायद तुम लोगों को यह विश्वास करने का यथेष्ट कारण मिला होगा कि अगर वे सब आग में जल जायं तो भी मैं तनिक भी दुःखी नहीं हूँगा। (२) मनुष्य को इतना प्यार करना होगा जितना प्यार पाने की आशा वह कहीं भी न करता हो, फिर भी उस प्यार में बिंदु मात्र भी आसक्ति या निज सुखस्पृहा नहीं होनी चाहिये। उसके अन्दर सत्-दृष्टान्त सदा सुरक्षित रहना चाहिये। एक शब्द में अनासक्त अनुरागी होना चाहिये। (३) सब कार्यों को पूजा में परिणत करना चाहिये—फुलवारी के पेड़ों की सेवा और हारमोनियम की शिक्षा के द्वारा इसकी शिक्षा देने की चेष्टा की गई है। इसके अन्दर आसक्ति या मोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भाव क्या कभी खोजने पर भी तुम लोगों को मिला है ? कितनी बार मन-ही-मन तुम लोगों को दुःख हुआ है। (४) निर्मम निरहंकार होना चाहिये। मेरा कहलाने योग्य कुछ भी नहीं होगा, फिर भी "सर्वं त्वदीयमिति मे प्रियमेव सर्वम्"—सब उनका होने के कारण सबको प्राण खोलकर प्यार करना होगा, आदर करना होगा। (५) किसी कार्य में अपने स्वार्थ, सुखस्पृहा, प्रतिष्ठा का मोह नहीं रहना चाहिये—उद्देश्य होना चाहिये भगवान् की इच्छा को पूरा करना, जीव का कल्याण करना। अनासक्त, फलाकांक्षावर्जित हो कर यज्ञार्थ, भगवत्प्रीत्यर्थ सब कार्य करना चाहिये। (६) धनी और नारी जाति के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिये जिसमें अनादर का भी भाव न हो, आसक्ति भी न हो। आवाहन विसर्जनहीन और अनुराग आसक्तिहीन होना चाहिये। (७) प्रतिष्ठा को सदा त्याज्य समझना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकार और उद्धार

रचयिता—पं० दीनानाथ भार्गव 'दिनेश'

मानव ! विकार का भार लिये फिरता है।
अपनी करनी से आप स्वयं गिरता है॥

सोने सा सुन्दर तूने नर तन पाया।
तुझ पर विधि ने करुणा का नभ है छाया॥
उठकर 'दिनेश' ने जीवन पथ दर्शाया।
शशि बालाओं ने सौम्य सुधा बरसाया॥
उन सबको खोकर दैन न जाने क्यों तू,
घुटता घुलता चिन्ताओं में घिरता है।
मानव ! विकार का भार लिये फिरता है॥

तू निर्मल तूने पहिना दूषित बाना।
मन की मृदंग में भूल गया तू गाना॥
छोड़ा विराग का राग मधुर मस्ताना।
यौवन के मद ने बना दिया दीवाना॥
ममता की मृगतृष्णा की भूल भटक में,
ओ अस्थिर ! तेरे सुख में अस्थिरता है।
मानव ! विकार का भार लिये फिरता है॥

बहती अनन्त से रहती सुख दुख धारा।
यह मृत्युलोक है उसका एक किनारा॥
उस पार लोक आलोकित ध्येय हमारा।
नर तरते पुरुषोत्तम का लिये सहारा॥
तू परम पिता का पूत कपूत भले ही,
पर वह तेरा उद्धार लिये फिरता है।
मानव ! विकार का भार लिये फिरता है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता में अनासक्ति-योग

(ले०—श्री अनिलवरण राय)

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ गीता ६।४

जब मनुष्य इन्द्रियभोग्य विषयों में अथवा कर्म में आसक्त नहीं होता और सब प्रकार के संकल्पों का त्याग करता है तभी उसे योगारूढ़ कहते हैं।

जो मनुष्य योग के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया है वह किसी इन्द्रियभोग्य विषय में आसक्त नहीं होता और न किसी कर्म में ही आसक्त होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह विषय का ही त्याग कर देता है, कर्म का ही परित्याग करता है, बल्कि इसका अर्थ केवल यही है कि वह साधारण मनुष्यों की तरह इन सब बातों में आसक्त नहीं हो जाता और यहां पर बस गीता इतना ही कहना चाहती है। साधारण मनुष्य आसक्ति के वश में होता है और इसी कारण उसका चित्त चंचल और विक्षुब्ध रहता है—भोग्य वस्तु के सामने आने पर उसे पकड़ने के लिये वह चंचल हो उठता है, सर्वदा ही कोई-न-कोई कर्म करने के लिये वह बेचैन रहता है—इस प्रकार सदा चंचल और विक्षुब्ध रहने के कारण वह आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित नहीं हो पाता। परन्तु योगी सब प्रकार की आसक्ति को त्याग देता है, सब प्रकार के संकल्पों को छोड़ देता है, वह अपने भोग के लिये कोई चीज़ नहीं चाहता, अपने लिये कोई काम करने के लिये वह नहीं छटपटाता, इसी कारण वह प्रशान्त रहता है, वह सदा ही गम्भीर शान्ति में प्रतिष्ठित रहता है और उसीसे ज्ञान परिपक्व होता है और योग में दृढ़ता प्राप्त होती है।

यहां पर कर्म में आसक्ति का त्याग करने का मतलब यह निकलता है कि योगी वास्तव में कर्म का परित्याग नहीं करता। परन्तु शंकर ने यह अर्थ नहीं ग्रहण किया है। उनके मतानुसार कर्म का त्याग किये बिना कोई योगी नहीं हो सकता। इसी कारण उन्होंने यहां पर 'अनुषज्जते' शब्द का अर्थ 'आसक्ति' नहीं किया है। गीता के दूसरे सभी व्याख्याकारों ने 'न अनुषज्जते' का सहज और स्वाभाविक अर्थ 'आसक्त नहीं होता' ही ग्रहण किया है। परन्तु शंकर की कुशाग्र बुद्धि ने यह देखा कि यह अर्थ ग्रहण करने से अपना मत ही दुर्बल हो जायगा, इसलिये उन्होंने इसका एक अपना कपोलकल्पित कृत्रिम अर्थ कर डाला। वह अर्थ करते हैं कि, नानुषज्जते अनुषंगं कर्त्तव्यताबुद्धिं न करोति इत्यर्थः। अर्थात् कर्म में जिसकी कर्तव्यबुद्धि नहीं है, अतएव जो कर्म नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता। परन्तु वास्तव में आसक्ति का अर्थ कर्तव्यबुद्धि नहीं है, बल्कि आसक्ति का त्याग कर कर्तव्यबुद्धि से सब कर्म करना ही गीता के मतानुसार सच्चा कर्मयोग है। एक दूसरे स्थान में गीता कहती है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ ३।१६

इसके अतिरिक्त इसी श्लोक में केवल कर्म में अनुषंग का त्याग करने को नहीं कहा गया है बल्कि इन्द्रियभोग्य विषय में भी अनुषंग का त्याग करने को कहा गया है। इन्द्रिय-विषय में कर्तव्यताबुद्धि का त्याग करने की अद्भुत बात सुनाना निश्चय ही गीता का उद्देश्य नहीं है। अतएव यहां पर अनुषंग का अर्थ आसक्ति ही समझना होगा—बाह्य विषय या कर्म का त्याग नहीं; इन सब चीजों में आसक्ति का त्याग ही गीता की शिक्षा है।

शंकर ने आसक्ति के त्याग और कर्म के त्याग, तथा संसार के त्याग दोनों को एक कहा है; उनके मत में आसक्ति का त्याग करने का अर्थ ही है संसारत्यागी संन्यासी हो जाना। इस तरह शंकर ने जो गीता की व्याख्या की है उसी को गीता की वास्तविक व्याख्या मानकर आधुनिक शिक्षित व्यक्तियों-से बहुत से लोग गीता की शिक्षा के प्रति उदासीन हो गये हैं। उनका कहना है कि गीता के अन्दर कुछ अच्छी बातें होने पर भी वे सब विरोधपूर्ण हैं और मानव समाज के लिये कल्याणकारी नहीं हैं। अभी हाल में इसी तरह के एक विख्यात लेखक ने यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि "गीता ग्रन्थ का ईश्वरवाद प्रलोभक होने पर भी उसके भीतर बहुत से विरोधी तत्त्वों का प्रसंग विद्यमान है। वैराग्यवाद, अनासक्तिवाद और संन्यासवाद पूर्णतर और व्यापकतर जीवन के लिये सहायक नहीं हैं। भारत की अधोगति का मूल कारण यह संक्रामक वैराग्यवाद ही है। कामिनीकांचन का त्याग आदि इसीका एक अवश्यम्भावी क्षुद्र अंगमात्र है। तंत्र में नारी को तथा देवी को ही शक्तिस्थानीया कहा गया है। तान्त्रिक बौद्ध और हिन्दूवाद एक मुहूर्त्त में सारे एशिया को अजेय बनाता है। मायावाद और संन्यासवाद के साथ भोग या शक्तिवाद को नहीं युक्त किया जा सकता। विवेकानन्द ने मायावाद का प्रचार किया है—ठाकुर रामकृष्ण ने भी कामिनीकांचन का प्रश्न उपस्थित किया है; अथच कार्यतः शक्तिरूपिणी नग्ना शिवसंयुक्ता तांत्रिक महादेवी की ही उन्होंने आराधना की है। इस कारण अवश्यंभावी आत्मविरोध, अस्पष्ट प्रतीति और सत्य की अवगुण्ठित मूर्त्ति का ध्यान आ उपस्थित हुआ है। कुलार्णवतंत्र का 'भोगो योगायते सम्यक्' और 'मोक्षायते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार:' जिस अध्यात्मपुरी का द्वार उन्मुक्त करता है उससे बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक इस देश ने किनारा ही काटने की चेष्टा की है।"

लेखक ने यहाँ पर वैराग्य और अनासक्ति को शंकर का अनुसरण करते हुए कर्मत्याग-मूलक संन्यास के साथ एक कर दिया है और इसी कारण उन्हें गीता के अन्दर विरोध दिखाई पड़ा है—क्योंकि गीता ने वैराग्य और अनासक्ति के ऊपर जिस प्रकार ज़ोर दिया है कर्मके ऊपर भी उसी तरह ज़ोर दिया है—कर्मत्याग करने के प्रति आसक्ति का भी त्याग करने को कहा है—"मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।" इसमें कोई संदेह नहीं कि शंकर द्वारा प्रचारित संक्रामक संन्यासवाद भारत की अधोगति की जड़ में मौजूद है, परन्तु यह याद रखना चाहिये कि गीता ने वैसे संन्यासवाद का प्रचार नहीं किया है—गीता ने जिस वैराग्य, अनासक्ति, संन्यास के आदर्श का प्रचार किया है उसके साथ जीवन का या संसार के कर्म का, यहां तक कि युद्ध जैसे घोर कर्म का भी विरोध नहीं है—गीता का आदर्श भगवान् यों कहते हैं—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशी र्निर्ममो भूत्वा युद्धयस्व विगतज्वरः॥ ३।३०

यहां पर गीता सर्व कर्मों का संन्यास करने को कहती है और साथ ही उत्साह के साथ युद्ध करने को भी कहती है। यहां पर संन्यास का अर्थ कर्मत्याग नहीं है, उसका अर्थ है सब कर्मों को भगवान् में न्यस्त करना, भगवान् को अर्पण करना। मैं कर्त्ता नहीं हूँ, प्रकृति ही भगवान् के आदेशानुसार मेरे स्वभाव द्वारा सब कर्म करती है—यह उपलब्धि होने पर ही सब कर्म भगवान् को अर्पण करना संभव होता है और यही है गंभीर और पूर्ण मुक्ति। इसके लिये आवश्यकता है सब प्रकार के अहंकार, कामना-वासना और आसक्ति का त्याग करने की।

पश्चिमी शिक्षा पाये हुए लोग शंकर के साथ सहमत हुए हैं, क्योंकि उनके विचार में कामना, आसक्ति, अहंभाव के न होने पर कर्म हो ही नहीं सकता, यहां तक कि सारा जीवन ही शून्य हो जाता है; अतएव आसक्ति आदि का त्याग करना और संसार छोड़कर संन्यासी हो जाना एक ही बात है। किन्तु गीता ने बार-बार ठीक इसी मत का प्रतिवाद किया है।

पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव में पड़ कर हमारे देश के शिक्षित लोगों ने वासना और आसक्ति के वशवर्ती अहंभावापन्न जीवन को ही जीवन समझना सीखा है। यह भी एक जीवन है इसमें संदेह नहीं। परन्तु इसी में जीवन की पूर्णता नहीं है, यह मनुष्य को क्षुद्र तुच्छ सुखभोग के प्रति आकृष्ट कर रखता है, इस जीवन के साथ जरा, व्याधि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु, आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक सब प्रकार के दुःख इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि भारत के अध्यात्म शास्त्र में इस जीवन को मृत्यु ही कहा गया है, मृत्युसंसार-सागरात्। इस जीवन को एकदम छोड़ कर ब्रह्म में लीन हो जाना ही संन्यासियों की शिक्षा है। परन्तु आसक्ति का वर्जन कर इसी जीवन को रूपान्तरित करना, इसी क्षुद्र जड़ मानव शरीर के अन्दर सच्चिदानन्द के अनंत ज्ञान, शक्ति, प्रेम, आनन्द को प्रकट करना ही मानव जीवन की सच्ची पूर्णता है, मानव जन्म का वास्तविक लक्ष्य है। वेद, उपनिषद् और गीता में हम ऐसे ही पूर्ण अमृत दिव्य जीवन का संकेत पाते हैं। युग-युगांतर की अभिज्ञता और साधना के द्वारा मनुष्य पृथ्वी पर ऐसे ही दिव्य जीवन को प्राप्त करने के लिये प्रस्तुत हुआ है और इसी को कार्यतः सुसिद्ध करना वर्तमान युग में श्रीअरविन्द का महान् जीवन-व्रत है।

इन्द्रियभोग्य विषयों की आसक्ति को छोड़ना ही होगा। अमुक भोग्य विषय मुझे चाहिये ही, इसके बिना मेरा काम चल ही नहीं सकता—इस प्रकार के भाव को ही आसक्ति कहते हैं। यही दुःख का मूल है, क्योंकि संसार में हम कौन सी चीज पायेंगे या नहीं पायेंगे यह हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं करता। भगवान् की इच्छा के अनुसार ही संसार के सभी कार्य व्यवस्थित होते हैं। अतएव जो लोग किसी चीज के प्रति आसक्त न हो कर भगवान् की इच्छा के साथ अपनी इच्छा युक्त कर देते हैं, मिला देते हैं, भक्ति के साथ यह कहते हैं कि "हे भगवान्! मैं सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय की कोई भी परवाह नहीं करूंगा, तू अपने हाथ से जो कुछ मुझे देगा उसे ही माथे चढ़ाऊंगा।" वे ही वास्तव में संसार का रहस्य समझते हैं, वे सब वस्तुओं में, सब घटनाओं में एक समान आनन्द पाते हैं, वे सब वस्तुओं के स्पर्श में परम प्रेमास्पद के आलिंगन का सुख उपभोग करते हैं। किसी बाह्य वस्तु को सुख का आकर, सुख का कारण समझना अज्ञान है। वास्तव में सब प्रकार के आनन्द का मूल स्रोत सच्चिदानन्द आत्मा या भगवान् हमारे अन्तरतम प्रदेश में विराजमान हैं, हम अपनी मूल सत्ता में उनके साथ एक हैं—बाह्य वस्तुओं की आसक्ति का त्याग करने का अभ्यास करने से हमें अपने अन्दर विद्यमान इस अनन्त आनन्द के भंडार का पता मिलता है, उसके अन्दर प्रतिष्ठित होने से हमारा सारा जीवन आनंदमय बन जाता है। और इस प्रकार अन्तर में जिस आत्मा और भगवान् का हमें पता मिलता है, बाहर में विचित्र वस्तुओं और घटनाओं के अन्दर, सब जीवों के, सब मनुष्यों के अन्दर हम उसी एक ही सच्चिदानन्द को देखते हैं, स्पर्श करते हैं, उनके प्रेम का अनुभव करते हैं—इसकी अपेक्षा अधिक पूर्ण, व्यापक और कौन सा जीवन हो सकता है? जब तक हम वासना और आसक्ति के वश में रहते हैं तब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम अपने आपको तुच्छ, क्षुद्र सुखों के अन्दर ही सीमाबद्ध रखते हैं. वे सुख देखते-देखते खतम हो जाते हैं, उन सुखों को पाने में दुःख, उनके भोग में दुःख, आगे, पीछे और बीच में दुःख उनके साथ ओतप्रोत होता है, इसलिये अध्यात्म शास्त्र उन्हें दुःख के अन्दर ही शामिल करता है। आसक्ति का त्याग कर, तथा सब प्रकार की आसक्ति और वासना के मूल क्षुद्र अहंभाव का त्याग कर इस व्यापक दुःख का मूलोच्छेद किया जाता है। उस समय फिर इन्द्रिय-भोग्य विषयों का त्याग करने की कोई आवश्यकता नहीं होती, इन्द्रियां भी रूपान्तरित हो जाती हैं, उनमें नवीन शक्तियों का विकास होता है, इसी अवस्था को लक्ष्य करके ही तंत्रशास्त्र में कहा गया है—भोगो योगायते सम्यक्। गीता भी कहती है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ २।६४

केवल इन्द्रियभोग्य विषयों की आसक्ति को ही नहीं, वरन् कर्म की आसक्ति को भी छोड़ना होगा। कर्म की आसक्ति छोड़ने का वास्तविक अर्थ क्या है, इसकी धारणा करना आधुनिक मनुष्य के लिये कठिन है; क्योंकि आधुनिक मनुष्य पाश्चात्य भाव से प्रभावित हुआ है; और पाश्चात्य आदर्श है कर्मवाद, activism, dynamism। अनवरत अश्रान्त भाव से कर्म करो—बस यही पाश्चात्य शिक्षा है। आसक्ति के साथ, आग्रह के साथ कर्म करना ही पाश्चात्य मतानुसार प्रकृत जीवन है। हमारे देश के शिक्षित व्यक्तियों ने भी इसी आदर्श को ग्रहण किया है। और केवल इतना ही नहीं, उन में से बहुतेरों ने गीता के भीतर से भी यही अर्थ बाहर किया है। उनके मतानुसार गीताने पाश्चात्य कर्मवाद या activism की ही शिक्षा दी है। उनके मत में गीताने जो अनासक्ति की बात कही है वह है कर्मफल की आसक्ति का त्याग, Duty for the sake of duty। महात्मा गांधी ने अपने गीता-भाष्य में गीता की अनासक्ति की यही व्याख्या दी है और गीता के योग को 'अनासक्तियोग' के नाम से अभिहित किया है। उन्होंने लिखा है, "जो मनुष्य परिणाम को ध्यान में रखकर कार्य करता है वह बहुत बार कर्म और कर्तव्य से भ्रष्ट होता है। उसके भीतर अधीरता आती है, उसके कारण वह क्रोध के वशीभूत होता है और फिर जो नहीं करना चाहिये वही करता है। × × × फलासक्ति के ऐसे कटु परिणाम से गीताकार ने अनासक्ति अर्थात् कर्मफल के त्याग का सिद्धान्त बाहर कर अत्यन्त चित्ताकर्षक भाष्य में उसे जगत् के सामने उपस्थित किया है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि गीता ने कर्मफल के त्याग की शिक्षा दी है। गीता ने कहा है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। किन्तु साधारणतया लोग जो यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते हैं कि यही गीता का महावाक्य है, यह वास्तव में ठीक नहीं है, और गीता की अनासक्ति केवल कर्मफल के प्रति ही अनासक्ति नहीं है, बल्कि वह और भी गंभीर और व्यापक है। गीता ने जो यह कहा है कि 'कर्म में तुम्हारा अधिकार है', यह बात पाश्चात्यभावापन्न मन के लिये बहुत आदरणीय होने पर भी यही गीता की चरम वाणी नहीं है। यह तो केवल गीता के कर्मयोग की प्रथम अवस्था के लिये उपयोगी उपदेश है। क्रमशः साधक को इस अवस्था के परे उठना होगा, यह अनुभव करना होगा कि वास्तव में कर्म में उसका अधिकार नहीं है। 'मैं कर्म करता हूँ'—यह धारणा अज्ञान से उत्पन्न होती है। प्रकृति ही सत्त्वादि गुणों के द्वारा हमारे सभी कर्मों को करती है। जब इस सत्य की उपलब्धि होती है तब केवल कर्मफल से ही नहीं, बल्कि कर्म से भी आसक्ति चली जाती है। तभी साधक वास्तव में मुक्त, योगारूढ़ होता है। उस अवस्था में भी उसके भीतर प्रकृति का कर्म जारी रह सकता है और जारी रहता है, परन्तु वह कर्म किसी प्रकार की भी प्रतिक्रिया या बन्धन की सृष्टि नहीं करता, अतएव उस समय कर्म-त्याग की आवश्यकता या सार्थकता भी नहीं रहती। अपनी कोई आवश्यकता न होने पर भी मुक्त पुरुष जगत् के हित के लिये, लोकसंग्रह के लिये आवश्यक, कर्तव्य कर्म को सुचारु रूप से ही संपन्न किया करते हैं। अर्थात् मुक्त, स्वाधीन भाव से वे अपनी प्रकृति को उन कर्मों को करने की अनुमति दिया करते हैं। प्रकृति के द्वारा चालित होकर वे कर्म में लिप्त नहीं हो जाते। यही कर्म में अनासक्ति है।

परन्तु शंकर ने कर्म की आसक्ति का त्याग करने का अर्थ एकदम सब प्रकार के कर्मों का त्याग ही समझा है। उनके मत में सर्वकर्मत्यागी संन्यासी ही सच्चा योगारूढ़ है। आधुनिक मनुष्य शंकर की इस शिक्षा को नहीं ग्रहण कर पाते, कर्म उन्हें चाहिये ही, इसी कारण वे कहते हैं कि शंकर का अद्वैतवाद महान् होने पर भी उनका संन्यासवाद वर्जनीय है। वे देखते हैं कि एक को ग्रहण करने से दूसरे को भी स्वीकार करना पड़ता है, अन्यथा संगति नहीं रहती। महात्मा गांधी ने अपने गीता-भाष्य में इस समस्या का यह समाधान किया है कि सब कर्म त्याज्य नहीं हैं, बल्कि जो कर्म आसक्ति के बिना नहीं हो सकते वे ही सर्वथा त्याज्य हैं। उनके मत में युद्ध, हिंसा, रक्तपात आदि कार्य आसक्ति के बिना नहीं हो सकते, अतएव इन सब कर्मों का त्याग करने की ही शिक्षा गीता देती है। परन्तु गीता ने स्पष्टरूप से यह बात कही है कि अनासक्त होकर हत्या की जा सकती है। गीता ने भी अहिंसा की शिक्षा दी है—परन्तु वह भीतरी, बाहरी नहीं—अनासक्ति के साथ जो युद्ध किया जाता है, हत्या की जाती है वह वास्तव में हिंसा नहीं, अहिंसा ही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धि र्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१८।१७

गीता ने बाह्य युद्ध का भी इतने स्पष्ट रूप में उपदेश दिया है कि अहिंसावादी महात्मा गांधी भी उसे अस्वीकार नहीं कर सके हैं। तब उन्होंने कहा है कि वह तो उस समय की बात थी और उस समय की अवस्थानुसार कही गयी है। पर महात्मा जी की ४० वर्ष की व्यक्तिगत अभिज्ञता यह है कि अनासक्त और कर्मफलत्यागी होने के लिये युद्ध जैसे घोर प्रचंड कर्म का त्याग करना ही होगा। गीताकार से मतभेद दिखाते हुए उन्होंने कहा है—"कवि सब प्रकार के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जगत् के सामने रखते हैं। इसी कारण यह बात नहीं कही जा सकती कि उन्होंने स्वयं सब समय अपना महत्त्व संपूर्ण रूप से जाना हैं अथवा जानने के बाद उसे भाषा में पूर्णरूप से व्यक्त किया है। इसी में काव्य और कवि की महिमा है। × × × इसीलिये गीता के महाशब्द का अर्थ युग-युग में बदल रहा है और विस्तृत हो रहा है।"

परन्तु वास्तव में गीताकार ने कोई भूल नहीं की है। यह हिन्दूधर्म की प्राचीन शिक्षा है कि युद्ध मनुष्य का धर्म हो सकता है। वैदिक युग से ही युद्ध को क्षत्रियधर्म कहा गया है, युद्धे चाप्यपलायनम्, तथा युद्धव्रती क्षत्रिय को समाज में बहुत ही ऊँचा स्थान दिया गया है, यहां तक कि ब्राह्मण लोग भी अध्यात्म ज्ञान प्राप्त करने के लिये क्षत्रिय के शिष्य हुए हैं। गीता के गुरु और शिष्य दोनों ही क्षत्रिय थे, हिन्दूमतानुसार सभी अवतारों ने दुष्ट का दमन करने के लिये युद्ध किया है। सर्वमंगला सर्वार्थसाधिका होने पर भी जगन्माता ने स्वयं अस्त्र धारण कर असुरदलन किया है। गीता में श्रीकृष्ण को अर्जुन ने बार-बार मधुसूदन, अरिनिषूदन आदि विशेषणों से अभिहित किया है। वास्तव में महात्मा गांधी ने जिस रूप में अहिंसा के आदर्श का प्रचार किया है वह हिन्दूधर्म की शिक्षा नहीं है, वह है ईसाई धर्म की शिक्षा, विशेषकर रूसी मनीषी टालस्टाय की शिक्षा।

(अपूर्ण)

—'वर्त्तिका' से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनों ओर

प्रत्येक भौतिक वस्तु की तीन तरफ़ होती हैं अथवा यों कहना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु का त्रिविध विस्तार या प्रमाण (माप) होता है—लम्बाई में (की तरफ़), चौड़ाई में (की तरफ़), मोटाई में (की तरफ़)। संसार में ऐसी कोई भी भौतिक वस्तु नहीं हो सकती जो इस प्रकार तीन तरफ़ से बनी हुई न हो। काल्पनिक तौर पर यह कहा जा सकता है, और केवल काल्पनिक तौर पर यह ठीक भी है, कि बिन्दु वह वस्तु है जिसमें लम्बाई चौड़ाई मोटाई कुछ नहीं है, कि रेखा वह वस्तु है जिसमें केवल लम्बाई होती है चौड़ाई मोटाई बिल्कुल नहीं होती, और धरातल या पृष्ठ (सतह) वह वस्तु है जिसमें केवल लम्बाई चौड़ाई होती है मोटाई बिलकुल नहीं होती। पर भौतिक तौर पर कोई धरातल बिना मोटाई नहीं बन सकता, बारीक से बारीक खींची गई रेखा की भी कुछ चौड़ाई और कुछ न कुछ मोटाई होती ही है, बिन्दु भी जब भी वह भौतिक रूप में वस्तुतः बनाया जाएगा तो उसकी कुछ न कुछ लंबाई चौड़ाई मोटाई होगी ही। तात्पर्य यह कि ऐसी कोई वस्तु नहीं हो सकती जिसकी कि तीन तरफ़ न हों, जो तीन ओर से बढ़ी हुई न हो। हम लम्बाई के स्थान पर कभी ऊंचाई शब्द बोल सकते हैं, ऐसे चौड़ाई की जगह विस्तार या फैलाव आदि शब्द बोले जा सकते हैं, मोटाई को कभी कभी गहराई जैसे किसी शब्द द्वारा प्रकट किया जाना अधिक ठीक हो सकता है। परन्तु यह बात सर्वत्र कायम रहती है कि प्रत्येक वस्तु का तीन ओर से प्रमाण (माप) किया जा सकता है चाहे उन तीनों तरफ़ों या विस्तारों को हम किन्हीं भिन्न अवस्थाओं में कुछ भिन्न नाम से पुकारते हों।

तीन ओर

यह जो कहा जाता है कि दिशाएं छः होती हैं और अतएव प्रत्येक वस्तु की छः दिशाएं हो सकती हैं, वह भी इसीलिये है क्योंकि प्रत्येक वस्तु का त्रिविध विस्तार होता है और फिर ध्रुवीकरण होने से प्रत्येक विस्तार के दो ध्रुव, दो सिरे (छोर) होते हैं, जैसे ऊपर और नीचे, बायें और दायें (उत्तर और दक्षिण), आगे (पूर्व) और पीछे (पश्चिम)। पर प्रत्येक वस्तु के विस्तार (dimensions) तीन ही होते हैं, एक ऊपर नीचे की तरफ़ का, दूसरा आगे पीछे की तरफ़ का, तीसरा दायें बायें का (या इधर उधर का)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रा दूसरे रूप में कहें तो संसार की प्रत्येक वस्तु की गति तीन तरफ़ की ही हो सकती है, या तो वह ऊपर नीचे गति करेगी, चाहे वह ऊपर जावे या नीचे, या वह दायें बायें गति करेगी चाहे दायें जाय या बायें, या आगे पीछे को गति करेगी चाहे आगे जाय या पीछे।

आत्मा की त्रिविध गति

यह जो प्रत्येक वस्तु त्रिविध विस्तार वाली होती है और प्रत्येक वस्तु की जो त्रिविध ही गति हो सकती है इसका कुछ कारण है। उस कारण का निर्देश तो यथास्थान आ जायगा। पर इस वर्णन से आशा है पाठकों का मन आत्मा की गति को समझने के लिये भी तैयार हो गया होगा। आत्मा तो अभौतिक वस्तु है, उसको भौतिक तरीकों से समझ लेना सम्भव नहीं। तो भी हम भौतिक अवस्थाओं में रहने वाले लोग अपने भौतिक मन से उसकी तरफ़ अपनी पहुँच में भौतिक उदाहरणों से ही बहुत सहायता प्राप्त कर सकते हैं। जब हम किसी को महात्मा कहते हैं तो उसकी आत्मा के महान् होने का अर्थ बेशक यह नहीं होता कि वह भौतिक तौर पर लम्बी चौड़ी और मोटी है, तो भी यह जरूर होता है कि उसकी आत्मा महान् अर्थात् विशाल, विस्तीर्ण, व्यापक है। 'महात्मा' शब्द से कहाने लायक वही महानुभाव है जिसकी आत्मा में इस प्रकार की कुछ महत्ता है। एक मेरे मित्र ने 'सन्त कौन है' इस विषय पर मुझे कुछ लिख भेजने को कहा था, जब कि वे 'सन्त सुधा' नामक एक पत्रिका प्रारम्भ करने लगे थे। मैंने उन्हें तीन वाक्य लिख भेजे थे। उन्हें यहां उद्धृत कर देना सप्रयोजन होगा। 'सन्त' के स्थान पर 'महात्मा' शब्द का प्रयोग करते हुए वे तीन वाक्य निम्न हैं:—

"महात्मा वह है जो **ऊँचाई** में सत्यलोक की ओर बढ़ता है, उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रकाशमान अवस्थाओं में से गुजरता हुआ 'ऋतंभरा प्रज्ञाओं' को प्राप्त करता हुआ ऋतस्वरूप को पहुंचता है।

"महात्मा वह है जो **गहराई** में अन्दर अन्दर पैठता हुआ और खोजता हुआ अपने अन्तरात्मा को पा लेता है, और उसका मन, प्राण और शरीर, उसकी सब बाह्य और आन्तर क्रियायें, इसी अन्तरात्मा द्वारा संचालित होने लगती हैं।

"महात्मा वह है, जो **विस्तार** में अपने को फैलाता हुआ एक-एक प्राणी और एक-एक जीव में, भूतमात्र में अपने आपको पहिचानने और अनुभव करने लगता है और सब संसार के साथ अपनी एकता कर लेता है।"

मतलब यह है कि आत्मा भी तीन ओर गति या उन्नति करता है, ऊँचाई में, गहराई में, विस्तार में। इन तीनों ओर ही उन्नति करने से, बढ़ने से आत्मा महान् होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यदि कोई आत्मा इनमें केवल एक तरफ़—जैसे केवल ऊँचाई या गहराई में—बढ़ता है तो वह उन्नति ठीक प्रकार की नहीं होती। तब समझना चाहिये कि वहां कुछ गड़बड़ है। स्वस्थ सच्ची उन्नति तीनों तरफ़ ही होगी, ऐसे ही जैसे कि एक शिशु जब भौतिक रूप में बढ़ता है तो वह लंबाई चौड़ाई मोटाई तीनों प्रकार से ही बढ़ता है।

हम जानें या न जानें पर असल में हम सभी ऊपर ऊपर पहुंचना चाहते हैं, गहराई में अन्दर से अन्दर प्रविष्ट होना चाहते हैं, और विस्तार में परे से परे पहुंचना चाहते हैं। आत्मा क्या चाहता है, उसकी अभीप्सा क्या है यह यदि हम देख सकें तो हमें पता लगेगा कि हमारा आत्मा उड़ना चाहता है, ऊपर ऊपर अनन्त ऊँचाई तक पहुंचना चाहता है, उसके लिये वह कशमकश कर रहा है। आत्मा अन्दर की तरफ़, भीतर भीतर घुसकर आन्तरतम को पहुँचना चाहता है, वहां उसका कोई है जिसे बिना पाये उसे कल नहीं पड़ सकती, इसलिये वह भीतर से भीतर घुसना चाहता है। एवं विस्तार में फैलाव चाहता हुआ वह दूर से दूर अनन्त दूरी तक पहुंच जाना चाहता है, वहां बिना पहुंचे उसे विश्राम नहीं मिल सकता।

जब हम बच्चे थे तो यह पूछने पर कि परमात्मा कहां रहता है हमें लोग आकाश की ओर अँगुली करके बताते थे परमात्मा ऊपर है, हम पूछते थे कि क्या बादलों में है, हमें बताया जाता था कि वह बादलों से भी ऊपर है। पीछे ज्ञान की पुस्तकों में यह लिखा देखा और सुना भी, कि परमेश्वर भीतर है, हृदय के भीतर है। गीता में कहा है 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'। उपनिषदों में तो जगह जगह हृदय-गुहा का वर्णन आता है कि उस गंभीर गुहा में परमेश्वर छिपा हुआ है, 'गुहाहितं' 'गह्वरेष्ठम्', उसे अन्दर ढूंढो, गुहा के अन्दर प्रविष्ट होवो। कहते हैं कि स्वामी रामतीर्थ जब परमेश्वर के लिये व्याकुल थे तो किसी ने कह दिया कि 'उसे कहां ढूँढते फिरते हो वह तो तुम्हारे हृदय में है, तुम्हारे अन्दर ही है' तो रामतीर्थ छुरी उठा कर अपने हृदय को चीरने तैयार हो गये थे। अस्तु, इसी तरह यह भी ज्ञानियों से सदा सुनने को मिलता है कि परमात्मा सब जगह फैला हुआ है, भूत भूत में रमा हुआ है। असल में ये तीनों बातें ही सही हैं। सचमुच ही परमात्मा ऊपर है, अन्दर है, और सर्वत्र फैला है। और इसीलिये हमारा आत्मा उस अपने परम आत्मा को पाने के लिये इन तीनों तरफ़ गति करता है, इन तीनों तरफ़ बढ़ना चाहता है। हम सभी चाहे इस बात को अनुभव करें या न करें, पर यह सच है। सचमुच हमारा आत्मा तीनों तरफ़ बढ़ना चाहता है, फैलना चाहता है, बल्कि इन तीनों तरफ़ बढ़ने को तड़फाया सा रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यह सच है तो फिर हम ऊपर, बहुत बहुत ऊपर स्थित उस अपने परम आत्मा को एकदम पहुँच क्यों नहीं जाते ? अन्दर सुगंभीर गहराई में स्थित परम प्रभु को एकदम ढूँढ कर उससे एक क्यों नहीं हो जाते ? सब भूतों में विस्तृत अपने परम देव को हम सर्वत्र फैल कर आज ही प्राप्त क्यों नहीं कर लेते ?

वैदिक प्रार्थना

इसका कारण यह है कि तीनों तरफ़ ही रुकावटें हैं, तीनों तरफ़ हम बंधे हुए हैं, किन्हीं बन्धनों या पाशों से जकड़े हुवे हैं। ऐसे बंधे हैं कि न हम खुलकर ऊपर यथेच्छ उठ सकते या उड़ सकते हैं, न गहराई में तल तक पैठ सकते हैं, न अनन्त रूप से फैल सकते हैं। इसीलिये हमारी मानव आत्मायें—हम सब मानव जीव—वैदिक ऋचा में प्रार्थना कर रहे हैं—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्
अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तव
अनागसो अदितये स्याम ॥

ऋ० १-२४-१५। यजु० १२-१२। साम पू० ६-३-१०-४ ॥
अथ० ७-८३-३, अथ० १८-४-६९।
तैत्ति० सं० १, ५, ११, ३; ४, २, १, ३।

पदपाठ

उत् । उत्तमं । वरुण । पाशम् । अस्मद् ।
अव । अधमं । वि । मध्यमम् । श्रथाय ।
अथ । वयम् । आदित्य । व्रते । तव ।
अनागसः । अदितये । स्याम ।

शब्दार्थ

(वरुण) हे वरुण ! (अस्मद्) हम से, हमारे (उत्तमं पाशम्) ऊपर के पाश को, बंधन को (उत् [श्रथाय]) ऊपर को खोल दे। (अधमं [पाशम्]) नीचे के [बन्धन को] (अव श्रथाय) नीचे की तरफ़ खोल दे, ढीला कर दे। (मध्यमं [पाशम्]) बीच के बन्धन को (वि श्रथाय) विशेषतया खोल दे। (अथ) तब (वयं) हम, (आदित्य) हे आदित्य ! (ते व्रते) तेरे व्रत में रहते हुवे (अनागसः) निष्पाप, निर्दोष (अदितये) अदिति के लिये (स्याम) हो ज़ायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रार्थना क्या है, बद्ध मानव आत्माओं की तड़पन है कि वे बन्धनों से, तीनों बन्धनों से किसी तरह छुटकारा पाकर अदिति की निःसीमता, अनन्तता, अमित बंधन-मुक्तता में स्वतन्त्र हो विचर सकें।

पाठक देखेंगे कि यह वही अति प्रसिद्ध (चारों वेदों में पायी जाने वाली, अथर्ववेद में एक के भी बजाय दो बार गायी गयी) ऋचा है जिसके कि अन्तिम चरण को हम अपना आदर्श वाक्य करके अपना चुके हैं। पीछे के गाथा-काल में जब कि गाथा द्वारा सत्यों के वर्णन करने की प्रथा थी वेद के इस प्रसिद्ध मंत्र से या इन सूक्तों से संबद्ध भी एक गाथा कही गयी है। कहते हैं कि शुनःशेप नाम का एक ऋषि था जिसे कि उसके माता-पिता ने यज्ञ में बलि चढ़ाने के लिये राजा को बेच दिया था। जब उसे बलि चढ़ाने के लिये यज्ञस्तंभ से तीन जगह (ऊपर, मध्य और नीचे) बांध दिया गया तो उसने व्याकुल हो कर अग्नि, भग, सविता आदि देवों से रक्षा के लिये, बन्धन-मुक्ति के लिये प्रार्थना की, अन्त में वरुण देवता को पुकारा। अन्तिम क्षण उसकी प्रार्थना सुनी गई और वह बन्धनमुक्त हो गया। मूल वेद में तो स्पष्ट ही ऐसी किसी कहानी का निशान भी नहीं है। पर यह गाथा जिस सत्य को चित्रित करने के लिये रची गई है उसके अनुसार शुनःशेप और कुछ नहीं है वह मानवीय आत्मा के लिये एक मनुष्य का रूपक है। हम सभी बद्ध किन्तु मुमुक्षु मानव आत्मायें शुनःशेप हैं, सुख को उत्पन्न करना चाहने वाले हैं ('शुनःशेप' शब्द का शब्दार्थ यही प्रतीत होता है)। इस वेदमंत्र में तो एकवचन में नहीं, किन्तु बहुवचन में प्रार्थना है। इसलिये कथा के उस एक शुनःशेप की नहीं किन्तु बन्धन-मुक्त होना चाहने वाले सभी मानव जीवों की (शुनःशेपों की) यह नित्य प्रार्थना है। शुनःशेप का नित्य इतिहास आज भी घटित हो रहा है। पाप के त्रिविध बंधन से बंधी हुई समस्त मानवता की ही यह पुकार है, वरुण देव के प्रति मोक्ष के लिये उसकी आन्तरिक अभीप्सा है, क्योंकि अदिति के पुत्र (आदित्य) वरुण आदि देवों की दिव्य शक्तियां ही हैं जो उसे इन पाशों से छुड़ा सकती हैं। यह असल में मानवता की आत्मा की उस प्यास, तृष्णा का वर्णन है जो कि सीमा, परिमितता के बन्धनों को खोल अदिति (देवमाता, जगन्माता) की अनन्तता, निर्बाध असीमता में मुक्त होना चाहती है। वरुण वह दिव्य शक्ति है जो अपरिमित विस्तार का अधिपति है। अतः उससे अदिति की असीमता में मुक्त कर देने की प्रार्थना की गई है। उसे कहा गया है कि "हमारे ऊपर, मध्य और नीचे के पाशों को खोल दो जिससे कि, हे अदिति के पुत्र! हम तेरे नियम में, व्रत में रहते हुए अनागस् हो जायँ, अदिति के लिये अनागस् हो जायँ।" इस गाथा के चित्र को पूरा २ देखना चाहें

शुनःशेप की गाथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो हम समझ सकते हैं कि हम सभी को हमारे माता-पिता द्यावापृथिवी ने अन्धकार के राजा के हाथ नीचे के अदिव्य सुखों के धन के बदले बेच दिया है। और इस जगत्-चक्र रूपी यज्ञ में जीवन रूपी यज्ञस्तंभ के साथ मन, प्राण और अन्न (शरीर) की अनृतगति (पाप) रूप त्रिविध रज्जु से हम बांध दिये गये हैं। बहुत से लोग हर रोज़ बलि भी चढ़ रहे हैं। पर जो सच्चे सुख के लिये अभीप्सु हो 'बलि का बकरा' नहीं होना चाहते, जो दिव्य जीवन की प्राप्ति के लिये 'अदिति' के बनना चाहते हैं और आन्तरिक भाव से बन्धनमुक्तता की प्रार्थना करते हैं उन शुनःशेपों की प्रार्थना सुनी जाती है और वरुण आदि दिव्य शक्तियां उन्हें अदिति के लिये तीनों बन्धनों से मुक्त कर देती हैं, वे मुक्त हो अदितिमय दिव्य जीवन प्राप्त करते हैं।

तीन बन्धन

पर ये ऊपर, मध्य और नीचे के बन्धन क्या हैं? यह तो ऊपर मोटे तौर पर कह दिया गया है कि ये मन, प्राण और अन्न के बन्धन हैं या इन तीनों की अनृतगति रूप पाप के बन्धन हैं। पर इसे और स्पष्ट किये जाने की जरूरत है।

हम ऊपर सिर में, मध्य में हृदय में और नीचे मूलाधार (नाभि के भी नीचे) में बँधे हुए हैं। ऊपर का उत्तम बन्धन मन का है, बीच का मध्यम बन्धन (सूक्ष्म) प्राण का है और नीचे का अधम बन्धन (स्थूल) शरीर का है। आत्मा (मानव आत्मा) को परिमित, सीमित अतएव बद्ध करनेवाले ये मन प्राण शरीर ही हैं। मनुष्य का ज्ञान, उसकी **प्रकाश** की तरफ़, सत्त्व की तरफ़ ऊर्ध्वगति मन द्वारा बँधी हुई है। मन का स्थान सिर में है। अतएव यह उत्तम बन्धन कहाता है। इसे सत्त्व का बन्धन, सात्त्विक बन्धन भी कह सकते हैं। सत्त्व ने या मन ने मानसिक शरीर द्वारा या आहंकारिक कारण-शरीर द्वारा आत्मा को बांध रखा है। मध्य का बन्धन प्राण का है, इसने भावों, भावावेशों, उद्वेगों, आवेगों, रागद्वेषों द्वारा हृदय में हमें बांध रखा है। अशान्तिमय प्राणों के इस बन्धन को राजसिक बन्धन या सूक्ष्म शरीर का बन्धन भी कहा जा सकता है। अधम बन्धन बिलकुल नीचे भौतिक या 'अन्न' का बन्धन है जिसने अपनी जड़ता से ज्ञान और जीवन की परिमित गति को भी बांध दिया और हमें अत्यन्त सीमित कर दिया है। यह तामसिक बन्धन या स्थूल शरीर का बन्धन है।

यहां हम यह भी देख सकते हैं कि वस्तुओं के त्रिविध विस्तार का मन, प्राण, शरीर से क्या सम्बन्ध है। यह हम जानते हैं कि स्थावर योनि (वृक्ष वनस्पति) अन्न-प्रधान है, इनमें प्राण और मन विकसित नहीं हुआ है; तिर्यक् योनि (पशु पक्षी) प्राण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान है ये अन्न से तो ऊपर हुए हैं पर इनमें भी मन विकसित नहीं हुआ है। मानव-योनि मनःप्रधान है, मनुष्य अन्न प्राण से ऊपर उठे हैं और इनमें मन भी विकसित हुआ है। इसलिये शरीरप्रधान स्थावरों में मुख्यतया मोटाई है, चौड़ाई (विस्तार) और लम्बाई (ऊंचाई) उनमें विकसित नहीं हुई। पर प्राणप्रधान तिर्यक्योनि में मुख्य गुण चौड़ाई (विस्तार) है, लम्बाई (ऊंचाई) इसमें भी विकसित नहीं हुई। तिर्यक् गति का अर्थ संस्कृत में होता है तिरछी, आड़ी, दिगन्तसम (Horizontal) गति। वेद में तथा संस्कृत साहित्य में प्राण की गति या आकृति तिरश्चीन मानी गई है इसीलिये पशुपक्षी पड़ी हुई, चौड़ाई के रुख अवस्था में रहते हैं। पर मनःप्रधान मानव प्राणी खड़ा हो गया है, लम्बाई या ऊंचाई के रुख हो गया है। वृक्ष वनस्पति का मेरुदण्ड सुप्त है या उलटा है। पशु पक्षिओं का मेरुदण्ड प्राण के द्वारा तिर्यक्, पड़ा हुआ दिगन्तसम हो गया है। और मनुष्य का मेरुदण्ड मन के जाग जाने से खड़ा, लम्बाई की ओर हो गया है। मतलब यह कि अन्न (स्थूलभूत) का गुण मोटाई है, प्राण का चौड़ाई और मन का ऊंचाई। इसलिये हमारे इस जगत् की सब चीज़ें लम्बाई चौड़ाई मोटाई इस त्रिविध विस्तारवाली बनी हुई हैं। और इसीलिये मन ऊपर की गति को बांधता है (और यदि खुल जाय तो ऊपर के रास्ते को खोलता है), तथा प्राण और अन्न मध्यम और नीचे की गति को बांधते हैं (और यदि खुल जायें तो इन दोनों मार्गों के खोलने वाले बन सकते हैं।)

पर बात यह है कि इन बन्धनों में भी कुछ मज़ा है इसलिए बहुत से मानव प्राणी भी इन बन्धनों में अपने एक निम्न कोटि के सुख में रह रहे हैं। पर जहां आत्मा जाग चुका है, जहां उच्च सुख की प्यास लग चुकी है वहां ये तीनों बन्धन उत्तरोत्तर असह्य होते जाते हैं। अन्त में ऐसी अवस्था आ जाती है जब उनका आत्मा तीनों तरफ़ के इस आवरण को, ढकने को, बन्धन को खोलने, भेदन करने और तोड़ देने के लिये व्यग्र हो जाता है।

यह तो कहने की जरूरत नहीं कि ऐसी अवस्था लाने के और इसे पार करने के जो साधन हैं उन्हें योगसाधन नाम से पुकारा जाता है। योग का जो एक प्रकार से ज्ञान-योग, भक्तियोग और कर्मयोग यह त्रिविध विभाग किया जाता है वह हमारे इस प्रकरण में बहुत उपयुक्त है। ज्ञानयोग है जिससे कि ऊपर का बन्धन खुलता है। ज्ञान की सत्त्वगुणी वस्तु होने से ऊर्ध्वमुखी गति होती है। ज्ञान की उपासना करने से अन्त में आत्मा ऊपर के बन्धन को खोल ऊपर चढ़ने का रास्ता बना लेता है और ऊपर एक से एक बड़े प्रकाशमय लोकों में पहुँचता हुआ,

तीन प्रकार का योग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिष्मती ऋतंभरा आदि प्रज्ञाओं को प्राप्त करता हुआ, श्रीअरविन्द की परिभाषाओं के अनुसार उच्च मानस, प्रकाशित मानस, स्फुरणात्मक मानस, अधिमानस से होता हुआ अतिमानस तक पहुँच जाता है। इस ऋचा में जो ऐसा कहा गया है कि 'ऊपर के बंधन को ऊपर की तरफ़ खोल दे' (उत्तमं पाशं उत् श्रथाय) इसका आशय अब पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा। क्योंकि यह ऊपर ऊपर जाना मानसिक चेतना से ऊपर, मानवीय चेतना को अतिक्रान्त कर ऊपर अतिचेतन में पहुंच जाना है। सो बन्धन को ऊपर की तरफ़ खोलने का मतलब यह हुआ कि उसके खुलने से ऊपर की तरफ़ गति हो सके। एवं भक्तिमार्ग द्वारा हृदय का मध्यवर्ती बन्धन खुलता है। यह प्रेम का मार्ग है। प्रेम की साधना द्वारा हम हृदय की गहराई में रहने वाले अपने प्रेममय अन्तरात्मा को पावें. यही संक्षेप में भक्ति-साधना है। उसे अन्दर पाने से फिर वह बाहर भी पाया जाता है, और वही सच्चा प्रेम बाहर की सब क्रियाओं का भी प्रेरक हो जाता है। पर यह काफ़ी कठिन काम है। विशुद्ध व्यापक आत्मिक प्रेम द्वारा प्राण के बाकी सब आवेगों, उद्वेगों, भावावेशों, रागद्वेषों को पराभूत कर आत्मिक प्रेम का राज्य स्थापित करना आसान काम नहीं है, इसीलिये शायद इस मध्य बन्धन को खोलने के लिये वेदमंत्र में 'वि' विशेषण लगाया गया है, जिसका अर्थ है विशेषतया या विविध प्रकार से। और तीसरे स्थूल शरीर के अधम बन्धन को खोलने का साधन कर्मयोग है। शरीर से भी निष्काम, भगवदर्पण-पूर्वक कर्म करने की साधना से आत्मविशुद्धि होती है और इस स्थूल भौतिक जगत् में भी सब जगह, सब भूतों में, प्रत्येक छोटी बड़ी वस्तु में परमात्मदर्शन सहज हो जाता है। स्थूल जगत् में भी परमात्मप्राप्ति होने से स्थूल शरीर भी हमारे लिये बन्धनकारक नहीं रहता, स्थूल हमें परिमित करने वाला नहीं रहता। हमारा अपना स्थूल देह तो आत्मा के कार्य में बाधक रहता ही नहीं। पर यह काम पूरा तब होता है जब आत्मा का प्रकाश स्थूल देह से भी नीचे अवचेतना तक में पहुंच जाता है; नहीं तो, अवचेतना की शुद्धि हुए बिना, अवचेतना के विकार हमारे स्थूल देह को ख़राब करते ही रहते हैं। अतः वेदमंत्र में 'अव श्रथाय' का अभिप्राय 'नीचे की ओर, नीचे तक, अवचेतना तक खोल दो' ऐसा समझना चाहिये।

यह दोहराने की जरूरत नहीं कि जैसे आत्मा की ऊंचाई, गहराई और विस्तार की गति आख़िर में एक हो जाती है, आत्मा के लिये ये शब्द बोलना केवल मानवीय भाषा प्रयोग करने के कारण ही है, वैसे ज्ञान, भक्ति और कर्म भी प्रत्येक अपनी पराकाष्ठा में पहुंच शेष दो से अभिन्न हो जाते हैं। पर साथ ही यह भी ठीक है कि साधना की अवस्था में इन तीनों योगों—ज्ञान भक्ति कर्म की आवश्यकता होती है; किसी एक या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो से काम नहीं चल सकता। कम से कम श्रीअरविन्द द्वारा प्रतिपादित योग इन तीनों का ही समन्वय चाहता है। सचमुच महात्मा होने के लिये तीनों ही दिशाओं में प्रगति करके तीनों ओर ही महान् होना होता है, तीनों बन्धन तोड़ना आवश्यक होता है।

इन तीनों पाशों, बन्धनों से छूट जाने पर क्या होता है? क्या तब हम लय को प्राप्त हो जाते हैं, हमारे मन, प्राण, शरीर प्रकृति में लीन हो जाते हैं? वैदिक प्रार्थना तो इस प्रयोजन के लिये नहीं है। तीनों बन्धनों से छुड़ाने की याचना करने के बाद वेद-मंत्र के तीसरे चरण में जो कहा गया है वह तो यह है 'जिससे हम तेरे व्रत में, हे आदित्य, हो जायँ'। तीनों बन्धनों से छुटकारा इसलिये मांगा गया है जिससे कि 'आदित्य के व्रत में हम आयें और अदिति के लिये अनागस् हो जायं'। मन, प्राण, देह नष्ट नहीं होते किन्तु वे बदल जरूर जाते हैं, इनका दिव्य रूपान्तर हो जाता है। ये अब दिव्य व्रत के, दिव्य नियम के अधीन हो जाते हैं, अपने अदिव्य नियमों को छोड़ देते हैं। मन के बन्धन के खुलने का अर्थ यही है कि मन तब अपने मानसिक (अदिव्य) नियम को छोड़ देता है, उस नियम-बन्धन से छुटकारा पा जाता है। इसी तरह प्राण और देह भी अपने प्राणगत और दैहिक नियम के बन्धन से मुक्त हो दिव्य नियम में, आदित्य के व्रत में चले जाते हैं। ये सब एक अबद्ध, असीम आत्मा के नियम में आ जाते हैं, अन्य सभी नियमों से मुक्त हो जाते हैं।

आदित्य के व्रत में

वैसे तो दिशायें अनन्त हैं, जो जिधर चाहता है उधर ही जाता दीखता है। पर सूक्ष्मतया देखने से मुख्य छः दिशायें हैं जिनका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। जब तक मनुष्य सचमुच में मुमुक्षु नहीं होता तब तक वह बद्ध रहता छओं दिशाओं में गति करता है अर्थात् वह ऊपर जाता है तो नीचे भी जाता है, इधर (उत्तर) जाता है तो कभी उधर (दक्षिण) भी जाता है, सामने जाता है तो पीछे भी हटता है। पर मुमुक्षु हो जाने पर मानो उसकी तीन ही दिशायें हो जाती हैं। वह ऊपर ही जाता है, उत्तरायण पथ का ही अवलंबन करता है, आगे (प्राक्) ही जाता है, बन्धन तोड़ने के लिये वह इन तीनों ओर ही जाता है। पर बन्धनमुक्त हो जाने पर ये तीनों दिशायें भी एक हो जाती हैं, यों कहना चाहिये कि वह दिशाओं की दुनिया से ही परे आदित्यलोक का हो जाता है, जहां से सब दिशा, अनन्तों दिशा, उत्पन्न होती हैं वहां का वह हो जाता है। अतः एक दिशा का न रह, अनन्त का, असीम का, अदिति का हो जाता है।

आगस्, पाप तभी तक हो सकते हैं, होते हैं जब तक कि मन, प्राण और देह बन्धनमुक्त नहीं होते, जब तक कि ये अपने नियमों से चलते हैं अतएव अनृत गतियां भी करते हैं; जब तक ये आदित्य के व्रत में नहीं आ जाते। तीनों पाशों को तोड़ आदित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के व्रत में आ जाने से हम 'अनागस्' हो जाते हैं; हमारे मन, प्राण, शरीर आत्मप्रेरित दिव्यनियमानुसार चलते हुए बिलकुल अनागस्, शुद्ध, निष्पाप, त्रुटिरहित, अविकल, पूर्ण कार्य करने वाले हो जाते हैं।

तब हम वस्तुतः 'अदिति के लिये' हो जाते हैं। अदिति जो बन्धनरहित मुक्तिस्वरूपा है, असीम अनन्त देवजननी जगज्जननी है उसके 'अमृत पुत्र' हो जाते हैं, अमृत पुत्र होकर रहते हैं।

श्रीअरविन्द निकेतन का उद्घाटन

श्रीअरविन्द निकेतन के बाकायदा उद्घाटन की विधि २६ मार्च, १६४३ सोमवार को सायंकाल, नगरस्थ केन्द्र, कनाट सर्कस में एस० एन० सराडरसन कम्पनी के भवन में अदा की गयी। यह उद्घाटन श्री लार्ड सिंह के कर कमलों से किया गया। शहर के बहुत से नरनारियों की भारी भीड़ इस अवसर पर उपस्थित हो गई थी। जो प्रतिष्ठित व्यक्ति उस समय उपस्थित थे उनमें श्रीमती सिंह, श्री जी० एस० मेहता, श्री ला० हंसराज गुप्त, श्रीयुत वीरेन राय चौधरी और श्री आशु दे भी सम्मिलित थे।

लार्ड सिंह—

पहिले श्रीअरविन्द निकेतन का उद्घाटन श्रीयुत वरदाचारी—जो भारत की फीडरल कोर्ट के जज हैं और अभी पिछले दिनों इसके चीफ़ जस्टिस का कार्य भी करते रहे हैं—के हाथों से होना निश्चित हुआ था। पर दैववशात् वे उद्घाटन के दिनों देहली में उपस्थित नहीं थे, नहीं हो सकते थे। तो भी सौभाग्य से श्री सत्येन्द्र प्रसन्न सिंह—जो मांटेगु चेम्सफोर्ड सुधारों के लागू होने के दिनों में सन् १६१६-२० के लगभग बिहार और उड़ीसा के गवर्नर रहे थे और लार्ड थे, अतएव जो लार्ड सिंह या लार्ड सिन्हा नाम से अधिक परिचित हैं— उस समय श्री डा० अग्रवाल से अपनी आँखों का इलाज कराने के लिये देहली में ठहरे हुए थे। वे श्रीअरविन्द के नये भक्तों व प्रशंसकों में से हैं। उन्होंने हमारी प्रार्थना पर इस उद्घाटन कार्य को सम्पन्न करना बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। इस अवसर पर सभापति के आसन से बोलते हुए उन्होंने सुनाया कि जब सन् १६४० में मेरी धर्मपत्नी ने श्रीअरविन्द-दर्शन के लिये पांडिचेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलने को मुझे कहा तो मैंने उन्हें कोरा इन्कार कर दिया और कहा कि मैं तो तुम्हारे साथ चलने को तैयार नहीं हूँ। 'पर विधाता की लीला और श्रीअरविन्द के तरीके बड़े गहन हैं,' क्योंकि मैंने देखा कि अपनी उस भावना के होते हुए भी मैं गत फरवरी में दर्शनार्थ पांडिचेरी पहुँचा हुआ था। और तब वहां जो मैंने देखा वह बहुत अद्भुत था। वह आश्रम अन्य बहुत से उन आश्रमों की तरह नहीं है जहां लोग बैठ कर ध्यान लगाते हैं, और कुछ नहीं करते। पांडिचेरी आश्रम के साधक प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक काम करते हैं। वे इसी हमारे संसार में रहते हैं, इसी में काम करते हैं पर फिर भी वे इसके नहीं होते। उनके पास कुछ नहीं होता, पर फिर भी उन्हें किसी चीज़ की कमी भी नहीं प्रतीत होती।

लार्ड सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह ने इस निकेतन के बारे में कहते हुए एस० एन० संडरसन कम्पनी के मालिक श्री सुरेन्द्रनाथ जी जौहर की बहुत प्रशंसा की और उनका धन्यवाद किया कि उन्होंने कितनी उदारतापूर्वक इस निकेतन के कार्य को चलाने के लिये अपने ऊपर एक बड़ी भारी ज़िम्मेवारी ली है।

श्री दिलीपकुमार राय—

परन्तु उद्घाटन की इस सब कार्यवाही में सबसे अधिक कीमती और प्रभावोत्पादक भाग था श्री दिलीपकुमार राय के संगीत का। निश्चय ही इस समारोह में बहुसंख्यक लोग श्री दिलीपकुमार का संगीत सुनने के लिये ही एकत्रित हो गये थे। पाठक जानते होंगे कि दिलीपकुमार राय (प्रसिद्ध बंगला-लेखक द्विजेन्द्रलाल राय के पुत्र) भारत के एक अति प्रसिद्ध गायक हैं जो विदेशों में भी भारतीय संगीत की धाक बैठा चुके हैं। अपने इस विदेश-भ्रमण के बाद से वे श्रीअरविन्द के योगपथ के यात्री बन चुके हैं। अब वे बहुत वर्षों से श्रीअरविन्द आश्रम में साधक के तौर पर रहते हैं। आश्रम से कहीं बाहर जाते आते हैं तो श्रीअरविन्द व माता जी की अनुमति से ही जाते आते हैं। अवश्य ही उनकी इस अवसर पर उपस्थिति बहुत महत्त्व की बात थी। इस समारोह की कार्यवाही उनके संगीत से ही प्रारम्भ हुई। फिर बीच में दो बार और उनका संगीत हुआ। इन तीनों बार उन्होंने अपने भगवद्भक्तिपूर्ण गीतों से जो अपूर्व आनन्द और प्रेम बरसाया वह शब्दों में नहीं लाया जा सकता। जिन्होंने उन्हें सुना वे उनके 'हम उस देश के वासी हैं' आदि गीतों को और उनकी ध्वनियों को बहुत दिनों तक याद करते और दोहरा दोहरा कर गंभीर आनन्द का उपभोग करते रहे हैं। श्रीअरविन्द निकेतन के अतिरिक्त देहली में दो तीन अन्य जगह भी इन्हीं दिनों श्री दिलीप जी का संगीत हुआ था, जहां चार चार हज़ार तक की भीड़ (रंगीले गानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नहीं, किन्तु इनके प्रभुभक्ति के गंभीर रसपूर्ण संगीतों को सुनती हुई) घंटों तक मन्त्रमुग्ध सी हुई बैठी रही। निःसंदेह दिलीप जी का संगीत कोई कंठ और ध्वनि की साधना मात्र नहीं है, इसमें भी वे बेशक किसी तरह कम नहीं हैं। उनकी विशेषता है अध्यात्ममूलकता में। स्पष्ट ही वे अपने भक्ति बरसाने वाले और भगवत्प्रेम को उद्बुद्ध करने वाले संगीत की शक्ति अपनी गंभीर आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा प्राप्त करते हैं।

संगीत के बाद उनका एक भाषण भी हुआ जो कि अपनी अपूर्व सुन्दरता रखता था। कई लोगों पर उसका बहुत ही असर हुआ। वे खड़े तो हुए थे कृतज्ञता और धन्यवाद के दो शब्द कहने के लिये, पर उनके वे दो शब्द एक सुन्दर भाषण के रूप में सहज भाव से ही विकसित हो गये। उनके भाषण की प्रधान विशेषता वास्तव में उस वायु-मण्डल की थी जो कि उनके हार्दिक शब्दों ने उस समय पैदा कर दिया था। वह भाषण एकदम शुरू से अन्त तक उनके अपने व्यक्तिगत अनुभवों से पूर्ण था। वे अनुभव उनके अपने आध्यात्मिक विकास का इतिहास बतलाते थे, वे उनकी अध्यात्म जिज्ञासा की जगह जगह की खोज की कथा सुनाते थे, और अन्त में उन्होंने श्रीअरविन्द के पास पहुंच जो अपूर्व तृप्ति और संतुष्टि प्राप्त की उसका मार्मिक हाल बताने वाले थे। उनकी गुरुभक्ति लोगों के लिये मुग्ध कर देने वाला अतीव सुन्दर अनुभव था। उस समय उन्होंने जो जो अनुभव की घटनायें सुनाईं उनका यहां देना तो शक्य नहीं है। जैसे, उन्होंने अब से १८, २० वर्ष पूर्व विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के श्रीअरविन्द से मिलने की बात सुनाई थी। मिलने के बाद कविवर की जो भावना थी उसे ही दिलीप जी ने अपने सुन्दर मार्मिक ढंग से कह सुनाया था। उन्होंने बताया कि जब कवि श्रीअरविन्द से मिलकर बाहर आये तब उनका मुख विशेष उत्साह से उज्ज्वल हो रहा था। उन्होंने तब विशेष भावुक रूप में कहा था कि 'श्रीअरविन्द एक असाधारण, ज्वलन्त, दीप्तिमान् व्यक्तित्व हैं। मुझे पता नहीं था कि भारत में ऐसी विभूति उपस्थित है।' फिर कुछ हँसते हुए कहा, 'एकान्तवास से निश्चय ही अपूर्व आत्मबल हस्तगत हो जाता है। अब मैं भी एकान्त ग्रहण करूंगा।'

ऐसी ऐसी घटनाओं के वर्णन द्वारा पुष्ट करते हुए जो कुछ उन्होंने प्रतिपादित किया था, कहना चाहा था वह यह था कि श्रीअरविन्द का उद्देश्य है न केवल वैयक्तिक किन्तु सामाजिक जीवन का भी—मनुष्य-प्रकृति का ही—पूर्ण रूपान्तर सिद्ध करना। यह आदर्श आज हमें इसलिये असंभव दिखायी देता है चूंकि आध्यात्मिक जीवन की शक्ति तथा वास्तविकता से हमारा संस्पर्श जाता रहा है, छूट चुका है। श्रीअरविन्द की शक्ति व प्रभाव कितना महान् है यह समझने के लिये आवश्यकता है वास्तविक सच्ची जिज्ञासा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की और श्रीअरविन्द के साथ सम्बन्ध स्थापित होने की। योग-जिज्ञासुओं की आन्तर प्रकृति को बदल देने की, और उनकी आन्तरिक कठिनाइयों और बाधाओं को हटा देने की जो श्रीअरविन्द में शक्ति है वह वास्तव में महान् है।

डा० इन्द्रसेन जी—

श्रीअरविन्द निकेतन की तरफ़ से इस अवसर पर यह बताया जाना तो ज़रूरी ही था कि इस संस्था की स्थापना क्यों, किस प्रयोजन से की जा रही है। सो निकेतन के मंत्री श्री डा० इन्द्रसेन जी ने अपने भाषण द्वारा यह सब बतलाया। उनका भाषण निम्न प्रकार था:—

'निश्चय ही श्रीअरविन्द के पास मानव जाति को देने के लिये एक महान् संदेश है। योग और दर्शनशास्त्र में दीर्घकाल तक निमग्न रहने से उन्हें कुछ ऐसी उपलब्धियां हुई हैं जो कि संपूर्ण मनुष्यजाति के लिये गंभीरतम महत्त्व रखती हैं। उन्होंने आज मनुष्य के सामने आध्यात्मिक जीवन का सच्चा और स्थूल नक्शा खोल कर रख दिया है और उसकी प्राप्ति के लिये क्रियात्मक साधनों की एक पद्धति का स्पष्ट प्रतिपादन कर दिया है। व्यक्ति में तथा समाज में आध्यात्मिक चेतना की उन्नति ही, श्रीअरविन्द की दिव्य दृष्टि के अनुसार, उन हज़ारों बीमारियों का सच्चा इलाज है जिनसे कि हम पीड़ित हैं। निःसंदेह उनकी आध्यात्मिकता निवृत्ति से या पारलौकिक जीवन में पहुँच कर व्यक्ति के मुक्त हो रहने से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। उनकी दृष्टि के अनुसार आध्यात्मिक चेतना का पूर्णतर जीवन योग की सहायता से संपूर्ण मनुष्य जाति में यहां इस जीवन में ही उत्तरोत्तर चढ़ती सीढ़ियों द्वारा अवश्य विकसित हो जाना चाहिये। यह बात हमारे व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और जातीय वर्तमान वैर-विरोधों की निराशाजनक परिस्थितियों में भले ही विचित्र प्रतीत होती हो, किन्तु श्रीअरविन्द पूर्णतया अनन्यचित्त हो कर तथा अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास के साथ जिस आदर्श के लिये सचमुच कार्य कर रहे हैं वह तो केवल जीवन की बाह्य वस्तुओं में कुछ परिवर्तन या सुधार करने के द्वारा नहीं अपितु मुख्यभूत मानव-प्रकृति को ही स्वतः सुधारने या पूर्ण बनाने के द्वारा इस पृथ्वी और पार्थिव जीवन को अधिक सुखमय अवस्था में बदल देने का आदर्श है। यह सहज में ही देखा जा सकता है कि व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनीतिक जीवन की हमारी सब समस्याएं आख़िरकार मानव-प्रकृति की समस्याएं हैं। अतएव श्रीअरविन्द की सर्वतोमुखी और तत्त्वज्ञानी आत्मा हमारी प्रकृति का वास्तविक रूपान्तर करना चाहती है। और संसारव्यापी सम्पूर्ण सन्देहवाद के बावजूद भी वे ऐसे रूपान्तर को केवल एक सम्भावना के तौर पर ही नहीं बल्कि विकासात्मक प्रक्रिया की अनिवार्य चरम सीमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के तौर पर स्पष्ट देखते हैं। यह यही 'असम्भवता' है जिसे सम्भव बनाने के लिये वे गत तीस वर्षों से निरन्तर यत्नशील हैं और अब इसे एक निश्चित 'सम्भव' में बदल डालने के लिये आत्मविश्वास के साथ आगे की ओर देखते हैं। पांडिचेरी आश्रम का जीवन इसे ही निष्पन्न करने की मूर्त प्रक्रिया है।

029445

'पिछले कुछ ही वर्षों में, शायद उस भयानक सांस्कृतिक संकट के कारण जिसमें कि हम फंसे हुए हैं, आध्यात्मिक जीवन की मांग व जिज्ञासा बढ़ती चली गई है। और यह ऐसी आवश्यकता अनुभव होने के कारण ही है कि श्रीअरविन्द-निकेतन नाम की संस्था जिज्ञासु जनता तक श्रीअरविन्द का गंभीर संदेश पहुँचाने के लिये दिल्ली में स्थापित की गई है। इस संस्था का मुख्य स्थान नई दिल्ली से लगभग ७ मील दूर कुतुब के पास श्री सुरेन्द्रनाथ जी जौहर का मकान है जो अधचिनी गांव के साथ लगा है, और शहर में इसका प्रतिनिधित्व करने वाला केन्द्र एस० एन० संडरसन एण्ड कम्पनी (कनाट सर्कस, नई दिल्ली) के कार्यालय के साथ विद्यमान है। इस समय इसकी प्रवृत्तियां निम्न लिखित हैं :—

(१) श्रीअरविन्द-साहित्य का हिन्दी तथा उर्दू में प्रचार।

(२) 'अदिति' पुस्तिका या पत्रिका का प्रकाशन।

(३) श्रीअरविन्द-वाचनालय चलाना।

(४) अध्ययन मण्डलों और ज्ञानचर्चा-गोष्ठियों को संगठित करना।

'हमें आशा है कि आध्यात्मिक जीवन के सभी जिज्ञासु और मानव जीवन के गंभीरतर अभिप्राय में दिलचस्पी रखने वाले सभी सज्जन श्रीअरविन्द-निकेतन द्वारा दिये गये इस सुअवसर का स्वागत करेंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों का परिचय

श्री अनिलवरण जी—

इनका परिचय पहिले दिया जा चुका है। पर उसके साथ इनके विषय में पाठकों को यह भी विदित हो जाय तो अच्छा है कि कांग्रेस-कार्य से भी पहिले ये फिलासफी के प्रोफेसर थे। उस पद को छोड़ कर तथा अन्य त्याग करके आप कांग्रेस में सम्मिलित हो गये थे। बंगाल की कांग्रेस में भी ये अपनी योग्यता के कारण शीघ्र ही ऊंचे चढ़े और स्वनामधन्य देशबन्धु चित्तरंजनदास के वहां ये दायें हाथ समझे जाते थे। पर फिर कांग्रेस को भी छोड़कर ये श्रीअरविन्द के योग आश्रम में आ गये।

स्व० श्री पं० चमूपति जी—

आप हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी के उत्कृष्ट लेखक और कवि थे। आर्यसमाज के महान् सेवक और व्याख्याता थे। गुरुकुल कांगड़ी के आप मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य पद पर भी रहे थे। आपकी जो कविता इस बार प्रकाशित हुई है वह आपके एक शिष्य स्नातक ने हमें प्रदान की है। इस कविता को उन्होंने माता जी के निम्न शब्दों की व्याख्यारूप पाया है :—

Take the Divine alone into your soul's confidence.

श्री नारायणप्रसाद जी—

आप श्रीअरविन्द आश्रम के साधक हैं। आश्रमवासी बने आपको लगभग ७, ८ वर्ष हो गये हैं। वैसे आप बिहार प्रान्त के हैं। इस लिखने व कविता करने की प्रवृत्ति आश्रम में आ जाने के बाद ही आप में जगी है।

श्री शुद्धानन्द जी भारती—

एक प्रसिद्ध महापुरुष से संन्यास ग्रहण कर आप संन्यासी 'शुद्धानन्द भारती' बने हैं। अपने प्रान्त में राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी रहे हैं। तामिल के आप प्रख्यात कवि हैं, तामिल में आपका रचा हुआ बहुत बड़ा आध्यात्मिक साहित्य है। अँग्रेज़ी, फ्रेंच, संस्कृत के भी आप विद्वान् और लेखक हैं। बहुत वर्षों तक आप मौन भी रहे हैं। राजयोग, हठयोग आदि सभी योगों के अनुभवी ज्ञाता हैं। श्री रमण महर्षि के संपर्क में भी आप रहे हैं। अब चिरकाल से श्रीअरविन्द आश्रम में साधक हो कर रह गये हैं।

प्रकाशक और मुद्रक श्री डा० इन्द्रसेन जी मंत्री श्रीअरविन्द-निकेतन, द्वारा
जमना प्रिंटिंग वर्क्स देहली में मुद्रित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079445

श्रीअरविन्द की हिन्दी पुस्तकों की सूची

श्रीअरविन्द और उनका योग	...	मूल्य	।।=)
योगप्रदीप	...	,,	।।।)
इस जगत् की पहेली	...	,,	१)
माता	...	,,	।।।)
योग के आधार	...	,,	२।)
हमारा योग और उसके उद्देश्य	...	,,	।।)
गीता-प्रबन्ध (प्रथम भाग)	...	,,	४।।)
जगन्नाथ का रथ	...	,,	।।)
उत्तरपाड़ा अभिभाषण	...	,,	।)
मातृवाणी	...	,,	२।)

इसके अतिरिक्त श्रीअरविन्द की अंग्रेजी, बंगला, गुजराती आदि भाषाओं की सब पुस्तकें भी यहां से मिल सकती हैं ।

मिलने का पता :—

श्रीअरविन्द निकेतन

कनाट सर्कस, डाकपेटी ८५,
नई देहली ।

Only Cover Printed by Murari Art, Popular Press, Delhi.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

87

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar